॥ श्रीः ॥

विद्या भवन संस्कृत ग्रन्थमाला

१२

महाकवि श्रीराजशेखरविरचिता

कर्पूरमञ्जरी

'मकरन्द' संस्कृतहिन्दीव्याख्यया, हिन्दीरूपान्तरेण,
परीक्षोपयोगिविविधपरिशिष्टैश्च संवलिता

सम्पादकः
व्याकरणाचार्य—
श्री रामकुमार आचार्यः, एम. ए.
(संस्कृतप्राध्यापक, सनातनधर्मप्रकाशक कालेज, ब्यावर, अजमेर)

चौखम्बा विद्या भवन, चौक, बनारस-१

सं० २०१२] [ई० १९५५

प्रस्तावना

कथासार

प्रथम जवनिकान्तर

प्रस्तावना के बाद राजा चन्द्रपाल, रानी विभ्रमलेखा, विदूषक और अन्य सेवक रङ्गमञ्च पर आते हैं। राजा और रानी आपस में वसन्तोत्सव तथा मलयानिल का वर्णन करते हैं। इसी अवसर पर विदूषक और विचक्षणा में अपनी २ वसन्तवर्णन करने की योग्यता पर कुछ झगड़ा हो जाता है। विदूषक नाराज होकर चला जाता है। रानी उसको बुलाने की चेष्टा करती है लेकिन विचक्षणा के कहने से रुक जाती है। फिर भैरवानन्द नामक एक अद्भुत सिद्ध योगी को साथ लिए विदूषक आता है। राजा योगी से कोई आश्चर्य दिखाने का अनुरोध करता है। विदूषक की सलाह से विदर्भ नगर की राजकुमारी को भैरवानन्द अपनी योगशक्ति से सबके सामने ला दिखाता है। राजा उसके अनुपम सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और उससे प्रेम करने लगता है। यह राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी रानी विभ्रमलेखा की मौसी शशिप्रभा और मौसा वल्लभराज की पुत्री है। इसलिए रानी भी बड़ी प्रसन्न होती और भैरवानन्द से कहती है कि कर्पूरमञ्जरी कुछ दिनों के लिए मेरे पास ही रखी जाय। भैरवानन्द इस बात को स्वीकार कर लेता है।

द्वितीय जवनिकान्तर

राजा कर्पूरमञ्जरी की याद में विह्वल है और उसके सौन्दर्य की बार बार प्रशंसा करता है। इसी अवसर पर विदूषक और विचक्षणा आ जाते हैं। विचक्षणा राजा को कर्पूरमञ्जरी द्वारा लिखा हुआ एक केतकी पत्रलेख देती है तथा स्वयं मुख से भी राजा के वियोग में कर्पूरमञ्जरी की दीनदशा का वर्णन करती है एवं विदूषक भी विचक्षणा के सामने कर्पूरमञ्जरी के वियोग में राजा की दीनावस्था का वर्णन करता है। फिर राजा के द्वारा यह पूछे जाने पर कि रानी ने कर्पूमरञ्जरी का किस किस तरह श्रृङ्गार किया, विचक्षणा उसके प्रत्येक श्रृङ्गार का वर्णन करती है।

अनन्तर राजा और विदूषक आपस में कर्पूरमञ्जरी की शोभा का वर्णन करते है। विदूषक द्वारा यह सूचित किए जाने पर कि 'हिन्दोलन चतुर्थी के अवसर पर आज महारानी गौरीपूजा के बाद कर्पूरमञ्जरी को झूले पर झुलायेंगी और मरकतकुंज में बैठकर महाराज कर्पूरमञ्जरी को झूलता हुआ देख सकते हैं', राजा और विदूषक दोनों कदलीगृह में चले जाते है और कर्पूरमञ्जरी को झूले में झूलता हुआ देखते हैं। एकाएक कर्पूरमञ्जरी झूले पर से उतर पड़ती है। राजा फिर उसकी याद करता रहता है। दोनों मरकत कुञ्ज में बैठे रहते है। इसी अवसर पर शिशिरोपचार का सामान लिए विचक्षणा उधर से निकलती है। विदूषक और विचक्षणा में कुछ वार्तालाप होता है। विचक्षणा कहती है कि महारानी ने कुरवक, तिलक और अशोक यह तीन वृक्ष लगाए हैं और कर्पूरमञ्जरी से उनका दोहद (दे. पृ. १०३) करने के लिए कहा है। महाराज मरकत कुंज से कर्पूरमञ्जरी को देख सकते है। तमाल वृक्ष की आड़ में छिपा हुआ राजा कर्पूरमञ्जरी को देखता है। कर्पूरमञ्जरी कुरवक वृक्ष का आलिंगन करती है, तिलक वृक्ष को तिरछी निगाहों से देखती है और अशोक वृक्ष पर पादप्रहार करती है। विदूषक और राजा इस दृश्य को बड़े प्रेम से देखते है। संध्याकाल हो जाने पर सब चले जाते है।

तृतीय जवनिकान्तर

राजा और विदूषक रङ्गमञ्च पर आते हैं। राजा कर्पूरमञ्जरी के ही ध्यान में मग्न है। विदूषक द्वारा पूछे जाने पर राजा उसे अपना स्वप्न बताता है कि कर्पूरमञ्जरी स्वप्न में उसकी शय्या पर आई लेकिन ज्यों ही उसने कर्पूरमञ्जरी को हाथ से पकड़ना चाहा वह हाथ छुड़ाकर भाग गई और उसकी निद्रा भी भंग हो गई। इसके बाद विदूषक अपना स्वप्न बताता है कि वह गंगाजी में सो गया है और मेघों ने उसे निगल लिया। फिर मेघ के गर्भ में छिपा हुआ वह ताम्रपर्णी नदी से मिले हुए समुद्र में गया। वहां वह मेघ बड़ी बड़ी बूंदों से बरसने लगा और समुद्र की सीपियों ने उसे पी लिया। वहां वह पचास घुंघची भर का (असली) मोती बनकर सीपियों के गर्भ में रहा। फिर समय आने पर वे सीपियां समुद्र से निकालकर फोड़ी गई और उनमें से मोती निकाले गए। एक सेठ ने उन मोतियों को मोल लिया और उनमें छेद कराया। इससे उसे कुछ वेदना हुई। फिर उस सेठ ने उन मोतियों का एक हार बनवाकर पाञ्चाल देश के राजा के हाथ बेंच दिया।

राजा ने वह हार अपनी रानी को पहिनाया। फिर जब चांदनी रात में राजा ने रानी को प्रगाढालिंगन किया तब वह स्तनों के नीचे दब जाने से जग गया।

विदूषक के अपना स्वप्न बताने के बाद राजा और विदूषक में प्रेम, यौवन और सौन्दर्य पर बातचीत चली। इस अवसर पर नेपथ्य से कर्पूरमञ्जरी और कुरंगिका की बातचीत द्वारा पता चलता है कि कर्पूरमञ्जरी भी राजा के वियोग में व्याकुल है। इधर से राजा और विदूषक आगे बढ़ते हैं उधर से कर्पूरमञ्जरी और कुरंगिका आती है। कर्पूरमञ्जरी और राजा एक दूसरे को देखकर स्तब्ध रह जाते हैं। राजा कर्पूरमञ्जरी का हस्तस्पर्श करता है। विदूषक कर्पूरमञ्जरी को पसीने में भींगा हुआ देख वस्त्र से हवा करता है। संयोग से दीपक बुझ जाता है। इस पर सब लोग सुरंग के रास्ते से ही प्रमदोद्यान में चले जाते हैं। राजा कर्पूरमञ्जरी का इस अवसर पर आलिंगन कर लेता है। इधर वैतालिक चन्द्रोदय की सूचना देते हैं। उधर रानी को कर्पूरमञ्जरी के राजा से मिलने का वृत्तान्त मालूम हो जाता है। इसलिये घबराकर कर्पूरमञ्जरी सुरंग के ही रास्ते से अपने रक्षागृह में चली जाती है।

चतुर्थ जवनिकान्तर

राजा और विदूषक आपस में ग्रीष्म की प्रखरता पर वार्तालाप करते हैं। राजा अब भी कामावेश में मालूम पड़ता है। इधर रानी ने कर्पूरमञ्जरी को बड़े कठोर नियन्त्रण में रख दिया है। हर तरफ पहरेदार लगा दिए हैं। इस अवसर पर रानी की ओर से सारंगिका महाराज को केलिविमान प्रासाद पर चढ़कर वटसावित्री महोत्सव देखने का निमन्त्रण दे जाती है। राजा और विदूषक वहां जाते हैं। वहां पर सारंगिका रानी की ओर से राजा के पास संदेश लाती है कि आज सायंकाल राजा का विवाह होगा। राजा सारंगिका से सारी कथा विस्तार से पूछते हैं। सारंगिका कहती है कि रानी ने गौरी की प्रतिमा बनवा कर भैरवानन्द से उसमें प्राणप्रतिष्ठा कराई और स्वयं उनसे दीक्षा ली। रानी ने योगीश्वर भैरवानन्द से जब गुरुदक्षिणा के लिए बड़ा आग्रह किया तो उन्होंने यह कहा कि यह दक्षिणा महाराज को दो। लाटदेश के राजा चण्डसेन की पुत्री घनसारमञ्जरी का राजा से विवाह करा दो। ज्योतिषियों ने उसको चक्रवर्ती राजा की रानी होना लिखा है। इस तरह महाराज भी चक्रवर्ती हो जांयगे और मुझे भी दक्षिणा मिल

जायगी। बस यह बात है। इसलिए ही रानी ने मुझे आपके पास भेजा है। रानी घनसारमञ्जरी को कर्पूरमञ्जरी से भिन्न कोई दूसरी ही स्त्री समझती थी। इस तरह राजा का घनसारमञ्जरी से विवाह हो जाता है। यह घनसारमञ्जरी कर्पूरमञ्जरी ही है। रानी को यह बात मालूम न थी। अन्त में भेद खुल जाता है।

पात्रों और रस का विवेचन

इस नाटक का नायक राजा चन्द्रपाल है। नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार इसको धीरललित कहना चाहिए। दशरूपक में धीरललित नायक को निश्चिन्त, कलासक्त, सुखी और मृदुस्वभाव का बतलाया गया है[1]। राजा चन्द्रपाल में यह सब गुण प्रचुरता से पाये जाते है। इसे राज्य की कोई विशेष चिन्ता नहीं है। संगीतकला से भी इसे रुचि है और कोमल प्रवृत्ति का तो यह है ही। कर्पूरमञ्जरी को देख कर एकदम यह उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और उससे प्रेम करने लगता है। कर्पूरमञ्जरी के वियोग को लेशमात्र भी नहीं सह सकता है उसी के ध्यान में मग्न रहता है।

इस नाटक की नायिका कर्पूरमञ्जरी है। यह अपूर्व सुन्दरी है और कुन्तलदेश के राजा की पुत्री है। भैरवानन्द इसे अपनी योगशक्ति से राजा के प्रासाद में ला उपस्थित करता है। राजा को देखकर यह भी राजा से प्रेम करने लगती है लेकिन अपने भावों को प्रकट नहीं होने देती। इसे मुग्धा नायिका कह सकते हैं। रानी विभ्रमलेखा से यह और राजा चन्द्रपाल भी डरते है, लेकिन छिप छिप कर दोनों एक दूसरे से प्रेम करते है। अन्त में महारानी की इच्छा से कर्पूरमञ्जरी का विवाह राजा से हो जाता है।

रानी विभ्रमलेखा का भी चरित्र बड़ा सराहनीय है। राजा चन्द्रपाल को चक्रवर्ती का पद प्राप्त कराने के लिए वे घनसारमञ्जरी से उनका विवाह कराने को तैयार हो जाती हैं। जैसा कि नाट्यशास्त्र का नियम है कि महारानी को प्रगल्भ, राजवंश की, गम्भीर और मानिनी होनी चाहिए। यह सब बातें रानी विभ्रमलेखा में पाई जाती हैं। यह आदर्श पत्नी है क्योंकि पारिवारिक उत्सवों में राजा चन्द्रपाल को सर्वदा निमन्त्रित करती हैं।

यह नाटक शृङ्गाररस प्रधान है। प्रारम्भ से अन्त तक शृङ्गार और प्रेम का ही वातावरण इसमें पाया जाता है। सर्वप्रथम राजा और रानी वसन्तवर्णन करते हैं। फिर

---

१. देखें डा॰ भोलाशंकर व्यास का 'हिन्दी दशरूपक'।

कर्पूरमञ्जरी के सौन्दर्य का वर्णन पाठकों के हृदय को बड़ा प्रफुल्लित करने वाला है। यथाः—

मन्ये मध्यं त्रिवलिवलितं डिम्भमुष्ट्या ग्राह्यं
नो बाहुभ्यां रमणफलकं वेष्टितुं याति द्वाभ्याम्।
नेत्रक्षेत्रं तरुणीप्रसृतिद्वीयमानोपमानं
तत् प्रत्यक्षं मम विलिखितुं यात्येषा न चित्ते॥ (पृ. ४४)

तथा रमणविस्तरो यथा न तिष्ठति काञ्चीलता
तथा च स्तनतुंगिमा यथा नैति नाभिं मुखम्।
तथा नयनबंहिमा यथा न किमपि कर्णोत्पलं
तथा च मुखमुज्ज्वलं द्विशशिनी यथा पूर्णिमा॥ (पृ. ४८)

इस तरह के सौन्दर्यपरक बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं। प्रेम के सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दर विश्लेषण किया गया है। विदूषक राजा से पूछता है कि यह प्रेम क्या है? राजा उत्तर देता है कि एक दूसरे से मिले हुए स्त्री-पुरुषों का कामदेव की आज्ञा से उत्पन्न हुआ भाव प्रेम कहलाता है। इसी भाव को विशिष्ट रूप से निम्नलिखित श्लोक में व्यक्त किया गया हैः—

यस्मिन् विकल्पघटनाविकलङ्कमुक्तः, आत्मनः सरलत्वमेति भावः।
एकैकस्य प्रसरद्रसप्रवाहः, शृङ्गारवर्द्धितमनोभवदत्तसारः॥ (पृ. १२६)

इसी प्रकार यौवन के सम्बन्ध में भी बहुत सुन्दर लिखा हैः—

नूनं द्वाविह प्रजापती जगति यौ देहनिर्माणयौवनदानदक्षौ।
एको घटयति प्रथमं कुमारीणामङ्गमुत्कीर्य्य प्रकटयति पुनर्द्वितीयः॥ (पृ. १३३)

इस तरह इस नाटक में शृङ्गार और प्रेम का अविच्छिन्न प्रवाह है।

नाटक की भाषा

यह नाटक शौरसेनी प्राकृत में लिखा गया है। चूंकि सारा का सारा नाटक प्राकृत में है इसलिए संस्कृत नाट्यसाहित्य में इसका स्थान विशेषतः उल्लेखनीय है। भरत के नाट्यशास्त्र में किसी नाटक के पूर्णतया प्राकृत में ही लिखे जाने का कहीं भी समर्थन नहीं है, न राजशेखर से दो पीढ़ी परवर्ती धनञ्जय के दशरूपक में ही सट्टक या ऐसे ही किसी केवल प्राकृत में ही लिखे जाने वाले नाटक का उल्लेख मिलता है। इससे यह निष्कर्ष

निकलता है कि राजशेखर की यह निजी कल्पना थी कि पूरा नाटक प्राकृत में ही लिखा जाय।

अब प्रश्न यह उठता है कि राजशेखर ने यह नवीन बात क्यों की। कर्पूरमञ्जरी के अतिरिक्त उसने तीन या चार और भी नाटक लिखे, लेकिन उन सब में उन्होंने भाषा के सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र के नियमों का अनुसरण किया है। अपनी इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए ही राजशेखर ने सूत्रधार से यह प्रश्न कराया है कि संस्कृत को छोड़कर प्राकृत में यह नाटक क्यों लिखा गया। पारिपार्श्विक उत्तर देता है कि अर्थविशेष को कविता कहते हैं, भाषा कोई भी क्यों न हो। इस तरह राजशेखर ने वास्तव उत्तर को छिपाने की चेष्टा की है। अगर यह कहा जाय कि अपने सर्वभाषा चातुर्य को दिखलाने के लिए उन्होंने ऐसा किया, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि अगर वे अपना सर्वभाषा चातुर्य दिखलाते तो केवल प्राकृत में ही रचना क्यों करते।

इस नवीन उद्भावना के पीछे वास्तव कारण यही हो सकता है कि नाट्यसाहित्य के क्षेत्र में लेखक एक प्रयोग करना चाहता था। लेखक की पत्नी अवन्तिसुन्दरी ने भी इसमें सहयोग दिया और उसके कहने से यह नाटक खेला गया था। आगे चल कर यह नाटक बड़ा लोकप्रिय सिद्ध हुआ और दूर दूर तक इसका अभिनय किया गया।

इस नाटक की लोकप्रियता के दो कारण थे—एक तो इसमें नृत्य का समावेश तथा झूले के दृश्य की योजना, दूसरा इसका ऐकान्तिक रूप से प्राकृत में लिखा जाना। नाटक के रचना काल में संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत जनता के लिए अति सुगम थी। राजशेखर के समय (९०० ई०) में लोग अपभ्रंश भाषा बोलने लगे थे और संस्कृत गद्य या पद्य का समझना लोगों के लिए कुछ दुष्कर सा हो चला था। इसलिए अपभ्रंश भाषा बोलने वाले लोगों की सुविधा को ध्यान में रखकर लेखक ने शौरसेनी प्राकृत में यह नाटक लिखा। अतः यह निश्चित सा है कि संस्कृत के नाटकों—जिनमें प्राकृत को गौण स्थान प्राप्त था-की अपेक्षा केवल प्राकृत में लिखा गया यह कर्पूरमञ्जरी लोगों को बड़ा रुचिकर प्रतीत हुआ।

साहित्यिक विशेषता

यद्यपि यह नाटक केवल प्राकृत में ही लिखा गया है, फिर भी दृश्यकाव्य की विशेषतायें इसमें कम नहीं हैं। जैसा कि नाटक के मंगलाचरण में कहा गया है, इस नाटक में वैदर्भी, मागधी तथा पाञ्चाली ये तीनों रीतियाँ पाई जाती हैं। इन तीनों रीतियों के उचित

मिश्रण से इस नाटक में एक अद्वितीय सौन्दर्य, जो उत्तर कालीन नाटकों में साधारणतया कम पाया जाता है, आगया है। शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका और स्रग्धरा जैसे जटिल तथा अन्य छन्दों के प्रयोग से इस नाटक में कोमलता तथा ओजगुण यथास्थान पाये जाते हैं। कालिदास के मालविकाग्निमित्र तथा श्रीहर्ष की रत्नावली को इस नाटक के वस्तुविधान में अधिक सहायता ली गई है, फिर भी भाषा और चरित्रचित्रण में राजशेखर ने विलक्षण प्रतिभा और चातुर्य का परिचय दिया है। तृतीय जवनिकान्तर में नायिका कर्पूरमञ्जरी द्वारा रचित चन्द्रवर्णन पर राजा कहता है—**'अहो! कर्पूरमञ्जर्या अभिनवार्थदर्शनम्, रमणीयः, शब्दः, उक्तिविचित्रता, रसनिष्यन्दश्च।'** (पृ. १५०) यह कथन पूर्णरूप से कर्पूरमञ्जरी नाटक पर भी लागू हो सकता है। इसके एक एक श्लोक शृङ्गार के स्रोत के समान है।

ऐतिहासिक महत्त्व

यूरोपीय विद्वान् कोनो लिखते हैं—'भारतीय नाटकों के ऐतिहासिक अध्ययन के लिए भी कर्पूरमञ्जरी एक आवश्यक ग्रन्थ है। प्राचीन काल में संस्कृत नाटकों में स्थापक और सूत्रधार दोनों ही पाये जाते थे। कर्पूरमञ्जरी में भी स्थापक पाया जाता है।' लेकिन कोनो महाशय का यह कथन बिल्कुल निराधार है, क्योंकि किसी भी अच्छी हस्तलिखित प्रति में स्थापक का उल्लेख नहीं मिलता। पिशेल महाशय के कठपुतली के नाटक से भारतीय नाटकों के विकास के सिद्धान्त को प्रो० कोनो समर्थन देना चाहते थे। कीथ महाशय भी इस सिद्धान्त को संगत नहीं समझते हैं। यहाँ पर पिशेल महाशय के सिद्धान्त की सत्यता का प्रश्न नहीं है। फिर भी इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कर्पूरमञ्जरी से इस सिद्धान्त की पुष्टि में कुछ भी सहायता नहीं मिलती।

भारतीय नाटकों के उद्गम तथा विकास के अध्ययन में कर्पूरमञ्जरी से यद्यपि कुछ भी सहायता नहीं मिलती, फिर भी नाटकों के स्वरूप और परवर्ती इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली कई बातों पर इससे कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है। नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तावना में कुशीलवों की विविध चेष्टाओं का विस्तृत वर्णन तथा ध्रुवा गीत का उल्लेख मिलता है। प्रस्तावना में तत्कालीन विभिन्न वाद्ययन्त्रों का भी उल्लेख है। चतुर्थ जवनिकान्तर में आए हुए नृत्य के दृश्य से यह भी निश्चित हो जाता है कि भारतीय नाटकों में नृत्य का भी उपयोग किया जाता था।

भारतवर्ष के धार्मिक इतिहास के अध्ययन में भी कर्पूरमञ्जरी कुछ सहायता करती है। तन्त्र सम्प्रदाय की शिक्षाओं के सम्बन्ध में इस नाटक में कुछ कहा गया है। भैरवानन्द जिसको कि कोनो और लान्मैन् ने भूल से एक जादूगर समझ लिया है, वस्तुतः ,वह तन्त्रसम्प्रदाय का एक सिद्धपुरुष है।

पहले लोगों का ऐसा विचार था कि जो व्यक्ति तान्त्रिक सम्प्रदाय के द्वारा निर्धारित ढंग से कुछ अभ्यास करता है, उसकी आध्यात्मिक उन्नति तो होती ही है, किन्तु उसे कुछ गुह्य शक्तियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं, जिनसे कि वह आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है। जो कोई व्यक्ति इस तरह के अद्भुत कार्य कर सकता था, वह सिद्ध पुरुष कहलाता था। इसी तरह भैरवानन्द भी एक साधारण जादूगर नहीं, बल्कि भारतीयों के साधारण विश्वास के अनुसार एक ऐसा ही सिद्ध पुरुष है जो न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से ही श्रेष्ठ है वल्कि जिसे कुछ गुह्य शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। प्रथम वह एक धार्मिक शिक्षक है, फिर प्रासङ्गिक रूप से अद्भुत कार्यों का करने वाला। महाशय कोनो और लान्मैन ने भैरवानन्द के चरित्र को बिल्कुल ही गलत समझा है क्योंकि राजशेखर इस तान्त्रिक सिद्धपुरुष को कोरा जादूगर और अशिक्षित हकीम जैसा कहीं भी नहीं चित्रित करता है। अन्तिम जवनिकान्तर में महारानी विभ्रमलेखा भैरवानन्द को अपना आध्यात्मिक गुरु बनाती है। यदि भैरवानन्द केवल जादूगर ही होता, तो महारानी का उसको अपना गुरु बनाना अनुचित ही रहता। प्रथम जवनिकान्तर में भैरवानन्द के कथन को साधारण पाठक बिल्कुल अनुचित ही समझेंगे। लेकिन उसके शब्दों का दुहरा अर्थ है। भैरवानन्द नाटक में सुरापिये हुए आता है और कुछ ऐसी बातें कहता है जो प्रत्यक्ष रूप से अश्लील और अनैतिक मालूम पड़ती हैं। लेकिन यह उसके केवल कहने का ढंग है। उसके शब्दों का गूढ़ अभिप्राय निम्नलिखित अनुवाद से स्पष्ट हो जाता है:[1]—

'मैं न कोई मन्त्र जानता हूँ न कोई तन्त्र और न मैंने कुछ ज्ञान या ध्यान किया है। यह सब गुरु के प्रसाद का फल है। मैं मद्य पीता हूँ, (अपनी) स्त्री के साथ रमण करता हूँ और कुलमार्ग के अनुसार मोक्ष प्राप्त करूंगा।

विधवा या चाण्डाल स्त्री को मैं धर्मानुकूल अपनी पत्नी समझता हूँ। सुरा पीता हूँ

---

१ दे. मूल पृष्ठ ३५–३६।

और मांस खाता हूं। भिक्षा मेरा भोजन है और पशुचम मेरा बिस्तर है। कौलधर्म के ये ढंग किसको अच्छे नहीं लगते ?

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता कहते हैं कि ध्यान, वेदपाठ और यज्ञ करने से मोक्ष मिलता है। केवल उमापति भगवान् शंकर ने सुरा और स्त्रियों के संसर्ग से मोक्ष बताया है।'

उपरि लिखित अनुवाद में जो कि मूल से बिल्कुल समानार्थक है, कोई भी बात आपत्ति जनक नहीं है। तन्त्रसम्प्रदाय की शिक्षाओं में संन्यास से कोई भी सामञ्जस्य नहीं है। इसलिए तन्त्रमत का अनुयायी यह नहीं मान सकता कि अपनी स्त्री के साथ रहने अथवा थोड़ी सी मदिरा और मांस प्रयोग में लेने से मोक्ष नहीं हो सकता ? तन्त्रमत के अनुयायी वर्णव्यवस्था, वैदिक कर्मकाण्ड और परम्पराओं को प्रोत्साहन नहीं देते थे। राजशेखर का विवाह स्वयं एक क्षत्रिय स्त्री से हुआ था। यदि राजशेखर ब्राह्मण रहे हों, तो यह विवाह तान्त्रिक ढंग से हुआ होगा। या यह अनुलोम विवाह हुआ होगा। तन्त्रसम्प्रदाय की विचार धारा को ही ध्यान में रखकर भैरवानन्द ने कहा है कि कोई भी मनुष्य विधवा या शूद्रा से विवाह कर सकता है और मोक्ष पाने के लिए वैदिक यज्ञयागादिकों की आवश्यकता नहीं है। इस तरह मालूम पड़ता है कि भैरवानन्द के उन्माद के पीछे कोई पूर्ण पद्धति छिपी हुई है। उसके शब्द प्रत्यक्ष रूप से भद्दे और अनैतिक मालूम पड़ते हैं लेकिन उनमें दुहरा अभिप्राय छिपा हुआ है और नाटक में दर्शकों की अनुरक्ति पैदा करने के लिए है। इन सब बातों से तन्त्रसम्प्रदाय के अध्ययन में बड़ी सहायता मिलती है।

राजशेखर का समय

राजशेखर के लिखे हुए नाटकों के साक्ष्य के आधार पर हम कह सकते हैं कि राजशेखर कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल के उपाध्याय थे और महेन्द्रपाल के उत्तराधिकारी पुत्र महीपाल ने भी उनको अपना संरक्षण दिया था। प्रो० कोनो ने किन्हीं शिलालेखों तथा साहित्यिक उल्लेखों के आधार पर ऐसा अनुमान किया है कि राजशेखर का अपने जीवन के किसी भाग में चेदि राजवंश से अवश्य संबन्ध था। लेकिन राजशेखर ने काव्यमीमांसा में भारत का जो भौगोलिक वर्णन किया है, उसमें चेदि नाम कहीं भी नहीं आता है। सीवोदीन शिलालेख से पता चलता है कि महेन्द्रपाल ने ९०३–९०७ ई. स. में राज्य किया और उसके पुत्र महीपाल ने ९१७ ई. स. के लगभग राज्य

किया। इसके अतिरिक्त दूसरे तथ्यों से भी राजशेखर के समय निर्णय में सहायता मिलती है। अपनी काव्यमीमांसा में दूसरे लेखकों के साथ राजशेखर ने उद्भट और आनन्दवर्धन का भी उल्लेख किया है। यह दोनों लेखक काश्मीरी राजा जयापीड (७१९–८१३ ई. स.) और अवन्तिवर्मन् (८५७–८८४ ई. स.) के शासनकाल में क्रमशः हुए। इनके साथ साथ सोमदेव और सोड्ढल जो कि क्रमशः ९६० ई. स. और ९९० ई. स. में हुए, उन्होंने राजशेखर का उल्लेख किया है। सोमदेव का यशस्तिलकचम्पू ९६० ई. स. में पूरा हुआ था। सोड्ढल की उदयसुन्दरी ९६० ई. स. के लगभग लिखी गई थी। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि राजशेखर ८८०–९२० ई. स. के बीच में प्रादुर्भूत हुए और उन्होंने अपने ग्रन्थों का निर्माण किया।

राजशेखर के समय के सबन्ध में विभिन्न विद्वानों के भिन्न भिन्न विचार हैं।

एक कथा यह है कि राजशेखर ने अपने तीन नाटक श्रीशङ्कराचार्य जी को भेंट किए। माधवाचार्य द्वारा विरचित शङ्करविजय में राजशेखर की कथा निम्नरूप से है:—

'तन्नोदितः कश्चन राजशेखरः' (सर्ग २)
'एवमेनमतिमर्त्यं चरित्रं सेवमानजनदैन्यलवित्रम्।
केरलक्षितिपतिर्हि दिदृक्षुः प्राहिणोत्सचिवमाहृतभिक्षुः॥'
'तेन पृष्टकुशलः क्षितिपालः स्वेन सृष्टमथ शात्रवकालः।
हाटकायुतसमर्पणपूर्वं नाटकत्रयमवोचदपूर्वम्॥' (सर्ग ५)
कविता कुशलोऽथ केरलक्ष्मा कमनः कश्चनराजशेखराख्यः।
मुनिवर्यममुं मुदा वितेने निजकोटीरनिघृष्टपत्तरवाग्रम्॥
प्रथते किमु नाटकत्रयी सेत्यमुना संयमिना ततो नियुक्तः। (सर्ग ४)

इससे मालूम पड़ता है कि केरल देश के राजा राजशेखर सप्तम शतक से पहिले होने वाले शंकराचार्य के समकालीन थे। लेकिन भोजप्रबन्ध आदि की तरह शंकरविजय का भी समय निश्चित नहीं होने से उपर्युक्त मत विश्वसनीय नहीं है। दूसरे इस शंकरविजय का कर्ता पण्डित शिरोमणि सायनमाधवाचार्य नहीं हैं। यह माधव नाम के किसी और व्यक्ति का लिखा हुआ है।

जर्मनी पण्डित फ्लीट और कीलहार्न राजशेखर को नवम शतक के अन्त और दसम

शतक के प्रारम्भ में मानते हैं। औफ्रेट का कहना है कि राजशेखर जयदेव से प्रथम हुये। भाण्डारकर महाशय ने राजशेखर को दशम शतक के महेन्द्रपाल का गुरु माना है। श्री. ए. बोरो ने उन्हें शंकराचार्य का समकालीन मानकर सप्तम शतक का माना है। पिशेल ने उन्हें दशम या एकादश शतक का माना है। पीटर्सन ने उन्हें अष्टम शतक के मध्य का माना है। उनका कहना है कि क्षीरस्वामी ने जिसने कि अमरकोष पर टीका लिखी है और जो काश्मीर के राजा जयापीड (७५० ई. स.) का गुरु था, अपनी अमरकोष की टीका में विद्धशालभञ्जिका से एक श्लोक उद्धृत किया है और राजा महेन्द्रपाल जिसको राजशेखर ने अपना शिष्य बताया है, ७६१ ई. स. में राज्य करता था। इससे यह सिद्ध होता है कि राजशेखर अष्टम शतक के मध्य में हुये। कनिंघम महाशय का भी यही मत है। लेकिन यह मत भी भ्रान्तिरहित नहीं है। काश्मीर के राजा जयापीड का क्षीर नामक कोई गुरु अवश्य था। लेकिन उसने ही अमरकोष की टीका लिखी, यह बात सत्य नहीं है, क्योंकि उसने भोज का उल्लेख किया हैं और वर्धमान ने उसका उल्लेख किया है। अतः यह क्षीरस्वामी एकादश शतक ई. स. में हुए होंगे। श्री दुर्गाप्रसाद और परब महाशयों ने ८८४-९५९ ई. स. का समय माना है। श्री. एच. एच. विल्सन महोदय द्वादश शतक का प्रारम्भ राजशेखर का समय मानते हैं। श्री मैक्समूलर महोदय ने भूल से प्रबन्धकोष के रचयिता राजशेखर (१३४७ इ. स.) से इसको मिला दिया है। श्री आप्टे महाशय ने इन सब बातों का विचार कर सप्तम और अष्टम शतक का मध्य राजशेखर का समय माना है।

राजशेखर का जन्मस्थान और वंशपरिचय

बालरामायण से पता चलता है कि राजशेखर के कुछ पूर्वज महाराष्ट्र के रहने वाले थे। प्रो. कोनो ने महाराष्ट्र से विदर्भ और कुन्तल देश समझा है। लेकिन काव्यमीमांसा में महाराष्ट्र को विदर्भ और कुन्तल से अलग दक्षिणापथ का एक भाग माना गया है। महाराष्ट्र की स्थिति कहीं पर भी क्यों न हो, लेकिन यह कुछ निश्चित नहीं है कि महाराष्ट्र राजशेखर का जन्म स्थान था। इस संदेह के निम्न कारण हैं। आचार्य दण्डी ने महाराष्ट्री प्राकृत की बड़ी प्रशंसा की है। लेकिन राजशेखर ने जो प्राकृत को सबसे बड़ा मानने वाले है, प्राकृत को लाटदेश की लोकप्रिय भाषा माना

है और महाराष्ट्र देश से इसको किसी भी तरह संबद्ध नहीं किया है। राजशेखर यहां पर अवश्य अपने जन्मस्थान का परिचय दे सकते थे। हम यह नहीं कह सकते कि केवल संकोचवश उन्होंने ऐसा किया, क्योंकि जो व्यक्ति अपने को सर्वभाषाचतुर कह सकता है, उसे अपने जन्मस्थान का परिचय देने में संकोच नहीं होना चाहिये। जब कि दण्डी के अनुसार महाराष्ट्र की प्राकृत भाषा प्रकृष्ट मानी जाती थी। इसलिए यह मानना जरा कठिन है कि महाराष्ट्र राजशेखर का जन्मस्थान था।

उक्त विचार पर यह भी आपत्ति की जा सकती है कि राजशेखर के समय में महाराष्ट्र में प्राकृत भाषा का संभवतः ह्रास हो गया होगा या दण्डी का महाराष्ट्र राजशेखर के महाराष्ट्र से समानार्थक था और भारतीय मध्यदेश की दक्षिण सीमा पर स्थिर रहा होगा।

दण्डी के कथन के संबन्ध में संदेह किया जा सकता है। राजशेखर महाराष्ट्री के संबन्ध में बिल्कुल चुप हैं। इससे भी प्रतीत होता है कि दण्डी ने केवल अपनी मातृभूमि प्रेम में अतिशयोक्ति कर दी है। राजशेखर ने प्राचीन राजाओं की भाषासंबन्धी रुचियों का विवरण देते हुए किसी भी ऐसे महाराष्ट्रिय राजा का उल्लेख नहीं किया जिसने कि महाराष्ट्री प्राकृत को संरक्षण दिया हो। दूसरे इसतरह के भी प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि राजशेखर के समय में महाराष्ट्री प्राकृत का अपने ही देश में प्रभाव घट गया था। अब हमें महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति पर भी जरा विचार करना चाहिए। सर जार्ज ग्रियर्सन ने (लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, भाग ७, पृ. १२३) शौरसेनी प्राकृत से निकलने वाली भाषाओं के प्रदेश के दक्षिण में पड़ने वाले भूभाग को महाराष्ट्र नाम दिया है। अतः यह भी असंगत नहीं प्रतीत होता कि राजशेखर का महाराष्ट्र मध्यदेश से मिला हुआ था। लेकिन फिर भी राजशेखर को हम महाराष्ट्र से संबद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि उन्होंने अपने मध्यदेश के संबन्ध को स्पष्टतया व्यक्त कर दिया है।

(१) काव्यमीमांसा में उन्होंने कहा है—**'यो मध्यदेशं निवसति, स कविः सर्वभाषानिषण्णः।'** (जो कवि मध्यदेश में रहता है, वह सब भाषाओं में चतुर होता है) इस कथन को राजशेखर के अपने सर्वभाषाचतुर होने के कथन से मिलाने पर यह बात अधिक पुष्ट हो जाती है कि मध्यदेश ही राजशेखर का जन्मस्थान था।

(२) शौरसेनी प्राकृत में ही एक सम्पूर्ण नाटक लिखकर राजशेखर ने मध्यदेश की प्राकृत को गर्वोन्नत किया है।

(३) कन्नौज और पाञ्चाल के प्रति राजशेखर का जो पक्षपात है उससे भी यह सिद्ध होता है कि मध्यदेश उनका जन्मस्थान था और महोदय (कन्नौज) इस प्रदेश की राजधानी थी। राजशेखर का कहना है कि दिशायें इसी नगर से माननी चाहिए। इस नगर को वे बड़ा पवित्र मानते हैं और इस नगर की स्त्रियों को भी वे वेषभूषा, आभूषण, भाषा और व्यवहार में अग्रगामी बताते हैं (बालरामायण १०, ८८-९०)। पाञ्चाल देश की प्रशंसा उन्होंने (बालरामायण, १०, ८६) में बड़ी की है।

इन सब बातों से हम यह मान सकते है कि महाराष्ट्र राजशेखर का जन्मस्थान नहीं था, भले ही महाराष्ट्र को पश्चिमीय दक्षिण (Western Deccan) न माना जाय। राजशेखर के जन्मस्थान के संबन्ध में जो पूर्वपरम्परायें चली आ रहीं हैं, उनसे इसी तरह हम सामञ्जस्य कर सकते हैं कि राजशेखर के पूर्वज महाराष्ट्र से मध्यदेश में आए थे।

राजशेखर का वंश

'उपाध्यायो यायावरीयः श्रीराजशेखरः' इस बालरामायण के कथन से यह प्रतीत होता है कि राजशेखर यायावर कुल के थे 'लेकिन इससे यह निश्चित नहीं होता कि राजशेखर ब्राह्मण थे या क्षत्रिय। चौहानवंश की क्षत्रिय कन्या अवन्तिसुन्दरी से इनका विवाह होने के कारण यह भी संभव हो सकता है कि ये क्षत्रिय रहे हों। लेकिन क्षत्रिय स्त्री से विवाह करने के कारण ही इनको ब्राह्मण न माना जाय, यह बात ठीक नहीं, क्योंकि उन दिनों अनुलोम विवाह (अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह) करना वर्जित नहीं था। अथवा ऐसा भी हो सकता है-जैसा कि प्रो. कोनो ने अनुमान किया है-कि राजशेखर शैव थे और इसलिये शैवरीति के अनुसार किसी भी वर्ण से विवाह कर सकते थे। लेकिन कोनो महाशय भी श्री आप्टे के अनुसार राजशेखर को ब्राह्मण ही मानते हैं क्योंकि निम्न श्लोक—

बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥

के अनुसार राजशेखर को भवभूति का अवतार माना जाता है और क्षत्रिय किसी ब्राह्मण

का अवतार नहीं हो सकता। दूसरे राजशेखर उपाध्याय या गुरु भी थे इसलिए उनका ब्राह्मण होना अधिक संगत प्रतीत होता है। लेकिन ये दोनों युक्तियाँ सबल नहीं है, भवभूति का अवतार होने से ही राजशेखर को ब्राह्मण नहीं मान सकते? क्योंकि राम और कृष्ण भगवान् का अवतार होने पर भी ब्राह्मण नहीं थे। दूसरी युक्ति भी ठीक नहीं है। धर्मसूत्रों में क्षत्रिय के गुरु होने के विरुद्ध कोई कथन नहीं है। राजशेखर क्षत्रिय होने पर भी गुरु हो सकते थे। राजशेखर के पिता दुर्दुक एक राजा के (बालरामायण १, १३) महामात्य थे। इससे हम ऐसा समझ सकते हैं कि राजशेखर ब्राह्मण रहे होंगे, क्योंकि कई ब्राह्मण चाणक्य, सायण आदि प्रसिद्ध मन्त्री हुए हैं। लेकिन कोई बात निश्चित नहीं होती, क्योंकि ब्राह्मणों ने कभी-कभी प्रधानसेनापति का पद-जिसपर कि प्रायः क्षत्रिय ही कार्य करते हैं—भी सभाला है और क्षत्रियों ने भी समय समय पर मन्त्रिपद का कार्य किया है। कामन्दकीय नीतिसार जैसे ग्रन्थों में ऐसा कोई नियम नहीं है जिसके अनुसार ब्राह्मण ही मन्त्री बनें।

यायावर वंश में, चाहे ये ब्राह्मण हों या क्षत्रिय, बड़े-बड़े विद्वान् उत्पन्न हुए। जैसा कि—

समूर्तो यत्रासीद् गुणगण इवाकाल जलदः, सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा।
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो, महाभागास्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले॥

इस श्लोक से स्पष्ट है। लेकिन इन सबमें अकालजलद ही उनके पूर्वज थे।

नदीनामेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः। कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनम्॥

इस श्लोक में उल्लिखित सुरानन्द, तरल तथा कविराज आदि इस वंश की अन्य शाखाओं में रहे होंगे। सूक्तिमुक्तावली में उद्धृत राजशेखर के एक श्लोक में 'यायावरकुलश्रेणि' के कथन में भी इसकी पुष्टि होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अनेक विद्वज्जन मण्डित यायावर कुल में इनका जन्म हुआ था और दुर्दुक इनके पिता तथा शीलवती इनकी माता थी।

राजशेखर का व्यक्तित्व

अनेक विद्वानों से विभूषित यायावर वंश में उत्पन्न होने के कारण राजशेखर की शिक्षा बड़ी पूर्ण थी और वे उस समय की समस्त विद्याओं से परिचित थे। काव्यमीमांसा

को देखने से उनकी अद्वितीय प्रतिभा का पता चलता है। राजशेखर स्वयं भी कवि थे और उन्होंने अपने लिए महाकवि से भी श्रेष्ठतर 'कविराज' की पदवी दी है। इससे हम यह अनुमान कर सकते है कि उन्होंने दूसरे कवियों के लिए जो स्तर निर्धारित किया था, वहां तक वे स्वय भी पहुंच चुके थे और साहित्यविद्या मे पारंगत होने के साथ साथ अन्यान्य विभिन्न विद्याओं में भी निष्णात थे।

राजशेखर न केवल विद्वान् थे बल्कि उनमें साहित्यिक प्रतिभा भी थी। इसीलिए संस्कृत साहित्य में उन्हें सर्वोच्च नहीं तो प्रमुख स्थान तो प्राप्त है ही। यद्यपि राजशेखर ने कालिदास और भवभूति आदि अपने पूर्ववर्ती कवियों से भाव, उद्देश्य तथा कल्पनाएँ ग्रहण की हैं लेकिन उन सबका ऐसा आत्मीकरण किया है कि उनपर अपनी भावाभिव्यजनशैली से अपना प्रभाव डाल दिया है। कर्पूरमञ्जरी मे हम मालविकाग्निमित्र की छाया यत्र तत्र देख ही सकते हैं। राजशेखर ने सम्पूर्ण भारत की यात्रा अवश्य की होगी। दक्षिण भारत की परम्पराओं और स्थानों का प्रायः उनकी रचनाओं में उल्लेख मिलता है। भाषा के सम्बन्ध मे भी इनके विचार स्पष्ट हैं। काव्य का स्वरूप राजशेखर के अनुसार निम्नलिखित है—

उक्तिविशेषः काव्यं भाषा या भवति सा भवतु।

प्राकृतभाषा के संबन्ध में उनके विचार निम्न श्लोक से स्पष्ट हो जाते हैः—

परुसा संक्किअबंधा पाउदबंधो वि होई सुउमारो।
पुरुसमहिलाणं जेत्तिअमिहतरं त्तिअमिमाणं॥ (पृ. ९)

राजशेखर अपने विषय मे उदासीन नहीं है। कर्पूरमञ्जरी की प्रस्तावना मे—

स अस्य कविः श्रीराजशेखरस्त्रिभुवनमपि धवलयन्ति।
हरिणाङ्कप्रतिपक्षिसिद्धया निष्कलङ्का गुणा यस्य॥ (पृ. १०)

अस्तु, राजशेखर के ग्रन्थों से उनकी कलाप्रियता और संस्कृतभाषा पर अधिकार का हमें पूरा विश्वास हो जाता है।

राजशेखर के ग्रन्थ

राजशेखर के चार नाटक और काव्यमीमांसा नामक एक साहित्यशास्त्र का ग्रन्थ इस समय उपलब्ध है। अपने काव्यानुशासन मे आचार्य हेमचन्द्र ने राजशेखर

रचित हरविलास नामक एक काव्य का भी उल्लेख किया है। इस तरह राजशेखर की ६ रचनाएँ हमारे सामने हैं। लेकिन फिर भी यह निश्चित नहीं है कि उन्होंने कितने ग्रन्थ लिखे। बालरामायण की प्रस्तावना में लिखा हुआ है कि राजशेखर संभवतः इस नाटक को मिलाकर ६ ग्रन्थ लिखे। चूंकि उनके ग्रन्थों के कालक्रम का हमें पता नहीं है, इसलिए उनकी रचनाएँ विभिन्न संख्या में हमारे सामने आती हैं। श्री वी. एस. आप्टे और प्रो० कोनो ने उनकी रचनाओं का निम्नकालक्रम निश्चित किया है। कर्पूरमञ्जरी, विद्धशालभञ्जिका, बालरामायण और बालभारत। इस मत के आधार पर राजशेखर की रचनाएँ ९ से कम नहीं होती। कोई कोई बालरामायण और बालभारत को कवि की पूर्वतम रचनाएँ मानते है। इस तरह राजशेखर की रचनाएं ९ या १० से कम नहीं ठहरतीं। बालरामायण की उक्ति में ऐसा मालूम पड़ता है कि यह नाटक कवि का पहला नाटक था और इससे पहिले कवि ने ५ या ६ काव्य विभिन्न तरह के लिखे थे तथा जनता में उनका अधिक स्वागत नहीं हुआ था। एक जगह राजशेखर ने भी लिखा है कि यद्यपि आलोचक उनके काव्यों को पसन्द नहीं करेंगे, फिर भी उनके नाटक बड़े आदर से पढ़े जायेंगे। इस तरह राजशेखर के १० ग्रन्थ निश्चित होते हैं—१. बालरामायण, २. बालभारत, ३. कर्पूरमञ्जरी, ४. विद्धशालभञ्जिका और ६ काव्य।

पात्र परिचय

पुरुष पात्र

सूत्रधार—नाटक का स्थापक, रङ्गमञ्च का प्रबन्धक—प्रधान नट।

पारिपार्श्विक—सूत्रधार का सहयोगी—दूसरा नट।

राजा—चन्द्रपाल, नाटक का नायक।

विदूषक—कपिञ्जल, राजा का विनोदी मित्र।

वैतालिक (दो)—रत्नचण्ड और काञ्चनचण्ड, राजा की स्तुति करने वाले।

भैरवानन्द—योगी, तान्त्रिक सिद्ध पुरुष।

स्त्रीपात्र

कर्पूरमञ्जरी—विदर्भनगर की राजकुमारी—नाटक की नायिका।

देवी—राजा चन्द्रपाल की रानी—विभ्रमलेखा।

विचक्षणा—रानी की सखी—प्रधान परिचारिका, चेटी।

प्रतिहारी—अन्तःपुर की दासी।

कुरङ्गिका—कर्पूरमञ्जरी की सखी—परिचारिका।

सारङ्गिका—रानी की प्रमुख दासी।

चर्चरी—नर्तकियां।

॥ श्रीः ॥

'मकरन्द' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता

प्रथमं जवनिकान्तरम्

भद्दं भोदु सरस्सईअ कइणो णंदंतु वासाइणो
अण्णाणं वि परं पअट्टदु वरा वाणी छइल्लप्पिआ।
वच्छोमी तह माअही फुरदु णो सा किं च पंचालिआ
रोदीओ विलिहंतु कव्वकुसला जोण्हं चओरा विअ ॥ १ ॥

(भद्रं भवतु सरस्वत्याः कवयो नन्दन्तु व्यासादयः
अन्येषामपि परं प्रवर्त्ततां वरा वाणी विदग्धप्रिया ।

अन्वयः—सरस्वत्याः भद्रं भवतु, व्यासादयः कवयः नन्दन्तु, अन्येषाम् अपि विदग्धप्रिया वरा वाणी परं प्रवर्तताम्। वैदर्भी तथा मागधी किञ्च सा पाञ्चालिका रीतिका नः स्फुरतु, चकाराः ज्योत्स्नाम् इव काव्यकुशलाः (रीतिकाः) विलिहन्तु।

व्याख्या—सरस्वत्याः वाग्देवतायाः भद्रं मङ्गलं भवतु, सरस्वती विजयतामिति भावः। कवयः, व्यासादयः व्यासवल्मीकप्रभृतयः काव्यप्रणेतारः-नन्दन्तु आनन्दमनुभवन्तु, यतस्तेऽपि स्वप्रणीतग्रन्थैर्जगत आनन्दमुत्पादयन्ति। अन्येषां कालिदास-

---

सरस्वती देवी की जय हो, व्यास आदि कवि भी अपनी रचनाओं द्वारा समृद्ध होते रहें और भी कालिदास, भवभूति आदि कवियों की विद्वज्जनप्रिय

टिप्पणी—'सरस्वती' शब्द स्त्रीरत्न का भी पर्यायवाची है, अतः सरस्वती शब्द से स्त्रीरत्नभूत कर्पूरमञ्जरी नामक इस सट्टक की नायिका की भी प्रतीति होती है। वैदर्भी,

वैदर्भी तथा मागधी स्फुरतु नः सा किञ्च पाञ्चालिका
रीतिका विलिहन्तु काव्यकुशला ज्योत्स्नां चकोरा इव ॥ १ ॥)

अवि अ (अपि च)—

अकलिअपरिरंभविब्भमाइं अजणिअचुंबणडंबराइं दूरम् ।
अघडिअघणताडणाइं णिच्चं णमह अणंगरईणमोहणाइं ॥ २ ॥

भवभूति-प्रभृतीनाम् कवीनामपि विदग्धप्रिया विद्वज्जनमनोहारिणी वरा श्रेष्ठा वाणी वाक् परम् उत्कर्षेण प्रवर्तताम् प्रचलतु, वैदर्भी विदर्भदेशोद्भवा तथा मागधी मगधदेशोद्भवा किंच स। प्रसिद्धा पाञ्चालिका पञ्चालदेशोद्भवा रीतिका रीतिः नः अस्माकं स्फुरतु मनसि प्रकटीभवतु । चकोराः चातकपक्षिणः ज्योत्स्नां चन्द्रिकामिव काव्यकुशलाः काव्यार्थपर्यालोचने निपुणाः सामाजिकाः, रीतिकाः इमास्तिस्रो रीतीः, रीतित्रयविशिष्टां कर्पूरमञ्जरीमिति ध्वनिः । विलिहन्तु विशेषेणास्वादयन्तु ।

यथा चकोराश्चन्द्रिकामास्वाद्य प्रमोदमग्ना भवन्ति तथैव सहृदयवन्तः समाजिकाः रीतिरसास्वादेन प्रसन्ना भवन्त्विति भावः ॥ १ ॥

मधुर वाणी सर्वदा चलती रहे। वैदर्भी, मागधी और पाञ्चाली रीतियां हमारे ध्यान में तथा सामने रहे। सहृदय रसिक जन इन तीन रीतियों का उसी तरह विशेषरूप से आनन्द लें, जिस तरह ज्योत्स्ना का स्वाद लेकर चकोर पक्षी प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

मागधी और पाञ्चाली ये तीन रीतियाँ काव्य में प्रयुक्त शब्दगत शैलियों के नाम है। वैदर्भी रीति में माधुर्य की व्यञ्जना करने वाले सरस तथा सरल शब्दों द्वारा समास रहित रचना की जाती है। मागधी रीति में ओज गुण की व्यञ्जना करने वाले पद रहते हैं तथा समास का अधिक प्रयोग पाया जाता है। पाञ्चाली रीति में रचना पांच, छः पदों की समास से युक्त, ओज तथा कान्ति गुणयुक्त और मधुर तथा सुकुमार होती है। साहित्यदर्पणे-'पदसङ्घटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत् । उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा ॥ माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका । अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते । ओजःप्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः । समासबहुला गौडी ॥' सरस्वतीकण्ठाभरणे-'समस्तपञ्चषपदामोजःकान्तिसमन्विताम् । मधुरां सुकुमारां च पाञ्चालीं कवयो विदुः ॥' ॥ १ ॥

(अकलितपरिरम्भविभ्रमाणि अजनितचुम्बनडम्बराणि दूरम् ।
अगणितघनताडनानि नित्यं नमतानङ्गरत्योर्मोहनानि ॥ २ ॥)

अवि अ (अपि च)—

ससिखंडमंडणाणं समोहणासाणं सुरअणपिआणम् ।
गिरिसगिरिंदसुआणं संघाडो बो सुहं देउ ॥ ३ ॥
(शशिखण्डमण्डनयोः समोहनाशयोः सुरगणप्रिययोः ।
गिरिश-गिरीन्द्रसुतयोः सङ्घटना वः सुखं ददातु ॥ ३ ॥)

अन्वयः—(यूयम्) अकलितपरिरम्भविभ्रमाणि अजनितचुम्बनडम्बराणि अगणितघनताडनानि अनङ्गरत्योः मोहनानि दूरं यथा स्यात्तथा नित्यं नमत ।

व्याख्या—यूयं दर्शकाः रतिकामयोः आलिङ्गनविलासरहितानि चुम्बनप्रयास-शून्यानि घनताडनवर्जितानि सुरतानि नित्यमभिवन्दध्वम्, आस्वादयतेति वा ।

समास—न कलितः परिरम्भविभ्रमः येषु तानि = अकलित०, न जनितः चुम्बेन डम्बरः येषु तानि = अजनितचुम्बन०, न गणितं घनं ताडनं येषु तानि = अगणितघन०, अत्र सर्वेषु बहुव्रीहिसमासः, नमतः=नम् पर० लोट् मध्यम० बहु० ।

व्याख्या—शशिनः खण्डः मण्डनं भूषणं ययोस्तयोः शशिखण्डमण्डनयोः, चन्द्रकलाभूषितयोः संभोगेच्छावतोः देवानां प्रिययोः शङ्करपार्वत्योः सङ्गमः युष्मभ्यं दर्शकेभ्य आनन्दं ददातु । मोहने (सुरते) या आशा मोहनाशा, तया सह वर्तेते इति तयोः समोहनाशयोः, तत्पु० ।

और भी—दर्शकगण आलिङ्गन चेष्टा से रहित, चुम्बन के आडम्बर से शून्य और अंगविशेषों के कठिन ताडन से रहित काम और रति की सुरत क्रीडाओं को निरन्तर नमस्कार करें, अथवा उनका रसास्वाद करें ॥ २ ॥

और भी—चन्द्रकला से भूषित, संभोग की अभिलाषा रखने वाले, देवताओं के प्रिय शंकर और पार्वती का संगम तुम दर्शकों को आनन्द दे ॥ ३ ॥

टिप्पणी—काम और रति से यहाँ चन्द्रपाल और कर्पूरमञ्जरी की प्रतीति होती है। उनकी सुरतक्रीडाओं से संभोगश्रृंगार की ध्वनि निकलती है ॥ २ ॥

अवि अ (अपि च)—

ईसारोसप्पसादप्पणदिसु बहुसो सग्गगंगाजलेहि
आ मूलं पूरिदाए तुहिणअरअलारुप्पसुत्तीअ रुद्दो।
जोण्हामुत्ताफलिल्लं णदमउलिणिहित्तग्गहत्थेहिं दोहिं
अग्घं सिग्घं व देंतो जअइ गिरिसुआपाअपंकेरुहाणं ॥४॥

(ईर्ष्यारोषप्रसादप्रणतिषु बहुशः स्वर्गगङ्गाजलै-
रामूलं पूरितया तुहिनकरकलारूप्यशुक्त्या रुद्रः।
ज्योत्स्नामुक्ताफलाढ्यं नतमौलिनिहिताग्रहस्ताभ्यां द्वाभ्या-
मर्घ्यं शीघ्रमिव ददज्जयति गिरिसुतापादपङ्केरुहयोः ॥ ४ ॥)

अन्वयः—बहुशः ईर्ष्यारोषप्रसादप्रणतिषु द्वाभ्यां नतमौलिनिहिताग्रहस्ताभ्याम् स्वर्गगंगाजलैः आमूलम् पूरितया तुहिनकरकलारूप्यशुक्त्या ज्योत्स्नामुक्ताफलाढ्य । अर्घ्यम् शीघ्रम गिरिसुतापादपंकेरुहयोः ददत् इव रुद्रः जयति ।

व्याख्या—बहुशः पुनः पुनः ईर्ष्यारोषयोः सतोः प्रसादार्थं क्रियमाणासु प्रणतिषु पादतलपतनेषु, द्वाभ्यां नतमौलौ नतमस्तके निहिताग्रहस्ताभ्यां निक्षिप्तं अग्रहस्ताभ्याम् स्वर्गगंगाजलैः आमूलं पूरितया तुहिनकरकला चन्द्रकला एव रूप्यशुक्तिः तया, ज्योत्स्ना एव मुक्ताफलं तेन आढ्यं युक्तम् अर्घ्यं शीघ्रं मानवृद्धिभयात् गिरिसुतायाः पार्वत्याः पादपंकेरुहयोः चरणकमलयोः ददत् इव रुद्रः शंकरः जयति ॥४॥

सरलार्थः—स्वमस्तके गङ्गां स्थितां दृष्ट्वा पार्वत्याः ईर्ष्या तया च रोषः

और भी—शिवजी के मस्तक पर गङ्गा को देखकर उत्पन्न पार्वती की ईर्ष्या और क्रोध को शान्त करने के लिये उनके पैरों पर बार बार पड़ते हुये तथा अपने झुके हुये मस्तक पर रखे हुये दोनों अग्रहस्तनों द्वारा गङ्गा जल से अत्यन्त पूरित चन्द्रकलारूपी सीप से चन्द्रिकारूपी मोती से युक्त अर्घ्य को शीघ्र २ पार्वती के चरणों में देते हुये भगवान् शंकर सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥

टिप्पणी—'बहुशः' इस कथन से पार्वती के अत्यन्त मानिनी होने की व्यञ्जना होती है। अर्घ्यदान में शीघ्रता इसलिये कि कहीं पार्वती का मान और न बढ़ जाय। पार्वती के चरणों में चन्द्रकला का संबन्ध उनके कामावेश को बढ़ाने के लिये है ॥ ४ ॥

[नान्यन्ते]

सूत्रधारः—[परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य] । किं उण णिट्टपउट्टो विअ दीसदि अम्हाणं कुसीलवाणं परिजणो,—जदो एक्का पत्तोच्चिआइं सिअआइं उच्चिणेदि । इअरा कुसुमावलीओ गुंफेदि । अण्णा पडिसीसआइं पडिसारेदि । कावि क्खु वण्णिआओ पट्टए वट्टेदि । एस बंसे ठाविदो थाणो । इअं बोणा पडिसारीअदि । इमे तिण्णि मिअंगा सज्जीअंति । एस कांमतालाणं पक्खालणुज्जलाणं हल्लवोलो । एदं धुआगोदं आलवीअदि । ता किंचि कुडुंबं आकारिअ पुच्छिस्सं ? (किं पुनर्नृत्यप्रवृत्त इव दृश्यतेऽस्माकं कुशीलवानां परिजनः,—यत एका पात्रोचितानि सिचयानि उच्चिनोति । इतरा कुसुमावलीर्गुम्फति । अन्या प्रतिशीर्षकाणि प्रसारयति । काऽपि खलु वर्णिकाः पट्टे वर्त्तयति । एष वंशे स्थापितो ध्वानः । इयं वीणा

मंजातः, तस्य दूरीकरणाय शिवः पार्वत्याः चरणयोः पुनः पुनः पतन्नास्ते । एतदवसरे कविरुत्प्रेक्षते—यथा कश्चिद्भक्तः स्वदेवताप्रसादनार्थं जलपूरितया शुक्त्या मुक्तायुक्तं प्रणामपूर्वमर्घ्यं स्वहस्ताभ्यां ददाति, एवमेव शंकरः गंगाजलपूरितया चन्द्रकलारूपिशुक्त्या ज्योत्स्नामुक्ताफलं संमितमर्घ्यं पार्वती चरण कमलयोः शीघ्रं निवेदयन्निव प्रतिभाति ।

सूत्रधार—(घूम कर और नेपथ्य की ओर देखकर) हमारा नट समुदाय तो नृत्य में लगा हुआ सा दीखता है—क्योंकि कोई नटी तो पात्रों के लिये उचित वस्त्रों को ठीक कर रही है । कोई माला बना रही है । कोई पगड़ियां फैला रही है । कोई चित्रफलक पर कलम चला रही है । यह वेणु बजाना प्रारम्भ हुआ,

---

टिप्पणी—नन्दयति सभ्यान् इति नान्दी-सभ्यों को आनन्द देने वाली । अथवा नन्दयति देवान् इति नान्दी–देवताओं को प्रसन्न करने वाली । देवताओं के लिये नमस्कार अथवा सामाजिकों के लिये आशीर्वाद स्वरूप काव्यार्थ की सूचना देने वाला श्लोक नान्दी कहलाता है । नाटक की निर्विघ्न परिसमाप्ति तथा सामाजिकों के कल्याण के लिये यह

प्रतिसार्यते । इमे त्रयो मृदङ्गाः सज्ज्यन्ते । एष कांस्यतालानां प्रक्षालनोज्ज्वलानां हलहलः । एतद्ध्रुवागीतम् आलप्यते । तत् किमिति कुटुम्बमाकार्य पृच्छामि ?) [नेपथ्याभिमुखमवलोक्य संज्ञापयति]

[ततः प्रविशति पारिपार्श्विकः]

पारिपार्श्विकः—आणवेदु भावो । (आज्ञापयतु भावः)

सूत्रधारः—[विचिन्त्य] किं उण णिट्टपउट्टा विअ दीसध ? (किं पुनर्नृत्यप्रवृत्ता इव दृश्यध्वे ?)

पारिपार्श्विकः—भाव ! सट्टअं णच्चिदव्वं । (भाव ! सट्टकं नर्त्तितव्यम्)

यह वीणा साफ की जा रही है । यह तीन तरह के मृदङ्ग (लेपादिके द्वारा) सजाये जारहे हैं । यह साफ करने से चमकते हुये करतालों का शब्द है । यह ध्रुवागीत चल रहा है । तो क्यों न साथियों को बुलाकर पूछूं ।

(पर्दे की ओर देखकर नाम लेकर पुकारता है)

(तब पारिपार्श्विक (सूत्रधार का सहयोगी दूसरा नट) रंगमंच पर आता है)

पारि०—**श्रीमान् आज्ञा दें ।**

सूत्र०—**(विचार कर) तुमलोग नृत्य की तैयारी में लगे हुये से दिखाई पड़ते हो ।**

पारि०—**महाशय ! सट्टक का अभिनय करना है ।**

मंगलाचरण किया जाता है–'यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरंगः स उच्यते । प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि । तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये ॥ आशीर्वचनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान् नान्दीति संज्ञिता ॥ (सा. द.) । यहां पर यह नान्दी आठ पद की है । सूत्रधार मध्यम स्वर से नान्दीपाठ करता है ।

सूत्रधार—रङ्गमञ्च का प्रबन्धक–दिग्दर्शक–नाटकीय कथा के सूत्र को धारण करनेवाला । 'नर्तनीयकथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते । रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते' (सं. स.)

नेपथ्य—सजावट, वेशभूषा, वेशभूषाधारण करने का स्थान, यह प्रायः यवनिका के पीछे होता है ।

सूत्रधारः—को उण तस्स कई ? (कः पुनस्तस्य कविः ?)

पारिपार्श्विकः—

भाव ! कहिज्जदु एदं को भणई रअणिवल्लहसिहंडो ? ।
रहुउलचूडामणिणो महेंद्पालस्स को अ गुरु ? ॥ ५ ॥

(भाव ! कथ्यतामेतत् को भण्यते रजनीवल्लभशिखण्डः ? ।
रघुकुलचूडामणेर्महेन्द्रपालस्य कश्च गुरुः ? ॥ ५ ॥)

सूत्रधारः—[विचिन्त्य] पण्होत्तरं क्खु एदं । [प्रकाशम्] राअसेहरो । (प्रश्नोत्तरं खलु एतत् । राजशेखरः)

पारिपार्श्विकः—सो एदस्स कई । (स एतस्य कविः)

सूत्रधारः—किं सट्टअं ? (किं सट्टकम् ?)

पारिपार्श्विकः—[स्मृत्वा] कधिदं ज्जेव्व छइल्लेहिं । (कथितमेव विदग्धैः)

अन्वयः—भाव, रजनीवल्लभशिखण्डः कः ? कश्च रघुकुलचूडामणेः महेन्द्रपालस्य गुरुः भण्यते, एतत् कथ्यताम् ।

व्याख्या—भाव = हे विद्वन्, रजन्याः वल्लभः चन्द्रः अस्ति शिखण्डः शिरोभूषणं यस्य सः कः ? कश्च रघुकुलचूडामणेः रघुवंशशिरोमणेः महेन्द्रपालस्य एतन्नामकस्य संज्ञः गुरुः भण्यते कथ्यते । एतत् कथ्यताम् उच्यताम् । रजनीवल्लभशिखण्डशब्दः राजशेखरस्य पर्यायः, अतः राजशेखरः अस्य सट्टकस्य कविरिति सूच्यते । भावशब्दः विद्वत्पर्याय. 'भावो विद्वान्' इत्यमरः ॥ ५ ॥

सूत्र०—तो फिर उसका कवि कौन है ?

पारि०—श्रीमन्, रजनीवल्लभशिखण्ड कौन हैं ? और रघुकुलशिरोमणि महेन्द्रपाल का गुरु कौन हैं, यह बतलाइये ॥ ५ ॥

सूत्रधार—(स्वगत) यह तो प्रश्न का उत्तर है । (प्रकाशमें) राजशेखर ।

पारि०—वह इस सट्टक का लेखक है ।

सूत्रधार—सट्टक क्या होता है ?

पारि०—(कुछ स्मरण कर) विद्वानोंने कहा ही है:—

सो सट्टओ त्ति भणइ दूरं जो णाडिआइं अणुहरइ ।
किं उण एत्थ पवेसअविक्कंभाइं ण केवलं होंति ॥ ६ ॥
(तत् सट्टकमिति भण्यते दूरं यो नाटिका अनुहरति ।
किं पुनरत्र प्रवेशकविष्कम्भकौ न केवलं भवतः ॥ ६ ॥)

सूत्रधारः—[विचिन्त्य] । ता किं त्ति संकिअं परिहरिअ पाउदवंधे पउट्टो कई ? (तत् किमिति संस्कृतं परिहृत्य प्राकृतबन्धे प्रवृत्तः कविः ?)

पारिपार्श्विकः—सव्वभासाचउरेण तेण भणिदं ज्जेव्व ।
(सर्वभाषाचतुरेण तेन भणितमेव ।)

जधा (यथा)—

अत्थणिवेसा ते ज्जेव्व सद्दा ते ज्जेव्व परिणमंतावि ।
उत्तिविसेसो कव्वो भासा जा होइ सा होदु ॥ ७ ॥

जिस प्रबन्धमें नाटिकाओं का पूरा २ अनुकरण हो, केवल प्रवेशक और विष्कम्भक न पाये जाँय उसे सट्टक कहते हैं ॥ ६ ॥

सूत्र०—(विचार कर) यह तो कहिये कि संस्कृत भाषा को छोड़कर प्राकृत भाषा में कवि ने क्यों रचना की ?

पारि०—सब भाषाओं में चतुर उस कवि ने कहा ही है । जैसेः—

टिप्पणी—प्रवेशक-एक ऐसा अन्तर्गत कथाभाग है जो दो अंकों के बीच में आता है और बीती हुई तथा आगे होने वाली घटनाओं की सूचना नीच पात्रों के संवाद द्वारा देता है। इसके पात्र भी संस्कृततर भाषायें बोलते हैं। प्रवेशक विष्कम्भक जैसा ही होता है। केवल भेद इतना ही है कि विष्कम्भक प्रथम अङ्क के पूर्व भी आसकता है और प्रवेशक दो अङ्कों के मध्य में ही आता है। दूसरा भेद यह है कि विष्कम्भक में केवल मध्यपात्र ही नीच और मध्यम दोनों तरह के होते हैं और प्रवेशक में हमेशा नीच पात्र ही भाग लेते हैं ॥ ६ ॥

(अर्थनिवेशास्त एव शब्दास्त एव परिणमन्तोऽपि ।
उक्तिविशेषः काव्यं भाषा या भवति सा भवतु ॥ ७ ॥)

अवि अ (अपि च)—

**परुसा संक्किअबंधा पाउदबंधो वि होई सुउमारो ।
पुरुसमहिलाणं जेत्तिअमिहंतरं तेत्तिअमिमाणं ॥८॥**

(परुषाः संस्कृतबन्धाः प्राकृतबन्धोऽपि भवति सुकुमारः ।
पुरुषमहिलानां यावदिहान्तरं तावत् तेषु ॥ ८ ॥)

सूत्रधारः—**ता अप्पा किं ण वण्णिदो तेण ?** (तत् आत्मा किं न वर्णितस्तेन ?)

अन्वयः—परिणमन्तोऽपि अर्थनिवेशाः ते एव शब्दाः, ते एव काव्यम् उक्तिविशेषः, भाषा या भवति सा भवतु ।

भावार्थः—संस्कृततया परिवर्तमानाः अपि अर्थाः अभिधेयलक्ष्यव्यङ्ग्याः ते एव यथा प्राकृते तथैव संस्कृते । शब्दाः अपि ते एव, केवलम् असंस्कृततया प्राक विकृतरूपाः । रसात्मकं वाक्यं काव्यम् , भाषायां तु न विशेषादरः ॥ ७ ॥

भावार्थः—संस्कृतप्रबन्धाः परुषाः कर्कशाः कर्णकटवः भवन्ति, प्राकृतभाषायामेव निबद्धाः रचनाः मधुराः प्रसादगुणयुक्ताः भवन्ति । स्त्रीपुरुषयोः यावान् भेदः, यथा स्त्रियः सुकुमाराः पुरुषाः कठोराः भवन्ति तथैव प्राकृतरचनाः मधुराः, संस्कृतरचनास्तु श्रुतिकर्कशा एव ॥ ८ ॥

संस्कृत में बदल जाने पर भी काव्य का अर्थ वही रहता है, प्राकृत में भी वे ही शब्द प्रयुक्त होते हैं। चमत्कारयुक्त वाक्य काव्य कहा जाता है, भाषा चाहे जो हो, संस्कृत अथवा प्राकृत ॥ ७ ॥

और भी—संस्कृत भाषा में की गई रचनाएँ नीरस होती हैं, प्राकृत की रचनाएँ ही मधुर होती हैं। जिस तरह पुरुष कठोर होते हैं, उसी तरह संस्कृत रचनाएँ कठोर (कर्कश) होती हैं और जिस तरह स्त्रियां सुकुमार होती हैं, उसी तरह प्राकृत रचनाएँ मधुर और सुकुमार होती हैं ॥ ८ ॥

सूत्र०—**तो क्या, कवि ने अपना कुछ वर्णन नहीं किया है ?**

पारिपार्श्विकः—सुणु, वण्णिदो ज्जेव्व तक्कालकइणं मज्झम्मि मिअंकलेहाकहाआरेण अवराइएण। (शृणु, वर्णित एव तत्कालकवीनां मध्ये मृगाङ्कलेखाकथाकारेण अपराजितेन।

जधा (यथा)—

बालकई कइराओ णिब्भअराअस्स तह उवज्झाओ।
इत्ति अस्स परंपरए अप्पा माहत्तमारूढो॥ ९॥

(बालकविः कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्यायः।
इत्यस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमारूढः॥ ९॥

सो अस्स कई सिरिराअसेहरो तिहुअणं पि धवलेंति।
हरिणंकपालिसिद्धिए णिक्कलंका गुणा जस्स॥ १०॥

(स अस्य कविः श्रीराजशेखरः त्रिभुवनमपि धवलयन्ति।
हरिणाङ्कप्रतिपङ्क्तिसिद्ध्या निष्कलङ्का गुणा यस्य॥ १०॥)

अन्वयः—कविराजः तथा निर्भयराजस्य उपाध्यायः बालकविः इति परम्परया अस्य आत्मा माहात्म्यम् आरूढः।

व्याख्या—कविषु राजते इति कविषु राजा वेति कविराजः कविशिरोमणिः, तथा निर्भयराजस्य महेन्द्रपालस्य उपाध्यायः गुरुः, बालकविः अभिनवकविः एवंप्रकारेण अस्य राजशेखरस्य आत्मा परम्परया माहात्म्यमारूढः महिमानं प्राप्तः। राजशेखरः स्वयमात्मश्लाघां नाकरोत्, अपराजितनाम्ना कविना अस्य माहात्म्यं कीर्तितं तदेवात्र प्रशस्यते।

अन्वयः—अस्य स श्रीराजशेखरः कविः, यस्य निष्कलङ्काः गुणाः हरिणाङ्कप्रतिपङ्क्तिसिद्ध्या त्रिभुवनमपि धवलयन्ति।

व्याख्या—अस्य सट्टकस्य रचयिता स प्रसिद्धः श्रीराजशेखरः, यस्य विमलाः गुणाः चन्द्रप्रतिकूलतया भुवनत्रयमपि स्पर्धेरिद्ध्या धवलयन्ति चन्द्रस्तु सकलङ्कः

पारि०—सुनो, मृगाङ्कलेखा नामक कथा के लेखक तत्कालीन अपराजित कवि ने इसका वर्णन किया ही है। जैसेः—

बालकवि, कवियों में शिरोमणि एवं निर्भयराज महेन्द्रपाल का गुरु—इस प्रकार (गुरुशिष्य) की परम्परा से राजशेखर ने स्वयं बड़प्पन पाया॥ ९॥

इस सट्टक के लेखक श्रीराजशेखर कविराज हैं, जिनके निष्कलङ्क गुणों से त्रिभुवन

सूत्रधारः—ता केण समादिट्ठा पउंजध ? (तत् केन समादिष्टाः प्रयुङ्ग्ध्वम् ?)

पारिपार्श्विकः—

चाउहाणकुलमौलिआलिआ राअसेहरकइंदगेहिणी।
भत्तुणो किदिमवंतिसुंदरी सा पउंजइदुमेदमिच्छदि ॥११॥
(चाहुवानकुलमौलिमालिका राजशेखरकवीन्द्रगेहिनी।
भर्त्तुः कृतिमवन्तिसुन्दरी सा प्रयोजयितुमेतदिच्छति ॥११॥)

किंच—

चंदपालधरणीहरिणंको चक्कवट्टिपअलाहणिमित्तं।
एत्थ सट्टअवरे रससोत्ते कुंतलाहिवसुदं परिणेदि ॥१२॥
(चन्द्रपालधरणीहरिणाङ्कश्चक्रवर्त्तिपदलाभनिमित्तम्।
अत्र सट्टकवरे रसस्रोतसि कुन्तलाधिपसुतां परिणयति ॥१२॥)

केवलं भूतलमेव प्रकाशयति, राजशेखरस्य तु चरितं कलङ्करहितं त्रिभुवनप्रकाशकं चेति। चन्द्रादुपमानाद्राजशेखरस्योपमेयस्याधिक्यं वर्णितम्, तेनात्र व्यतिरेकालङ्कारः।

व्याख्या—चाहुवानकुलस्य विख्यातक्षत्रियवंशस्य मौलिमालिका शिरोमाल्यभूता कुलालङ्कारभूता, राजशेखरकवीन्द्रस्य गेहिनी भार्या या अवन्तिसुन्दरी नाम सा स्वभर्तुः राजशेखरस्य कृतिम् एतत् कर्पूरमञ्जरीनामसट्टकं नाट्येन प्रदर्शयितुमिच्छति। कवेरेव भार्या एतस्य प्रयोजिकेति भावः॥ ११॥

व्याख्या—चन्द्रपाल एव धरणीहरिणाङ्कः भूचन्द्रः चक्रवर्तिपदस्य लाभाय

उज्ज्वल हो रहा है। चन्द्रमा तो केवल एक भूतल को ही प्रकाशित करता है, ये तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं।

सूत्र०—किसकी आज्ञापाकर तुमलोग (इसका) प्रयोग (अभिनय) कर रहे हो।

चौहान कुल में उत्पन्न हुई, राजशेखर कवीन्द्र की पत्नी अवन्ति सुन्दरी अपने पति की इस रचना का अभिनय कराना चाहती है॥ ११॥

और भी—पृथिवी का चन्द्रमा राजा चन्द्रपाल चक्रवर्तीपद की प्राप्तिके लिये

ता भाव ! एहि, अणंतरकरणिज्जं संपादेम्ह, जदो महा-राअदेईणं भूमिअं घेत्तूण अज्जो अज्जभारिआ अ जवणिअं-तरे वट्टदि। (तत् भाव ! एहि, अनन्तरकरणीय सम्पादयावः, यतो महाराजदेव्योर्भूमिकां गृहीत्वा आर्य आर्यभार्या च जवनिकान्तरे वर्त्तते।)

[इति परिक्रम्य निष्क्रान्तौ]

[प्रस्तावना]

[ततः प्रविशति राजा देवी विदूषको विभवतश्च परिवारः।
सर्वे परिक्रम्य यथोचितमुपविशन्ति]

राज—देवि दक्खिणावहणरिंदणंदिणि ! वड्ढावीअसि

अस्मिन् रसानां शृङ्गारादीनां जलानां च स्रोतसि प्रवाहभूते सट्टकवरे श्रेष्ठनाटके कुन्तलाधिपस्य सुतां कर्पूरमञ्जरीं परिणयति तया सह विवाहसम्बन्धं करोति॥ १२॥

शृङ्गारादि रसों के सोतास्वरूप इस सट्टक में कुन्तल देश चे अधीश की कन्या कर्पूरमंजरी के साथ विवाह सम्बन्ध कर रहा है॥ १२॥

श्रीमन्! चलें आगे का काम करें, क्योंकि महाराज और देवी की भूमिका में आपको और आपकी धर्मपत्नी को जवनिका के अन्दर तैयार होना है।

(इस तरह घूमकर निकल जाते हैं)

(प्रस्तावना)

(तब राजा, रानी, विदूषक और अपने-अपने पद के अनुसार परिचर रङ्गमञ्च पर आते हैं। सब घूमकर उचित स्थानों पर बैठ जाते हैं।)

राजा—**देवि ! दक्षिण देश के राजा की पुत्रि ! इस वसन्त की शोभा से तो तुम**

टिप्पणी—भूमिका-नाटकीय पात्र, वेशभूषा। प्रस्तावना-प्रस्तूयते प्रकर्षेण सूच्यते कथावस्तु अनया-प्रस्तावना-जिसके द्वारा प्रकृष्ट रूप से नाटक की कथावस्तु की सूचना मिले। नटी, विदूषक और पारिपार्श्विक इत्यादि सूत्रधार के साथ मिलकर तरह तरह के प्रासङ्गिक वाक्यों द्वारा जहाँ प्रस्तुत वस्तु की सूचना देते है, उसे प्रस्तावना या आमुख कहते हैं। यहाँ प्रस्तावना में यह सूचना दी गई कि कर्पूरमञ्जरी नामक सट्टक का अभिनय होगा, चन्द्रपाल राजा इसका नायक है, कर्पूरमञ्जरी इसकी नायिका है और शृङ्गार रस इसमें मुख्यतया है तथा उनके विवाह की कथा इसमें बतलाई जायगी।

इमिणा वसंतारंभेण। (देवि दक्षिणापथनरेन्द्रनन्दिनन्दिनि ! वर्द्धसेऽनेन वसन्तारम्भेण।) जदो (यतः)—

बिंबोट्ठे बहलं ण देंति मअणं णो गंधतेल्लाविला
वेणीआ विरअंति देंति ण तहा अंगम्मि कुप्पासअं।
जं बाला मुहकुंकुमम्मि वि घणे वट्टंति ढिल्लाअरा
तं मण्णे सिसिरं विणिज्जिअ बला पत्तो बसंतूसओ ॥१३॥

(बिम्बोष्ठे बहलं न ददति मदनं नो गन्धतैलाविला
वेणीर्विरचयन्ति ददति न तथाऽङ्गेऽपि कूर्पासकम्।
यत् बाला मुखकुङ्कुमेऽपि घने वर्त्तन्ते शिथिलादराः
तन्मन्ये शिशिरं विनिर्जित्य बलात् प्राप्तो वसन्तोत्सवः ॥१३॥)

अन्वयः—बालाः बिम्बोष्ठे बहलं मदनं न ददति, गन्धतैलाविलाः वेणीः ना विरचयन्ति तथा अङ्गे कूर्पासकम् अपि न ददति, यत् घने मुखकुङ्कुमे अपि शिथिलादराः वर्तन्ते तत् शिशिरम् बलात् विनिर्जित्य वसन्तोत्सवः प्राप्तः, (इति) मन्ये।

व्याख्या—बालाः षोडशवर्षीयाः कुमार्यः बिम्बोष्ठे बिम्बसदृशे ओष्ठे शीतजनितव्रणापनयनार्थम् बहलं समधिकं मदनं विलेपनविशेषं न प्रयुञ्जन्ति, गन्धतैलेन सुगन्धिततैलेन आविलाः सम्पृक्ताः वेणीः केशपाशान् नो विरचयन्ति बध्नन्ति तथा अङ्गे कूर्पासकम् चेलिकामपि न परिदधति, यत् यतः घने गाढे मुखकुङ्कुमे मुखरागे अपि शिथिलादराः निष्प्रयत्नाः वर्तन्ते, तत् तस्मात् शिशिरम् बलात् शक्त्या विनिर्जित्य जित्वा वसन्तोत्सवः वसन्तर्तुमहोत्सवः प्राप्तः समुपागतः इति मन्ये सम्भावयामि ॥ १३ ॥

बड़ी प्रसन्न मालूम होती हो। क्योंकिः—

बालायें—ओठों पर विलेपन (क्रीम) का अधिक प्रयोग नहीं करती हैं, सुगन्धित तैल से अपने केशपाशों का शृङ्गार नहीं करती हैं तथा अपने शरीर पर चोली तक नहीं पहिनती हैं और वस्त्र का तो कहना ही क्या मुख पर कुङ्कुम राग तक लगाने का ध्यान नहीं है। इस कारण मैं समझता हूँ कि शीत ऋतु को जीतकर वसन्त ऋतु का महोत्सव उपस्थित है ॥ १३ ॥

देवी—देव ! अहं वि तुज्झ पडिबद्धाविआ भविस्सं ।
(देव ! अहमपि तव प्रतिबद्धिका भविष्यामि)

जधा (यथा)—

छल्लंति दंतरअणाइं गदे तुसारे
ईसीसि चंदनरसम्मि मणः कुणंति ।
एण्हिं सुवंति घरमज्झमसालिआसु
पाअंतपुंजिअपडं मिहुणाइं पेच्छ ॥ १४ ॥

(स्फुरन्ति दन्तरत्नानि गते तुषारे
ईषदीषच्चन्दनरसे मनः कुर्वन्ति ।
इदानीं स्वपन्ति गृहमध्यमशालिकासु
पादान्तपुञ्जितपटं मिथुनानि प्रेक्षस्व ॥ १४ ॥)

अन्वयः—इदानीं तुषारे गते दन्तरत्नानि स्फुरन्ति, मिथुनानि चन्दनरसे इषत् इषत् मनः कुर्वन्ति, गृहमध्यमशालिकासु पादान्तपुञ्जितपटम् स्वपन्ति प्रेक्षस्व ।

व्याख्या—इदानीम् अधुना, तुषारे शीततौ, गते व्यतीते, सति (स्त्रीपुरुषाणां) दन्तरत्नानि दन्ता एव मणयः स्फुरन्ति विकसितानि भवन्ति, मिथुनानि द्वन्द्वानि स्त्रीपुरुषरूपाणि, चन्दनरसे तदाख्यगन्धद्रव्यविलेपने इति यावत्, ईषद् ईषद् अल्पाल्पम् यथास्यात्तथा, मनः चित्तम्, कुर्वन्ति योजयन्ति, गृहमध्यशालिकासु गृहमध्यवर्तिस्थानेषु पादान्तपुञ्जितपटं पादान्तेषु चरणान्तिमभागेषु पुञ्जिता एकत्र-कृताः, सङ्कोचिता इति यावत्, पटा आवरणवस्त्राणि यस्मिन् कर्मणि तद्यथास्यात्तथा स्वपन्ति निद्रां कुर्वन्ति, प्रेक्षस्व अवलोकय ॥ १४ ॥

देवी—महाराज ! मैं भी तुम्हारी तरह वसन्तवर्णन करूँगी । जैसे किः—

अब शीत के समाप्त हो जाने पर स्त्रीपुरुषों के दांत चमकने लगे हैं । चन्दन के लेप की भी कुछ २ इच्छा स्त्रीपुरुषों की हो चली है । अपने २ घरों के मध्यदेश में अब स्त्रीपुरुष सोने लगे हैं और रात्रि में शीत के बढ़ आने के भय से चादर केवल पैरों के पास किनारे बटोर लेते हैं ॥ १४ ॥

[नेपथ्ये]

वैतालिकः—जअ पुव्वदिअंगणाभुअंग ! चंपाचंपककण्णऊर ! लीलाणिज्जिअराढदेस ! विकमक्कंतकामरुअ ! हरिकेलीकेलिआरअ ! अवमाणिअजच्चसुवण्णवण्ण ! सव्वंगसुंदरत्तणरमणिज्ज ! सुहाअ दे होदु सुरहिममारंभो । इह हि—(जय पूर्वदिगङ्गनाभुजङ्ग ! चम्पाचम्पककर्णपूर ! लीलानिर्जितराढदेश ! विक्रमाक्रान्तकामरूप ! हरिकेलीकेलिकारक ! अपयानितजात्यसुवर्णवर्ण ! सर्वाङ्गसुन्दरत्वरमणीय ! सुखाय ते भवतु सुरभिसमारम्भः । इह हि—)

(नेपथ्य में)

वैतालिक—पूर्वदिशा के स्वामी । चम्पा नगरी का पालन करने वाले । राढदेश को खेल खेल में ही जीतने वाले । कामरूप देश के विजेता । हरिकेली देश में विहार करने वाले, पराजित किये हुये लोगों में सुवर्ण की तरह चमकने वाले, सब अङ्गों के सौन्दर्य से युक्त हे राजन् ! तुम्हारी जय हो, बसन्त ऋतु का आगमन तुम्हारे लिये सुखकारक हो । यहाँ पर:—

टिप्पणी—चम्पा-पूर्व दिशा के एक नगर का नाम-आधुनिक भागलपुर, चम्पकाना कर्णपूरः=चम्पककर्णपूरः-चम्पायाः चम्पककर्णपूरः=चम्पाचम्पककर्णपूरः, तत्सम्बुद्धौ (तत्पु०) । पूर्वा दिक् एव अङ्गना=पूर्वदिगङ्गना तस्याः भुजंगस्तत्सम्बुद्धौ=पूर्वदिगंगनाभुजंग (तत्पु०)-भुजंग=प्रेमी । लीलया निर्जितः राढदेशः येन सः, तत्संबुद्धौ लीलानिर्जितराढदेश (बहु०) । राढ-बंगाल के एक प्राचीन नगर का नाम; आधुनिक बर्दवान । विक्रमेण आक्रान्तः कामरूपः येन सः तत्सम्बुद्धौ विक्रमाक्रान्तकामरूप (बहुव्रीहि) । कामरूप-आसाम प्रान्त का पश्चिमी हिस्सा । हरिकेल्या एतदाख्यदेशे एतदाख्यकामिन्या वा केलिकारकः, तत्सम्बुद्धौ हरिकेलीकेलिकारक (तत्पु०) । हरिकेली-बंगाल के एक भाग का नाम, अथवा इस नाम की कोई स्त्री । अपमानितेषु जात्येषु सुवर्णः वर्णः यस्य तत्सबुद्धौ-अपमानितजात्यसुवर्णवर्ण (बहु०) पराजित किये हुये कुलीनों मे सुवर्ण की तरह चमकने वाला । किन्हीं २ हस्तलिखित प्रतियों में 'अवमानिदकण्णसुवण्णदाण (अपमानितकर्णसवर्णदान)' यह पाठ मिलता है । इसके अनुसार यह अर्थ होगा—अपमानितं कर्णसुवर्णानां दानं येन सः—अस्वीकृत कर दिया है कर्णसुवर्ण देश के लोगों का दान जिसने—कर्णसुवर्ण आधुनिक मुर्शिदाबाद का नाम माना जा चुका है, इस लिये यह अर्थ भी ठीक हो सकता है, क्योंकि साथ में और भी स्थानों के नाम आ-चुके है । अपने देश को आक्रमण से बचाने के लिये

पंडीणं गंडवालीपुलअणचवला कंचिबालावलीणं
माणं दो खंडअंता रइरहसकला लोलचोलप्पिआणं ।
कण्णाडीणं कुणंता चिउरतरलणं कुंतलीणं पिएसुं
गुंफंता णेहगंथिं मलअसिहरिणो सीअला वांति वाआ ॥१५॥

(पाण्डीनां गण्डपालीपुलकनचपलाः काञ्चीबालाबलीनां
मानं द्विः खण्डयन्तो रतिरभसकरा लोलचोलाङ्गनानाम् ।
कर्णाटीनां कुर्वन्तो कुन्तलतरलनं कुन्तलीनां प्रियेषु

अन्वयः—पाण्डीना गण्डपाली पुलकनचपलाः काञ्चीबालावलीनाम् मानं द्विः खण्डयन्तः, लोलचोलाङ्गनानाम् रतिरभसकराः, कर्णाटीनां कुन्तलतरलनं कुर्वन्तः, कुन्तलीनाम् प्रियेषु स्नेहग्रन्थिम् गुम्फन्तः मलयशिखरिणः शीतलाः वाताः वान्ति ॥

व्याख्या—पाण्डीनाम् पाण्डदेशोद्भवानां रमणीनाम् गण्डपाल्योः कपोलयोः पुलकेन रोमाञ्चोत्पादने चपलाः प्रवणाः, काञ्चीबालानाम् चाञ्चीदेशोद्भवतरुणीनां याः आवलयः पङ्क्तयस्तासां मानं प्रियेषु प्रणयकोपं द्विः वारद्वयं सायं प्रातरिति यावत् खण्डयन्तः निराकुर्वन्तः, लोलाश्च ताः चोलाङ्गनाः चोलदेशीयाः नार्यः तासां रतौ सुरतोत्सवे रभसं शीघ्रतामुत्पादयन्तः, कर्णाटीनां कर्णाटदेशीयानाम् सुन्दरीणां कुन्तलस्य केशपाशस्य तरलनं कम्पनं कुर्वन्तः उत्पादयन्तः, कुन्तलीनां कुन्तलदेश-

---

पाण्ड देश की रमणियों के कपोलों में रोमाञ्च उत्पन्न करने वाली, काञ्ची देश की कामिनियों के अपने प्रिय सम्बन्धी प्रणयकोप को सायं प्रातः भंग

कर्णसुवर्ण के लोगों का दान देना सम्भव हो सकता है । पाण्डी = पाण्ड्य देश की स्त्रियों का नाम । पाण्ड्य = भारत के सुदूर दक्षिण का एक देश जो कि चोलदेश के दक्षिण-पश्चिम में पड़ता है । मलय पर्वत और ताम्रपर्णी नदी से इसकी स्थिति निश्चित होती है । आधुनिक तिनेवली यह स्थान ही है । काञ्चीप्राचीन द्रविड़ देश की राजधानी, आधुनिक काञ्जीवरम् जो मद्रास के दक्षिण-पश्चिम में ४२ मील दूर पर वेगावती नदी पर स्थित है । चोल = कावेरी के तट पर स्थित और सभवतः आधुनिक मैसूर का दक्षिण भागीय एक प्राचीन देश । कर्णाट = भारतीय प्रायद्वीप का दक्षिण का एक देश, आजकल का कर्नाटक । कुन्तल = चोलदेश के उत्तर में एक प्राचीन देश, आजकल के हैदराबाद का दक्षिण-पश्चिमी हिस्सा । इस श्लोक से चन्द्रपाल के इन २ देशों के राजा होने की व्यञ्जना होती है । दक्षिणी हवाओं के कामोद्दीपक होने का वर्णन किया गया है ॥

गुम्फन्तः स्नेहग्रन्थिं मलयशिखरिणः शीतला वान्ति वाताः ॥१५॥)

(अत्रैव)

द्वितीयः—

जादं कुंकुमपंकलोढमरठोगंडप्पहं चंपअं
थोआवट्टिअदुद्धमुद्धकलिआ पप्फुल्लिया मल्लिआ ।
मूले सामलमग्गलग्गभमलं लक्खिज्जए किंसुअं
पिज्जंतं भमलेहि दोहि वि दिसाभाएसु लग्गेहिं व ॥ १६ ॥

(जातं कुङ्कुमपङ्कलोढमहाराष्ट्रीगण्डप्रभं चम्पकं
स्तोकावर्त्तितदुग्धमुग्धकलिका प्रोत्फुल्लिता मल्लिका ।

भवानां कामिनीनाम् प्रियेषु कान्तेषु स्नेहग्रन्थिं प्रेमपाशं गुम्फन्तः जनयन्तः मलयपर्वतस्य शीतलाः पाताः पादवः वान्ति वहन्ति । अयं मलयसमीरणः नितरां कामोद्दीपक इत्युच्यते ॥ १५ ॥

अन्वयः—चम्पकम् कुङ्कुमपङ्कलीढमहाराष्ट्रीगण्डप्रभम्, स्तोकावर्तितदुग्धमुग्धकलिका मल्लिका प्रोत्फुल्लिता, किंशुकम् मूले श्यामलम् अग्रलग्नभ्रमरं द्वाभ्यामपि दिशाभागेषु लग्नाभ्याम् मधुपाभ्याम् पीयमानम् इव लक्ष्यते ।

व्याख्या—चम्पकपुष्पं कुङ्कुमरागावलिप्तमहाराष्ट्रीकपोल इव पीतरक्तम् विद्यते, ईषदालोडितं यत दुग्धं तद्वत् सुन्दरीभिः कलिकाभिः युक्ता मल्लिका नाम

करने वाली, चोलदेश की चपल नारियों को संभोग के लिये प्रेरित करने वाली, कर्णाट देश की स्त्रियों के केशपाश को शिथिल बनाती हुई, कुन्तल देश की स्त्रियों को अपने प्रेमियों के आलिंगन पाश में बांधती हुई मलयाचल की ठण्डी हवायें चल रही हैं ॥ १५ ॥

दूसरा वैतालिक—कुंकुम राग लगे हुए महाराष्ट्र की स्त्रियों के कपोलों की तरह चम्पा फूल पीला और लाल हो गया है। चूंकि महाराष्ट्र की स्त्रियाँ गौरवर्ण की

टिप्पणी—महाराष्ट्रीणा गण्डः = महाराष्ट्रीगण्डः, कुङ्कुमपङ्केन लीढः = कुङ्कुमपङ्कलीढः, कुङ्कुमपङ्कलीढश्चासौ महाराष्ट्रीगण्डः = कुङ्कुमपङ्कलीढमहाराष्ट्रीगण्डः, तस्य प्रभा इव प्रभा अस्ति यस्य तद् = कुङ्कुमपङ्कलीढमहाराष्ट्रीगण्डप्रभम् । स्तोकम् आवर्तितम् यत् दुग्धं =

मूले श्यामलमग्रलग्नभ्रमरं लक्ष्यते किंशुकं
पीयमानं मधुपाभ्यां द्वाभ्यामपि दिशाभागेषु लग्नाभ्यामिव ॥१६॥)

राजा—पिए विब्भमलेहए ! एक्को अहं वड्ढावओ तुज्झ, एक्का तुमं वड्ढाविआ मज्झ। किं उण दुवे वि अम्हे वड्ढाविआ कंचणचंड-रअणचडेहिं वंदीहिं ? ता विब्भमगव्वप्पअट्टाविअं तरुणीणं, णट्टावअं मलअमारुदंदोलिदाणच्चणीणं, चारुप्पपंचिदपंचमं कलअंठिकंठकंदलेसु, कंदलिअकंदप्पकोअंडदंडखंडिदचंडिमं, सिणिद्धबंधुं बसुंधरापुरंधीए विसारिअ प्पसिदिप्पमाणे अच्छिणी महुच्छवं जहिच्छं पेक्खदु देवी। (प्रिये विभ्रमलेखे ! एकोऽहं वर्द्धापकस्तव, एका त्वं वर्द्धापिका मम। किं पुनर्द्वावपि आवां वर्द्धापितौ काञ्चनचण्ड-रत्नचण्डाभ्यां वन्दिभ्याम् ? तद्विभ्रमगर्वप्रवर्त्तकं तरुणानां नर्त्तकं मलयमारुतान्दोलितलतानर्त्तकीनां, चारुप्रपञ्चित-

---

पुष्पलता विकसिता वर्तते किंशुकपुष्पं मूले तु स्वभावादेव श्यामवर्णम्, अग्रभागे च तस्य भ्रमरोः संलग्नाः विद्यन्ते, अतः द्वयोरपि स्थानयोः द्वाभ्यां भ्रमराभ्याम् पीयमानमिव प्रतीयते ॥ १६ ॥

होती हैं, अतः ऐसा कहा गया है। कुछ २ बिलोए हुए दुग्ध की तरह सुन्दर कलियों वाली मल्लिका पुष्पलता भी खिल उठी है। मूलभाग में काले वर्ण का तथा अग्रभाग में भौंरों से युक्त पलाश कुसुम ऐसा लगता है जैसे कि इसके दोनों ओर दो भौंरें बैठे हों और इसका रसपान कर रहे हों ॥ १६ ॥

राजा—प्रिये विभ्रमलेखे ! (वसन्तवर्णन से) मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूँ और तुम मुझे प्रसन्न करती हो, किन्तु रत्नचण्ड और काञ्चनचण्ड यह दोनों वैतालिक

स्तोकावर्तितदुग्धम् तद्वत् मुग्धाः कलिकाः यस्याः=स्तोकावर्तितदुग्धमुग्धकलिका। पीयमानम्=पा पाने-शानच्, कर्मवाच्य ॥ १६ ॥

टिप्पणी—विभ्रमश्च गर्वश्च तौ विभ्रमगर्वौ तयोः प्रवर्तकस्तम्=विभ्रमगर्वप्रवर्तकम्। लता एव नर्तक्यः=लतानर्तक्यः, मलयमारुतेन आन्दोलिताः याः लतानर्तक्यः, तासाम्=मलयमारुतान्दोलितलतानर्तकीनाम्। चारु प्रपञ्चितः पञ्चमः येन तम्=चारुप्रपञ्चित-

पञ्चमं कलकण्ठीकण्ठकन्दलेषु, कन्दलितकन्दर्पकोदण्डदण्डखण्डित-चण्डिमानं, स्निग्धबान्धवं वसुन्धरापुरन्ध्र्याः विस्तार्य प्रसृतिप्रमाणे अक्षिणी मधूत्सवं यथेच्छं प्रेक्षतां देवी)

देवी—जधा किल णिवेदिदं वंदीहिं; प्पउट्टा ज्जेव्व मलआणिला। (यथा किल निवेदितं वन्दिभ्याम; प्रवृत्ता एव मलयानिलाः।)

तधा अ (तथाहि)—

लंकातोरणमालिआ तरलिणो कुंभुब्भवस्सास्समे
मंदंदोलिअचंदणद्दुमलदाकप्पूरसंपक्किणो।
कंकोलो कुलकंपिणो फणिलदाणिप्पट्टणट्टावआ
चंडं चुंविदतंबवण्णि सलिला वाअंति चित्ताणिला ॥१७॥
(लङ्कातोरणमालिकातरलिनः कुम्भोद्भवस्याश्रमे

व्याख्या—लंकायाः तोरणं बहिर्द्वारं तत्र विन्यस्ता याः मालिकाः हाराः तासां

हम दोनों को प्रसन्न करते हैं। तरुणियों में विलास और गर्व उत्पन्न करने वाला, मलयाचल की हवाओं से लहराती हुई लतारूपी नर्तकियों को नचाने वाला, कोकिलों के कण्ठसमूह में पञ्चम स्वर प्रेरित करने वाला, नवप्रादुर्भूत कामदेव के धनुष के दण्ड से प्रेमिकाओं के अपने प्रियसम्बन्धी कोप को दूर करने वाला, बन्धु बान्धवों में प्रेम उत्पन्न करने वाला वसुन्धरारूपी रमणी का यह वसन्तोत्सव, हे देवि, अपनी आंखों को हथेली बराबर फैलाकर इच्छानुसार देखो।

देवी—जैसा कि वैतालिकों ने कहा, ठीक ही है। मलयाचलकी हवायें वास्तव में चलने लगी हैं। जैसे कि:—

लंका नगरी के बहिर्द्वार पर स्थित मालाओं को हिलाने वाली, अगस्त्य ऋषि

पञ्चमम्। (बहु०) कन्दलितश्चासौ कन्दर्पः=कन्दलितकन्दर्पः तस्य कोदण्डः=कन्दलित-कन्दर्पकोदण्डस्तस्य दण्डेन खण्डितः चण्डिना यस्मिन् तम्=कन्दलितकन्दर्पकोदण्डदण्ड-खण्डितचण्डिमानम्, प्रसृतिः=वितस्ति-हथेली, प्रसृतिः प्रमाणं ययोस्ते प्रसृतिप्रमाणे। वन्दी=वैतालिक, कन्दल (न०)=समूह। चण्डिमा (पु०)=अत्यन्त क्रोधी होना।

मन्दान्दोलितचन्दनद्रुमलताकर्पूरसम्पर्किणः ।
कङ्कोलीकुलकम्पिनः फणिलतानिष्पष्टनर्त्तका-
श्चण्डं चुम्बितताम्रपर्णीसलिला वान्ति चैत्रानिलाः ॥१७॥)

अवि अ (अपि च)—

माणं मुंचध देह बल्लहजणे दिट्ठिं तरंगुत्तरं
तारुण्ण दिअहाइ पंच दह वा पीणत्थणत्थंभणं ।
इत्थं कोइलमंजु सिंजणमिसा देअस्स पंचेसुणो
दिण्णा चित्तमहूसवेण भुअणे आण व्व सव्वंकसा ॥१८॥

(मानं मुञ्चत ददत वल्लभजने दृष्टिं तरङ्गोत्तरां

तरलिनः प्रकम्पिनः, कुम्भोद्भवस्य अगस्त्यस्य आश्रमे तपोवने (दक्षिणदिशि) मन्दम् आन्दोलिताः ये चन्दनद्रुमाः लताकर्पूराश्च तेषां सम्पर्किणः सम्पर्कवन्तः कङ्कोलीनां लताविशेषाणां कुलानि कम्पयन्तीति कङ्कोली कुलकम्पिनः, फणिलतानां ताम्बूलवल्लीनां निष्पष्टं मन्दं नर्तकाः, चण्डम् अत्यन्तम् ताम्रपर्णीसलिलस्पर्शवन्तः चैत्रानिला; चैत्रमासीयाः वायवः वान्ति प्रचलन्ति। अत्र वायोः शैत्यसौरभ्यमान्द्यादि-गुणा उक्ताः ॥ १७ ॥

अन्वयः—मानं मुञ्चत, वल्लभजेन तरंगोत्तरां दृष्टिं ददत, पीनस्तनस्तम्भनम् तारुण्यं पञ्च दश वा दिवसानि, इत्थं कोकिलमञ्जुशिञ्जनमिषात् देवस्य पञ्चेषोः सर्वंकषा आज्ञा इव चैत्रमहोत्सवेन दत्ता ।

व्याख्या—मानं प्रियजनेषु कोपं मुञ्चत त्यजत, वल्लभजने प्रियजने तरंगो-

---

के आश्रम में अर्थात् दक्षिण दिशा में मन्द मन्द हिलती हुई चन्दन और कर्पूर की लताओं के सौरभ से युक्त, कङ्कोली (काली मिर्च) लताओं को कंपाने वाली, ताम्बूल वल्लियों को मन्द मन्द नचाने वाली और ताम्रपर्णी नदी के जल का अत्यन्त स्पर्श लिए हुई चैत्र मास की हवायें चल रही हैं। यहाँ पर वायु के शैत्य, मान्द्य और सौरभ इन तीनों गुणों का वर्णन किया गया है ॥ १७ ॥

और भी—मान को छोड़ो, प्रियजनों को प्रेमभरी दृष्टि से देखो, स्तनों के उभार

तारुण्यं दिवसानि पञ्च दश वा पीनस्तनस्तम्भनम् ।
इत्थं कोकिलमञ्जुशिञ्जनमिषाद् देवस्य पञ्चेषो-
र्दत्ता चैत्रमहोत्सवेन भुवने आज्ञेव सर्वङ्कषा ॥ १८ ॥)

विदूषकः—भो ! तुम्हाणं सव्वाणं मज्झे अहम् एक्को काल-क्खरिओ, जस्स मे ससुरस्स ससुरो पंडिअवरे पुत्थि आइं वहंतो आसि । (भोः ! युष्माकं सर्वेषां मध्येऽहमेकः कालाक्षरिकः, यस्य मे श्वशुरस्य श्वशुरः पण्डितगृहे पुस्तकानि वहन्नासीत्)

तराम् अत्युत्सुकाम् दृष्टिं ददत प्रियतमान् सोत्कण्ठं पश्यतेति भावः । पीनयोः स्थूलयोः स्तनयोः स्तम्भनं यस्मिन् तत् पीनस्तनस्तम्भनम् पीनपयोधरस्थापकम् तारुण्यं यौवनं पञ्चदश वा दिवसानि एव तिष्ठति न शाश्वतमिति भावः । इत्थमुक्त-प्रकारं कोकिलानां मञ्जु मधुरं यत् शिञ्जनं कूजनं तस्य मिषात् छलेन देवस्य पञ्चेषोः कामदेवस्य सर्वंकषा सर्वव्यापिनी आज्ञा इव चैत्रमहोत्सवेन वसन्तमहोत्सवेन दत्ता प्रसारिता ॥ १८ ॥

से युक्त यह यौवन केवल पांच दस दिन तक ही रहने वाला है । कोकिल की मधुर कूक के द्वारा कामदेव की इस सर्वव्यापी आज्ञा को चैत्रमहोत्सव घोषित करता सा जान पड़ता है ॥ १८ ॥

विदूषक—तुम सब में मैं ही एक मूर्ख हूँ । मेरे ससुर का ससुर भी पंडितों के यहाँ पुस्तकें उठाता रहता था ।

टिप्पणी—पञ्च इषवः सन्ति यस्य तस्य पञ्चेषोः=कामदेवस्य । कामदेव को पञ्चवाण इसलिए कहा जाता है कि उसके पांच वाण हैं यथा—अरविंद, अशोक, आम्र, नील कमल और नवमल्लिका । अरविंदमशोकञ्च चूतं च नवमल्लिका । नीलोत्पलं च पंचैते पञ्चवाणस्य सायकाः ॥ (अमर) यहाँ पर मञ्जुशिंजन का प्रतिषेध करके आज्ञा की स्थापना की गई है अतः अपह्नुति अलंकार है, उसके साथ ही आज्ञा की उत्प्रेक्षा की गई है । इसलिए उत्प्रेक्षा और अपह्नुति का संकर है । सर्वंकषा-सर्वं कषति या सा सर्वंकषा—सर्व+कष्+अ+आ=सर्वंकषा—खच् प्रत्ययः स्त्रीलिंग का चिह्न आ प्रत्यय और सर्व के म् जोड़ दिया गया है ॥ १८ ॥

चेटी—[विहस्य]। तदो आगदं दे अण्णएण पंडिच्चएं। (तत आगतं ते अन्वयेन पाण्डित्यम् ।)

विदूषकः—[सक्रोधम]। आः दासीए धूए! भविस्सकुट्टणि! णिल्लक्खणे! अविअक्खणे! ईदिसोऽहं मुक्खो जो तए वि उवहसिआमि? अण्णं च, हे परपुत्तविट्टालिणि! रच्छालोट्टणि! भमलटेंटे! टेंटाकराले! कोससदापहारिणि! दुट्टसंघडिदे! अहवा हत्थकंकणं किं दप्पणेण पेक्खीअदि? (आः दास्याः पुत्रि! भविष्यत्कुट्टनि! निर्लक्षणे! अविचक्षणे! ईदृशोऽहं मूर्खो यस्त्वयाऽप्युपहस्ये? अन्यच्च, हे परपुत्रविट्टालिनि! रथ्यालुण्ठिनि! भ्रमरटेण्टे! टेण्टाकराले! कोषशतापहारिणि! दुष्टसंघटिते! अथवा हस्तकङ्कणं किं दर्पणेन दृश्यते?)

विचक्षणा—[विभाव्य] एव्व णेदं, तुरगस्स सिग्घत्तणे किं साक्खिणो पुच्छीअंति? ता वण्णअ वसतअं। (एवमेतत, तुरङ्गस्य शीघ्रत्वे किं साक्षिणः पृच्छ्यन्ते? तद्वर्णय वसन्तम् ।)

विदूषकः—तुमं उण पंजरगदा सारिअव्व कुरुकुराअंतो

चेटी—(हंस कर) तब तो तुम वंशपरंपरा के विद्वान् ठहरे।

विदूषक—(क्रोध के साथ) अरे दासी की पुत्रि, कुट्टिनी होने वाली, निर्लक्षण और मूर्ख! मैं क्या ऐसा मूर्ख हूँ कि तू भी मेरा उपहास करे। दूसरों के पुत्रों को भ्रष्ट करने वाली, सुरापानादि से गली में लोटने वाली, भ्रमर की तरह इधर उधर घूमने वाली, झगडालू, मिथ्या शपथ खाने वाली और दुश्चरित्रों के साथ रहने वाली, हाथ कंगन को आरसी क्या?—तेरा चरित्र तो सब को मालूम ही है॥

विचक्षणा—हाँ, ऐसा ही है, घोड़े की चाल क्या गवाहों से पूंछी जाती है? जरा वसन्त का वर्णन करो तो।

विदूषक—तू तो पिंजड़े की मैना की तरह कुरकुराती ही है, कुछ भी तो नहीं जानती। मैं अपने प्रियवयस्य राजा और महारानी के सामने ही पढूंगा। कस्तूरी

चिट्ठसि, ण किं पि जाणेसि, ता पिअवअस्सस्स देवीए अ पुरदो पढिस्सः जदो ण कत्थूरिआ कुग्गामे वणे वा विक्किणीअदि, ण सुवण्णं कसवट्टिअं विणा सिलापट्टए कसीअदि । (त्वं पुनः पञ्जरगता शारिकेव कुरुकुरायमाणा तिष्ठसि, न किमपि जानासि, तत् प्रियवयस्यस्य देव्याश्च पुरतः पठिष्यामि; यतो न कस्तूरिका कुग्रामे वने वा विक्रीयते, न सुवर्णं कषपट्टिकां विना शिलापट्टके कष्यते)

राजा—पिअवअस्स ! ता पढ, सुणीअदु । (प्रियवयस्य, तत्पठ । श्रूयताम्)

विदूषकः । [पठति]—

फुल्लक्करं कलमकूरसमं वहंति
जे सिंदुवारविडवा मह वल्लभा दे ।
जे गालिअस्स महिसोदहिणो सरिच्छा
ते किं च मुद्धविअइल्लपसूणपुंजा ॥ १६ ॥

(पुष्पोत्करं कलमकूरसमं वहन्ति
ये सिन्धुवारविटपा मम वल्लभास्ते

अन्वयः—ये सिन्धुवारविटपाः कलमकूरसमम् पुष्पोत्करम् वहन्ति ते मम वल्लभाः, किं च गालितस्य महिषीदध्नः सदृक्षाः ये मुग्धविजकिलप्रसूनपुंजाः ते च मे वल्लभाः ।

व्याख्या—ये सिन्धुवारविटपाः तदाख्यतरवः कलमानां धान्यविशेषाणां कूरम् ओदनं तेन समं सदृशं श्वेतवर्णं पुष्पोत्करं पुष्पनिचयं वहन्ति धारयन्ति ते मे मम

छोटे मोटे गांव में अथवा जंगल में नहीं बेची जाती, न सोना ही कसौटी के बिना पत्थर पर घिसा जाता है ।

राजा—प्रियवयस्य, लो अपनी कविता पढ़ो, हम सुनें ।

विदूषक—पढ़ता है:—कलमों (एक प्रकार का चावल) के ओदन की तरह श्वेतवर्ण के फूल जिन सिन्धुवार (सिन्धुआर) वृक्षों पर आते हैं, वे मुझे प्रिय हैं ।

ये गालितस्य महिषीदध्नः सदृक्षाः
ते किञ्च मुग्धविचकिलप्रसूनपुञ्जाः ॥ १६ ॥)

विचक्षणा—णिअकंतारंजणजोग्गं दे वअणं । (निजकान्तारञ्जनयोग्यं ते वचनम्)

विदूषकः—ता उआरवअणे ! तुमं पढ । (तत् उदारवचने ! त्वं पठ)

देवी—(किञ्चित् स्मित्वा) सहि विअक्खणे ! अम्हाणं पुरदो तुमं गाढं कइत्तणेण उत्ताणा होसि, ता पढ संपदं अज्जउत्तस्स पुरदो सअ-किदं किंपि कव्वं, जदो तं कव्वं जं सहाए पढ़ीअदि, तं सुवण्णं जं कसवट्टए णिबट्टेदि, सा घरिणी जा पिअं रंजेदि, सो पुत्तो जो कुलं उज्जलेदि । (सखि विचक्षणे ! अस्माकं पुरतस्त्वं गाढं कवित्वेन उत्ताना भवसि; तत् पठ साम्प्रतमार्यपुत्रस्य पुरतः स्वयं-कृतं किमपि काव्यम्; यतः तत् काव्यं यत् सभायां पठ्यते, तत् सुवर्णं यत् कषपट्टिकायां निवर्त्तते, सा गृहिणी या

वल्लभाः प्रियाः । किञ्च गालितस्य विलोडितस्य महिषीदध्नः सदृक्षाः सदृशाः ये मुग्धाः मनोहराः विचकिलानां तदाख्यतरूणां प्रसूनपुञ्जाः पुष्पसमूहाः ते च यत्र प्रिया इति ॥

विलोए हुए भैंस के दही के समान स्वच्छ विचकिल के फूलें भी मुझे बहुत प्रिय हैं।

विचक्षणा—तुम्हारी कविता तुम्हारी पत्नी को प्रसन्न कर सकती है ।

विदूषक—अयि प्रियभाषिणि ! तुम अपनी कोई कविता सुनाओ ?

देवी—(कुछ मुस्कराकर) सखि विचक्षणे ! हमारे सामने तुम कविता करने की बड़ी डींग मारती हो । आज आर्यपुत्र के सामने अपनी बनाई हुई कोई कविता

टिप्पणी—रञ्जनस्य योग्यम् = रञ्जनयोग्यम् । निजस्य कान्ता = निजकान्ता तस्याः रञ्जनयोग्यम् = निजकान्तारञ्जनयोग्यम् = निजप्रेयसीरञ्जकम् ।

कषपट्टिका = कसौटी ।

पतिं रञ्जयति, स पुत्रो यः कुलमुज्ज्वलयति)

विचक्षणा—जं देवी आणवेदि। (यत् देवी आज्ञापयति)

[पठति]—

जे लंकागिरिमेहलाहिं खलिदा संभोअखिण्णोरई
प्फारप्फुल्लफणावलीकवलणे पत्ता दरिद्दत्तणं।
ते एण्हिं मलआणिला विरहिणीणीसाससंपक्किणो
जादा झत्ति सिसुत्तणे वि बहला तारुण्णपुण्णा विअ॥२०॥

(ये लङ्कागिरिमेखलायां स्खलिताः सम्भोगखिन्नोरगी-
स्फारोत्फुल्लफणावलीकवलने प्राप्ता दरिद्रत्वम्।

अन्वयः—ये मलयानिलाः लङ्कागिरिमेखलायां स्खलिताः, सम्भोगखिन्नोरगीस्फारोत्फुल्लफणावलीकवलेन दरिद्रत्वम् प्राप्ताः, ते इदानीम् विरहिणीनिश्वास-सम्पर्किणः झटिति शिशुत्वे अपि बहलाः तारुण्यपूर्णाः इव जाता।

व्याख्या—ये मलयानिलाः मलयसमीरणाः लङ्कागिरेः लङ्कास्थितपर्वतस्य मेखलायां श्रोणिभागे स्खलिताः पतिताः, तथा सम्भोगेन खिन्नाः याः उरग्यः तासां स्फाराभिः उत्फुल्लाभिः फणावलीभिः कवलेन ग्रसेन दरिद्रत्वं क्षीणत्वम् प्राप्ताः, ते

पढ़ो। कविता उसी को कहते हैं जो सभा में पढ़ी जाय, सोना कसौटी पर कसने से ही शुद्ध या अशुद्ध कहा जा सकता है, स्त्री वही ठीक समझी जाती है जो पति को प्रसन्न करे, पुत्र वही अच्छा कहलाता है जो कुल को उज्ज्वल करे।

विचक्षणा—जैसी महारानी की आज्ञा। पढ़ती है :—

मलयाचल की वे हवाएँ जो लङ्का के पर्वत से रुक गई थीं और सम्भोग के बाद थकी हुई सर्पिणियों के अपने बड़े और फैले हुए फनों से सांस लेने के कारण

टिप्पणी—स्फाराः उत्फुल्लाश्च याः फणावल्यः=स्फारोत्फुल्लफणावल्यः। सम्भोगेन खिन्नाः=सम्भोगखिन्नाः, सम्भोगखिन्नाः याः उरग्यः, तासां स्फारोत्फुल्लफणावलीभिः कवलनं तस्मिन्, सम्भोगखिन्नोरगीस्फारोत्फुल्लफणावली कवलेन=सुरतक्लान्तभुजङ्गी विशालप्रबुद्ध-

त इदानीं मलयानिला विरहिणीनिःश्वाससम्पर्किणो
जाता झटिति शिशुत्वेऽपि बहलास्तारुण्यपूर्णा इव ॥ २० ॥)

राजा—सच्चं विअक्खणा विअक्खणा चदुरत्तणेण उत्तिणं, ता किमण्णं कइणं वि कई। (सत्यं विचक्षणा विचक्षणा चतुरत्वेनोक्तीनाम्; तत् किमन्यत् कवीनामपि कविः ।)

देवी—[विहस्य]। कइचूडामणित्तणेण ट्ठिदा एसा। (कविचूडामणित्वेन स्थितैषा)

विदूषकः—[सक्रोधम्]। ता उज्जुअं ज्जेव्व किं ण भणीअदि देवीए, अच्चुत्तमा विअक्खणा कव्वम्मि, अच्चधमो कविंजलबम्हणो त्ति ? (तत् ऋजु एव कि न भण्यते देव्या, अत्युत्तमा विचक्षणा काव्ये, अत्यधमः कपिञ्जलब्राह्मण इति ?)

विचक्षणा—अज्ज ! मा कुप्प, कव्वं ज्जेव्व कइत्तणं पिसु-

मलयानिलाः इदानीं विरहिणीनां ये निश्वासाः दीर्घोच्छ्वासाः तेषा सम्पर्किणः संसर्गवन्तः सन्तः झटिति शीघ्रम् शिशुत्वेऽपि शैशवावस्थायामेव बहलाः प्रवृद्धाः तारुण्यपूर्णाः प्रगल्भा इव जाताः । साम्प्रतं मलयानिलाः नितरां वान्तीति भावः ॥ २० ॥

क्षीण हो गई थीं, अब फिर शीघ्र ही विरहिणियों के निःश्वास का सम्पर्क पाकर शैशव काल में ही प्रगल्भ और वेगवती हो चली है ॥ २० ॥

राजा—अपने वचन चातुर्य से विचक्षणा वास्तव में विचक्षणा (विदुषी) है और क्या कहा जाय, कवियों की भी कवि है।

देवी—(हँसकर) यह कवियों में चूडामणि है।

विदूषक—(क्रोध के साथ) महारानी स्पष्ट ही क्यों न कह देतीं कि विचक्षणा कविता करने में बड़ी चतुर है और कपिञ्जल ब्राह्मण बड़ा तुच्छ है।

विचक्षणा—आर्य ! क्रोध मत करो, कविता से ही कवि का पता चलता है।

फणावलीभक्षणे। शिशुत्वम्—शिशु+त्व। भाववाचकत्वप्रत्यय। बहल=प्रवृद्ध ॥ २० ॥

णोदि, जदो णिअकंतारंजणजोग्गं णिजोदरभरित्तणं। णिंद-णिज्जे बि अत्थे सुउमारा दे वाणी लंबत्थणीए बिअ एक्कावली, तुंदिलाए बिअ कंचुकिआ, ठेराए बिअ कडक्खविक्खेवो, कट्टि-दकेसाए बिअ मालदीकुसुममाला, काणाए बिअ कज्जलसलाआ ण सुट्ठुदरं भादि रमणिज्जा। (आर्य! मा कुप्य, काव्यमेव कवित्वं पिशुनयति, यतो निजकान्तारञ्जनयोग्यं निजोदरम्भरित्वम्। निन्दनीयेऽप्यर्थे सुकुमारा ते वाणी लम्बस्तन्या इव एकावली, तुन्दिलाया इव कञ्चुलिका, टेराया इव कटाक्षविक्षेपः, कर्तितकेशाया इव मालतीकुसुममाला, काणाया इव कज्जलशलाका न सुष्ठुतरं भाति रमणीया)

विदूषकः—तुज्झ उण रमणिज्जेऽबि अत्थे ण सुंदरा सद्दावली कणअकडिसुत्तए बिअ लोहकिंकिणीमाला, पदिबट्टे बिअ टसरबिरअसा, गोरंगीए बिअ चंदणचच्चा ण चारुत्तणमवलंबेदि। तहा बि तुमं वण्णीअसि। (तव पुनः रमणीयेऽप्यर्थे न

तुम्हारे पेटू होने से तुम्हारी पत्नी ही प्रसन्न हो सकती। भावों के सुन्दर न होने से तुम्हारी सुकुमार भी वाणी उसी तरह अच्छी नहीं लगती, जिस तरह लम्बे स्तन वाली स्त्री को एक लड़ वाला मोतियों का हार, लम्बे पेट वाली स्त्री की चोली, ऐंची आंख वाली का कटाक्ष मारना, कटे हुए केशों वाली को मालती पुष्पों का हार और कानी स्त्री को काजल अच्छा नहीं लगता है।

विदूषक—आंखों के सुन्दर होने पर भी तुम्हारी शब्दावली सुन्दर नहीं है और तुम्हारी कविता उसी तरह अच्छी लगती है जैसे सुवर्ण के कटिसूत्र में लोहे के

टिप्पणी—ऋतु=स्पष्ट। कुप्य-कुप्-दिवादि. लोट्. मध्यम पु. एक व.। काव्यम्=कवेर्भावः कर्म वा काव्यम्-कवि+य (ष्यञ्) काव्यम्। पिशुनयति=सूचयति। लम्बौस्तनौ यस्याः सा लम्बस्तनी तस्याः=लम्बस्तन्याः। तुन्दमस्याः अस्ति-तुन्दिला-तुन्द+इल+आ=तुन्दिला। (मत्वर्थीय इल प्रत्यय)। टेरा=टेढ़ी नजर वाली।

सुन्दरी शब्दावली कनककटिसूत्र इव लोहकिङ्किणीमाला, प्रतिपट्ट इव त्रसरविरचना, गौराङ्ग्या इव चन्दनचर्चा न चारुत्वमवलम्बते। तथाऽपि त्वं वर्ण्यसे)

विचक्षणा—अज्ज ! मा कुप्प, का तुम्हेहिं सह पडिप्पद्धा ? जदो तुमं णाराओ विअ णिरक्खरो वि रअणतुलाए णिउंजीअसि। अहं उण तुले व्व लद्धक्खरा वि ण सुवण्णमंडे विणिउंजी आमि। (अर्य ! मा कुप्य। का युष्माभिः सह प्रतिस्पर्द्धा ? यतस्त्वं नाराच इव निरक्षरोऽपि रत्नतुलायां नियुज्यसे। अहं पुनस्तुलेव लब्धाक्षराऽपि न सुवर्णभाण्डे विनियुज्ये)

विदूषक:—एव्वं मह भणंतीए तुह बामं दक्खिणं अ जुहिट्ठिरजेट्ठभाअरणामहेअं अंगजुअलं उप्पाडइस्सं। (एवं मम

घुँघरू, वस्त्र की उलटी तरफ कसीदे का काम या गौरवर्ण वाली स्त्री के चन्दन का लगाना। लेकिन फिर भी तुम लोगों के द्वारा कवि मानी जाती हो।

विचक्षणा—आर्य ! क्रोध मत करो। मेरी तुम्हारे साथ बराबरी ही क्या ? तुम तो निरक्षर होते हुए भी नाराच की तरह रत्नों के तोलने में काम आते हो (रत्नों में यानी उच्च व्यक्तियों में तुम्हारी गिनती की जाती है) मैं साक्षर होते हुए भी सोने तौलने के काम में नहीं आती।

विदूषक—इस तरह मेरे संबन्ध में कहने पर मैं तेरे दोनों कान उखाड़ लूँगा।

टि०—प्रतिपट्ट=वस्त्र की उलटी तरफ। त्रसरविरचना=कसीदा काढ़ने का काम। चन्दनचर्चा=चन्दन लगाना। चारुत्वम्=सौन्दर्य–चारु+त्व (भाववाचक) चारुत्व।

टिप्पणी—नाराच=हीरे मोती तोलने के काम में आने वाली घुमची और पत्थर। निरक्षर=अनपढ़, जिस पर कुछ लिखा न हो—मोती इत्यादि तोलने का सामान। लब्धाक्षरा=लब्धानि अक्षराणि यया सा लब्धाक्षरा (बहु०) पण्डित, अथवा जिस पर कुछ लिखा हो।

भणन्त्यास्तव वामं दक्षिणं च युधिष्ठिरज्येष्ठभ्रातृनामधेयमङ्गयुगलमुत्पाटयिष्यामि)

विचक्खणा—अहं बि उत्तरफग्गुणीपुरस्सरणक्खत्तणामहेअं अंगं तुह झत्ति खंडिस्सं । (अहमपि उत्तरफल्गुनीपुरःसरनक्षत्रनामधेयमङ्गं तत्र झटिति खण्डयिष्यामि)

राजा—बअस्स ! मा एव्वं भण, कइतमत्तणे ट्ठिदा एसा । (वयस्य ! मैवं भण, कवितमत्वे स्थितैषा)

विदूषकः—[सक्रोधम्] । उज्जुअं ता किं ण भणइ, अम्हाणं चेडिआ हरिअंद-णंदिअंद-कोट्टिसहालप्पहुदीणं बि पुरदो सुकइ त्ति? (ऋज्वेप तत् किं न भण्यते, अस्माकं चेठिका हरिचन्द्र-नन्दिचन्द्र-कोटिशहालप्रभृतीनामपि पुरतः सुकविरिति ?)

राजा—एव्वं ण्णेदं । (एवमेतत् ।)

विदूषकः—[सक्रोधं परिक्रामति] ।

विचक्खणा—तहिं गच्छ जहिं मे पढमा साडिआ गदा । (तत्र गच्छ, यत्र मे प्रथमा शाटिका गता)

विचक्षणा—मैं भी तुम्हारे हाथ शीघ्र काट डालूँगी ।

राजा—मित्र ! ऐसा मत कहो । यह वस्तुतः कवि है ।

विदूषक—(क्रोध के साथ) तो स्पष्ट ही क्यों न कह देते कि हमारी चेटी हरिचन्द्र-नन्दिचन्द्र और कोटिश हाल इत्यादि कवियों से भी बढ़कर हैं ।

राजा—हाँ, ऐसा ही समझो ।

विदूषक—क्रोध में घूमता है ।

विचक्षणा—वहाँ जाओ, जहाँ मेरी पहली साड़ी गई अर्थात् मर जाओ ।

टिप्पणी—युधिष्ठिरज्येष्ठभ्रातृनामधेयम् =कर्ण नामका । उत्पाटयिष्यामि =उत् पाटि + इ + ष्यामि ।

उत्तरफल्गुनीपुरःसरनक्षत्रनामधेयम् =हस्त नाम का । खण्डयिष्यामि =खण्ड + इ + ष्यामि (चुरा०) खण्डि =तोड़ना । शाटिका =साड़ी ।

विदूषकः—[वलितग्रीवम्]। तुमं उण तहिं गच्छ, जहिं मे मादाए पढमा दंतावली गदा। ईदिसस्स राअउलस्स भई भोदु, जहिं चेडिआ बम्हणेण समं समसीसिआए दीसदि। मइरा पंचगव्वं च एकस्सि भंडए कीरदि, कच्चं माणिक्कं च समं आहरणे पउंजीअदि। (त्वं पुनस्तत्र गच्छ यत्र मे मातुः प्रथमा दन्तावली गता। ईदृशस्य राजकुलस्य भद्रं भवतु, यत्र चेटिका ब्राह्मणेन समं समशीर्षिकया दृश्यते, मदिरा पञ्चगव्यं चैकस्मिन् भाण्डे क्रियते, काचं माणिक्यं च सममाभरणे प्रयुज्यते)

चेटी—इह राअउले तं ते भोदु कंठट्ठिदं, जं भअवं तिलोअणो सीसे समुव्वहदि, तेण च ते मुहं चूरीअदु जेण असोअतरु दोहदं लहदि। (इह राजकुले तत्ते भवतु कण्ठस्थितं, यत् भगवांस्त्रिलोचनः शीर्षे समुद्वहति। तेन च ते मुखं चूर्ण्यतां, येनाशोकतरुर्दोहदं लभते)

विदूषक—(गर्दन टेढ़ी कर) तू भी वहाँ जा जहाँ मेरी माता की पहिली दाँतों की पङ्क्ति गई अर्थात् मर जा। ऐसे राजकुल का कल्याण हो जहाँ दासी ब्राह्मण के साथ प्रतिस्पर्धा करती है। मदिरा और पञ्चगव्य एक ही पात्र में रक्खे जाते हैं और कांच मानिक एक साथ आभूषण में काम में लाए जाते हैं।

चेटी—इस राजकुल में तेरे गले में वह डाला जाय, जिसको कि भगवान् शङ्कर अपने मस्तक पर धारण करते हैं अर्थात् तेरे गले में अर्धचन्द्राकार हाथ डाल कर तुझको राजकुल से निकाल दिया जाना चाहिए। उससे तेरा मुंह तोड़ दिया जाय जिससे कि अशोक वृक्ष खिलता है अर्थात् तेरा मुंह तो लात मार कर तोड़ दिया जाना चाहिए।

टिप्पणी—समशीर्षिका=प्रतिद्वन्द्विता, बराबरी। पञ्चगव्यम्—पञ्चानां गव्यानां समाहारः पञ्चगव्यम्—(समाहारद्वन्द्व) दधि, दुग्ध, घी, गोबर और गोमूत्र। भाण्ड=बर्तन। आभरण=गहना।

त्रिलोचनः—त्रीणि लोचनानि सन्ति यस्य सः त्रिलोचनः=शङ्करः। (बहु०)

विदूषकः—आः! दासीए पुत्ति! टेंटाकराले! कोससदवंचणि! रच्छालोट्टणि! एव्वं मं भणसि? ता मह महवम्हणस्स भणिदेण तं तुमं लहसु, जं फग्गुणसमए सोहंजणो जणदो लहदि, जं पामराहिंतो वइल्लो लहदि। (आः दास्याः पुत्रि! टेण्टाकराले! कोषशतवञ्चनि! रथ्यालुण्ठिनि! एवं मां भणसि? तन्मम महाब्राह्मणस्य भणितेन तत् त्वं लभस्व, यत् फाल्गुनसमये शोभाञ्जनो जनाल्लभते, यत् पामरेभ्यो बलीवर्दो लभते)

विचक्षणा—अहं उण तुह एव्वं भणंतस्स णेउरस्स विअ पाअलग्गस्स पाएण मुहं चूरइस्सं। अण्णं च, उत्तरासाढापुरस्सरणक्खत्तणामहेअं अंगजुअलं उप्पाडिअ घाल्लिस्सं। (अहं पुनस्त्वैवं भणतो नूपुरस्येव पादलग्नस्य पादेन मुखं चूर्णयिष्यामि। अन्यच्च, उत्तराषाढापुरःसरनक्षत्रनामधेयमङ्गयुगलमुत्पाट्य क्षेप्स्यामि)

विदूषक—अरे दासी की पुत्रि! झगड़ालू! दूसरों के धन को ठगने वाली! गलियों में परपुरुषों के साथ घूमने वाली! तू मेरे लिए इस तरह कहती है। मुझ महाब्राह्मण के वाक्य से तेरी वही दशा हो जो फागुन में शोभाञ्जन नामक वृक्ष की लोगों द्वारा होती है और बैल की दुर्जनों द्वारा जो दशा की जाती है। अर्थात् जिस तरह फागुन में शोभाञ्जन (सजना) वृक्ष की शाखाएँ लोग काट देते हैं और बैल की नाक जिस तरह काट (छेद) दी जाती है उसी तरह तेरे हाथ और नाक लोग काट डालें।

विचक्षणा—पैरों में बँधे हुए नूपुरों के समान तू व्यर्थ प्रलाप करता है, मैं अपने पैर से तेरा मुंह तोड़ दूँगी और कान उखाड़ कर फेंक दूँगी।

टिप्पणी—महाब्राह्मण = दुष्टब्राह्मण। शङ्ख, तेल, मांस, वैद्य, ज्योतिषी, ब्राह्मण, यात्रा, मार्ग और निद्रा के साथ महत् शब्द निन्दा वाची होता है।

टिप्पणी—उत्तराषाढायाः पुरःसरं नक्षत्र (श्रवणा) तन्नामधेयम् = उत्तराषाढापुरस्सरनक्षत्रनामधेयम् = श्रवणाख्यम्। उत्पाट्य = उत् + पाटि + य (ल्यप्) उत्पाट्य = उखाड़ कर।

विदूषकः—[सक्रोधं परिक्रामन् , जवनिकान्तरे किञ्चिदुच्चैः] ईरिसं राअउलं दूरे वज्जीअदि, जहिं दासी बम्हणेण समं पडिप्पद्धां करेदि । ता अज्ज प्पहुदि णिअगेहणीए बसुंधराणामहेआए बम्हणीए चलणसुस्सूअओ भविअ गेहे जेव्व चिठ्ठिस्सं । (ईदृशं राजकुलं दूरे वर्ज्यतां, यत्र दासी ब्राह्मणेन समं प्रतिस्पर्द्धां करोति । तदद्य प्रभृति निजगेहिन्या वसुन्धरानामधेयाया ब्राह्मण्याश्चरणशुश्रूषुर्भूत्वा गेह एव स्थास्यामि)

[सर्वे हसन्ति]

देवी—अज्जउत्त ! कीदिसी कविंजलेण विणा गोट्ठी ? कीदिसी णअणंजणेण विणा पसाहणलच्छी ? (आर्यपुत्र ! कीदृशी कपिञ्जलेन विना गोष्ठी ? कीदृशी नयनाञ्जनेन विना प्रसाधनलक्ष्मीः ?)

[आकाशे]

ण हु ण हु आगमिस्सं, अण्णो को वि पिअवअस्सो अण्णेसीअदु । अहवा एसा दुट्ठदासी लंबकुचा टप्परकण्णी पडिसीसअं

विदूषक—(क्रोध में घूमता हुआ, यवनिका के भीतर कुछ जोर से) ऐसे राजकुल को दूर से ही छोड़ना अच्छा, जहाँ पर दासी ब्राह्मण के साथ प्रतिस्पर्धा करती है । आज अपनी पत्नी वसुन्धरा के चरणों का सेवक होकर घर पर ही रहूँगा ।

(सभी हंसते हैं)

देवी—आर्यपुत्र ! कपिञ्जल के बिना गोष्ठी का क्या आनन्द ? आँखों में अञ्जन लगाए बिना श्रृङ्गार की शोभा ही क्या ?

(आकाश में)

मैं नहीं आऊँगा, नहीं आऊँगा, कोई और दूसरा प्रिय मित्र ढूंढ लो ।

देइअ मह ट्ठाणे उवहसणत्थं करीअदु। अहमेक्को मुदो तुम्हाणं सव्वाणं मज्झे, तुम्हे उण बरससअं जीअध। (न खलु न खलु आगमिष्यामि, अन्यः कोऽपि प्रियवयस्योऽन्विष्यताम्। अथवैषा दुष्ट-दासी लम्बकुचा टप्परकर्णा प्रतिशीर्षकं दत्त्वा मम स्थाने उपहसनार्थं क्रियताम्। अहमेको मृतो युष्माकं सर्वेषां मध्ये, यूयं पुनर्वर्षशतं जीवत)

[इति निष्क्रान्तः]

विचक्षणा—मा अणुबंधेहि। अणुणअकक्कसो क्खु कविंजल बम्हणो सलिलसित्तो विअ सणगुणगंठी चिरं गाढअरो भोदि। णं दंसणीअं दीसद। (मा अनुबधान। अनुनयकर्कशः खलु कपिञ्जलब्राह्मणः सलिलसिक्त इव शणगुणग्रन्थिश्चिरं गाढतरो भवति। ननु दर्शनीयं दृश्यताम्)

राजा—[समन्तादवलोक्य]

गाअंतगोवअबहुपद्पंखिआसु
दोलासु बिब्भमबदासु णिसण्णदिट्ठो।
जं जादि खंजिद तुरंगरहो दिणेसो
तेणेव्व होंति दिअहा अइदीहदोहा॥ २१॥

अथवा लम्बे स्तनों वाली और सूप (टप्पर) की तरह कानों वाली इस दुष्ट दासी को ही पगड़ी बांध कर मेरी जगह उपहास करने के लिए रख लो। तुम सब में मैं ही एक मरा हूँ, तुम सब सौ बरस जिओ।

विचक्षणा—आग्रह पूर्वक इसका आदर मत करो। अनुनय करने से यह कपिञ्जल और भी कठोर हो जाता है, जैसे कि सन की रस्सी में लगी हुई गांठ पानी पड़ने पर और भी कठोर हो जाती है। इसका जरा आचरण देखो तो।

राजा—(चारों तरफ देख कर):—

(गायद्गोपवधूपदप्रेङ्खितासु
दोलासु विभ्रमवतीषु निषिण्णदृष्टिः ।
यद्याति खञ्जिततुरङ्गरथो दिनेशः
तेनैव भवन्ति दिवसा अतिदीर्घदीर्घाः ॥ २१ ॥)

[प्रविश्यापटीक्षेपेण]

विदूषकः—आसणमासणं । (आसनमासनम्)

राजा—किं तेण ? (किं तेन ?)

विदूषकः—भैरवाणंदो आअच्छदि । (भैरवानन्द आगच्छति)

अन्वयः—गायद्गोपवधूपदप्रेङ्खितासु विभ्रमवतीषु दोलासु निषण्णदृष्टिः दिनेशः खंजिततुरंगरथः (सन्) यत् याति, तेन एव दिवसाः अतिदीर्घदीर्घाः भवन्ति ॥

व्याख्या—गायन्तीनां गोपवधूनां दोलाधिरूढानामितियावत्, पदैः प्रेङ्खितासु आन्दोलितासु विभ्रमवतीषु मनोहारिणीषु दोलासु निषण्णदृष्टिः निविष्टदृष्टिः दिनेशः सूर्यः खञ्जिततुरंगरथः विकलगत्यश्वयुक्तरथः सन् यत् याति विश्वं परिक्रामति, अतः दिवसाः नितरां दीर्घाः संजायन्ते ॥ २१ ॥

गाती हुई और झूले पर चढ़ी हुई गोपियों के चरणों से आन्दोलित तथा मन को हरने वाले झूलों पर सूर्य की दृष्टि के कारण उसके घोड़ों की गति विकल हो गई है और उसका रथ अस्थिर रूप से चलता मालूम पड़ता है। इसी कारण दिन अधिक लम्बे होते जाते हैं ॥ २१ ॥

(यवनिका बिना हटाये रंगमंच पर आकर)

विदूषक—**आसन लाओ, आसन लाओ ।**

राजा—**(किसलिये)**

विदूषक—**भैरवानन्द आ रहा है ।**

टिप्पणी—गायन्त्यश्चामूः गोपवध्वः=गायद्गोपवध्वः, तासां पदैः प्रेंखितासु=गायद्गोपवधूपदप्रेंखितासु (तत्पु०) । निषण्णा दृष्टिः यस्य सः=निषण्णदृष्टिः (बहु०) । खंजिताः तुरङ्गाः यस्य सः=खंजिततुरंगः, तथाविधः रथो यस्य सः=खंजिततुरंगरथः । राजा के इस वचन का तात्पर्य यह है कि कपिंजल के बिना समय काटना बड़ा कठिन हो गया है, अतः कपिंजल को आदरपूर्वक लाना चाहिए ॥ २१ ॥

देवी—किं सो, जो जणवअणादो अच्चब्भुदसिद्धी सुणी-अदि ? (किं सः, यो जनवचनादत्यद्भुतसिद्धिः श्रूयते ?)

विदूषकः—अध इं। (अथ किम् ?)

राजा—पवेसअ। (प्रवेशय)

[विदूषको निष्क्रम्य तेनैव सह प्रविशति]

भैरवानन्दः—[किञ्चिन्मदमभिनीय पठति]—

मंतो ण तंतो ण अ किं पि जाणं
झाणं च णो किं पि गुरुप्पसादा।
मज्जं पिआमो महिलं रमामो
मोक्खं च जामो कुलमग्गलग्गा ॥ २२ ॥

(मन्त्रो न तन्त्रं न च किमपि ज्ञानं
ध्यानञ्च नो किमपि गुरुप्रसादात्।
मद्यं पिबामो महिलां रमयामो
मोक्षञ्च यामः कुलमार्गलग्नाः ॥ २२ ॥)

अवि अ (अपि च)—

देवी—क्या वह ही, जिसके बारे में सुना जाता है कि वह बड़ी अद्भुत सिद्धियों वाला है।

विदूषक—और क्या ?

राजा—आने दो।

(विदूषक बाहर जाता है और भैरवानन्द के साथ प्रवेश करता है)

भैरवानन्द—(कुछ मदिरापान का अभिनय करके पढ़ता है):—

न कोई मन्त्र जानता हूँ, न कोई शास्त्र जानता हूं, गुरु के मत के अनुसार कोई ध्यान अथवा समाधि लगाना भी नहीं जानता हूं। शराब पीते हैं, दूसरों की स्त्रियों के साथ सहवास करते हैं और मोक्ष पाते हैं यही हमारा कुलाचार है ॥२२॥

और भी:—

रंडा चंडा दिक्खिदा धम्मदारा
मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्जं चम्मखंडं च सेज्जा
कोलो धम्मो कस्स णो भादि रम्मो ? ॥२३॥

(रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा
मद्यं मासं पीयते खाद्यते च ।
भिक्षा भोज्यं चर्मखण्डञ्च शय्या
कौलो धर्मः कस्य नो भाति रम्यः ? ॥२३॥)

किं च—

मुत्तिं भणंति हरिबम्हमुहादिदेश्रा
झाणेण वेअपठणेण कदुकिआए।
एक्केण केवलमुमादइएण दिट्ठो
मोक्खो समं सुरअकेलिसुरारसेहिं ॥२४॥

(मुक्तिं भजन्ति हरिब्रह्ममुखादिदेवा
ध्यानेन वेदपठनेन क्रतुक्रियाभिः ।

व्याख्या—विष्णुब्रह्मादयः देवाः ध्यानेन वेदानां स्वाध्यायेन यज्ञादिभिश्च

रंडा (विधवा), चंडा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियाँ हमारी धर्मपत्नियां हैं, भिक्षा का अन्न हमारा भोजन है, चर्मखण्ड हमारी शय्या है, मद्य पीते हैं और मांस खाते हैं। हमारा यह कुलक्रम से आया हुआ धर्म किसको अच्छा नहीं लगता है, अर्थात् सबको अच्छा लगता है॥ २३॥

और भी :—

विष्णु, ब्रह्मा इत्यादि देवता ध्यान, वेदपाठ, तथा यज्ञादिकों के अनुष्ठान

एकेन केवलमुमादयितेन दृष्टो
मोक्षः समं सुरतकेलिसुरारसैः ॥ २४ ॥)

राजा—एदं आसणं, उपविसदु भैरवाणंदो । (इदमासनम्, उपविशतु भैरवानन्दः)

भैरवानन्दः—[उपविश्य]—किं कादव्वं (किं कर्त्तव्यम् ?)

राजा—कहिं वि विसए अच्चरिअं दिट्ठुमिच्छामि । (कस्मिअपि विषये आश्चर्यं द्रष्टुमिच्छामि)

भैरवानन्दः—

दंसेमि तं पि ससिणं वसुहावतिण्णं
थंभेमि तस्स वि रविस्स रहं णहद्धे ।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ
तं णत्थि भूमिवलए मह जं ण सद्धं ॥ २५ ॥

(दर्शयामि तमपि शशिनं वसुधावतीर्णं

मुक्तिः भवति-इति वदन्ति । केवलम् एकेन शिवेन सुरतद्वारा सुरापानेन च मोक्षः उपदिष्टः ॥ २४ ॥

अन्वयः—तम् शशिनम् अपि वसुधावतीर्णम् दर्शयामि, नभोऽध्वनि तस्य रवेः अपि रथं स्तभ्नामि । यक्षसुरसिद्धगणांगनाः आनयामि । यत् मम साध्यम् न, तत् भूमिवलये नास्ति ।

से मोक्ष की प्राप्ति बताते हैं । केवल शिवजी ने सुरत और सुरा पान से मोक्ष की प्राप्ति बताई है ॥ २४ ॥

राजा—यह आसन है, भैरवानन्दजी, कृपया बैठिये ।

भैरवानन्द—(बैठ कर) तुम क्या चाहते हो ।

राजा—कोई आश्चर्य की बात देखना चाहता हूँ ।

भैरवानन्द—चन्द्रमा को भी पृथिवी पर उतार कर दिखा सकता हूँ । सूर्य

स्तभ्नामि तस्यापि रवे रथं नभोऽध्वनि ।
आनयामि यक्षसुरसिद्धगणाङ्गनाः
तन्नास्ति भूमिवलये मम यन्न साध्यम् ॥ २५ ॥)

ता भण किं करीअदु ? (तद्भण किं क्रियताम् ?)

राजा—**वअस्स ! तुए कहिं पि अपुव्वं दिट्ठं महिला-रअणं ?** (वयस्य ! त्वया कुत्रापि अपूर्वं दृष्टं महिलारत्नम् ?)

विदूषकः—**दिट्ठं दाव ।** (दृष्टं तावत्)

राजा—**कहेहि ।** (कथय)

विदूषकः—**अत्थि एत्थ दक्खिणावहे वेदब्भं णाम णअरं, तहिं मए एक्कं कण्णारअणं दिट्ठं, तमिहाणीअदु ।** (अस्ति तत्र दक्षिणापथे वैदर्भं नाम नगरं, तत्र मयैकं कन्यारत्नं दृष्टं, तदिह आनीयताम्)

व्याख्या—तं प्रसिद्धं शशिनं चन्द्रमपि वसुधायां भूमौ अवतीर्णमागतं दर्शयामि । नभोऽध्वनि आकाशमार्गे तस्य रेवः सूर्यस्यापि रथं स्तभ्नामि स्थापयामि । यक्षसुरसिद्धगणानाम् अङ्गनाः स्त्रीः आनयामि । भूमण्डले न किमप्येतादृशं कार्यं यत्कर्तुमहं क्षमः न ॥ २५ ॥

का भी आकाश मार्ग में रथ रोक सकता हूँ । यक्ष, सुर और सिद्धगणों की स्त्रियों तक को ला सकता हूँ । भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको कि मैं न कर सकूं ॥ २५ ॥

कहिये, क्या करूँ ?

राजा—**(विदूषक से) वयस्य ! तुमने कहीं कोई अद्वितीय स्त्रीरत्न देखा ?**

विदूषक—**हां, देखा ।**

राजा—**बतलाओ ।**

विदूषक—**दक्षिण देश में वैदर्भ नाम का नगर है, वहां मैंने एक कन्यारत्न देखा है, उसको यहां बुलाओ ।**

भैरवानन्दः—आणीअदि। (आनीयते)

राजा—ओदारीअदु पुण्णिमाहरिणंको धरणीअले। (अवतार्यतां पूर्णिमाहरिणाङ्को धरणीतले)

[भैरवानन्दो ध्यानं नाटयति]

[ततः प्रविशति पटाक्षेपेण नायिका। सर्वे आलोकयन्ति]

राजा—अहह ! अच्चरिअं ! अच्चरिअं !। (अहह ! आश्चर्यम् ! आश्चर्यम् !)

जं धोआंजणसोणलोअणजुअं लग्गालअग्गं मुहं
हत्थालंबिदकेसपल्लवचए दोल्लंति जं बिंदुणो।
जं एक्कं सिचअंचलं णिवसिदं तं ण्हाणकेलिट्ठिदा
आणीदा इअमब्भुदेक्कजणणी जोईसरेणामुणा ? ॥ २६ ॥

(यत् धौताञ्जनशोणलोचनयुगं लग्नालकाग्रं मुखं
हस्तालम्बितकेशपल्लवचये दोलायन्ते यद्बिन्दवः।

अन्वयः—यत् धौतांजनशोणलोचनयुगम् लग्नालकाग्रम् मुखम्। यत् हस्तालम्बितकेशपल्लवचये बिन्दवः दोलायन्ते। यत् एकम् सिचयाञ्चलं निवसितम्, तत् इयम् स्नानकेलिस्थिता अद्भुतैकजननी अमुना योगीश्वरेण आनीता।

व्याख्या—अस्याः नायिकायाः नयनयुगलं कज्जलरहितम् रक्तञ्चास्ति, मुखे च अलकाग्राणि सक्तानि सन्ति, इयं हस्तेन च केशान् गृह्णाणा अस्ति, केशेभ्यश्च

भैरवानन्द—**बुलाता हूँ।**

राजा—**पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह सुन्दर उस कन्यारत्न को ही बुलाइये।**

(भैरवानन्द ध्यान लगाने का अभिनय करता है)

(तब पर्दा हटा कर नायिका रंगमंच पर आती है। सब देखते हैं)

राजा—**अहह ! आश्चर्य है ! आश्चर्य !!**

इसकी आंखों से अञ्जन धुला हुआ है और इसीलिए इसकी आंखें लाल हैं,

---

टिप्पणी—धौतमञ्जनं यस्य तत् धौताञ्जनम्। धौताञ्जनं शोणं च लोचनयुगलं यस्मिन् तत् = धौताञ्जनशोणलोचनयुगलम् (यह मुख का विशेषण है, बहु० समा०)। प्रक्षालिता-

यदेकं सिचयाञ्चलं निवसितं तत्स्नानकेलिस्थिता
आनीतेयमद्भुतैकजननी योगीश्वरेणामुना ? ॥ २६ ॥)

अवि अ (अपि च)—

एक्केण पाणिणलिणेण णिवेसअंती
वत्थं चलं घणथणत्थलसंसमाणं।
चित्ते लिहिज्जदि ण कस्स वि संजमंती
अण्णेण चंकमणदो चलिदं कडिल्लं ? ॥ २७ ॥

(एकेन पाणिनलिनेन निवेशयन्ती
वस्त्राञ्चलं घनस्तनस्थलस्रंसमानम् ।

जलबिन्दवः पतन्ति, एकेनैव च वसनेन शरीरमाच्छादितम्, अतः प्रतीयते इयं स्नानक्रीडानन्तरमेवात्रोपस्थापिता अनेन योगिना। विस्मयोत्पादिका चेयम् सर्वस्य चमत्कारं करोति अत्र स्वभावोक्तिरलंकारः ॥ २६ ॥

अन्वयः—एकेन पाणिनलिनेन घनस्तनस्थलस्रंसमानम् वस्त्राञ्चलं निवेशयन्ती, अन्येन चङ्क्रमणतः चलितं कटिवस्त्रम् संयच्छन्ती कस्य चित्ते नापि लिख्यते ॥

व्याख्या—एकेन करकमलेन घनाभ्यां स्तनस्थलाभ्यां पीनपयोधराभ्याम्

मुख पर अलकें बिखरी हुई हैं, हाथ से अपने केशों को पकड़े हुये है और केशों से पानी की बूँदे टपक रही हैं। एक ही वस्त्र से शरीर ढका हुआ है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इस योगीश्वर ने स्नान क्रीडा के बाद ही इस अपूर्व सुन्दरी को यहां पर उपस्थित किया है ॥ २६ ॥

और भी—उन्नत पयोधरों पर से सरकते हुये वस्त्र को एक हाथ से ठीक करती हुई और बार २ चलने से ढीले होते हुये कटि वस्त्र को दूसरे हाथ से संभालती

अनुरक्तनयनयुगलम्। लग्नानि अलकाग्राणि यस्मिन् तत्—लग्नालकाग्रम्=संसक्तकुन्तलाग्रम् (बहु०)। हस्तेन आलम्बितः=हस्तालम्बितः। हस्तालम्बितश्चासौ केशाना पल्लवचयः तस्मिन्=हस्तालम्बितकेशपल्लवचये (तत्पु०) (करगृहीतकेशप्रान्तनिचये। स्नानकेल्यां स्थिता=स्नानकेलिस्थिता=स्नानक्रीडोत्थिता। आनीता—आ+नी+त+आ=आनीता ॥२६॥

टिप्पणी—घनाभ्याम् स्तनस्थलाभ्या स्रंसमानम्=घनस्तनस्थलस्रंसमानम्= निवेश-

चित्ते लिख्यते न कस्यापि संयच्छन्ती

अन्येन चङ्क्रमणतश्चलितं कटिवस्त्रम् ? २७ ॥)

विदूषकः—

ण्हाणावमुक्काभरणोच्चआए तरंगभंगक्खदमंडणाए ।
आद्दांसुओल्लासितणूलदाए सुंदेरसव्वस्समिमीअ दिट्ठी ॥
(स्नानावमुक्ताभरणोच्चयायास्तरङ्गभङ्गाक्षतमण्डनायाः ।
आर्द्रांशुकोल्लासितनुलतायाः सौन्दर्यसर्वस्वमस्या दृष्टिः ॥२८॥)

स्रंसमानम् अवपतन्तम् वस्त्राञ्चलं निवेशयन्ती स्वस्थानं प्रापयन्ती, अन्येन च करकमलेन चङ्क्रमणतः पुनः पुनश्चलनात् चलितं स्रस्तं कटिवस्त्रं कटिवसनं संयच्छन्ती संवध्नती इयं नायिका कस्य पुरुषस्य चित्ते न लिख्यते न चित्र्यते, अपि तु सर्वस्यैव। इयं नायिका अखिलजनमनोहारिणीति भावः ॥ २७ ॥

अन्वयः—स्नानावमुक्ताभरणोच्चयायाः तरङ्गभङ्गाक्षतमण्डनायाः आर्द्रांशुकोल्लासि तनूलतायाः अस्याः दृष्टिः सौन्दर्यसर्वस्वम् अस्ति ।

व्याख्या—इयं नायिका यया स्नानकाले आभूषणानि परित्यक्तानि, यस्याः सौन्दर्यम् अलंकाराणामभावेऽपि विलासविशेषैः पूर्णमिव प्रतिभाति, यस्याश्च लता इव सुकुमारा अंगयष्टिः आर्द्रवसनेन अतीव चित्राकर्षिका अस्ति, स्वदर्शनेन सौन्दर्यं वर्षयति । इयं महासुन्दरीति भावः ॥ २८ ॥

हुई यह नायिका किस पुरुष के हृदयपटल पर चित्रित नहीं होती है ? अर्थात् सबके चित्त पर यह अपना प्रभाव डालती है ॥ २७ ॥

विदूषक—**स्नान करते समय जिसने आभूषणों को छोड़ दिया है, तरंगों की तरह विलासमय चेष्टाओं से आभूषणों के न होने पर भी जिसका सौन्दर्य कम नहीं**

यन्ती—नि + वेशय् + अत् + ई = निवेशयन्ती-शत्रन्त-स्त्रीलिङ्ग । लिख्यते-लिख् + य + ते (कर्मवा०)। संयच्छन्ती-सम्—यम् + अत् + ई = संयच्छन्ती (शत्रन्त) स्त्री. ॥ २७ ॥

टिप्पणी—स्नाने अवमुक्तः आभरणानामुच्चयः यया सा, तस्याः = स्नानावमुक्ताभरणोच्चयायाः = स्नानकालपरित्यक्ताभूषणनिवहायाः (बहु०)। तरङ्गाः इव भंगाः, तैः अक्षतं मण्डनं यस्याः, तस्याः = तरंगभंगाक्षतमण्डनायाः = विलासमयचेष्टाक्षतरूपायाः । आर्द्रं च

नायिका—[सर्वानवलोक्य स्वगतम्] एसो महाराओ को वि इमिणा गंभीरमहुरेण सोहासमुदाएण जाणिज्जदि। एसा वि एदस्स महादेवी तक्कीअदि अद्धणारीसरस्स विअ अकहिदा वि गोरी। एसो को वि जोईसरो। एस उण परिअणो। [विचिन्त्य] ता किं ति एदस्स महिलासहिदस्स दिट्ठी मं बहु मण्णेदि ?। (एष महाराजः कोऽप्यनेन गम्भीरमधुरेण शोभासमुदायेन ज्ञायते। एषाऽपि अस्य महादेवी तर्क्यते अर्द्धनारीश्वरस्येव अकथिताऽपि गौरी। एष कोऽपि योगीश्वरः। एष पुनः परिजनः। तत् किमित्येतस्य महिलासहितस्यापि दृष्टिर्मां बहु मन्यते ?) [इति त्रस्तं वीक्षते]

राजा—[विदूषकमपवार्य] एदाए (एतस्याः)—

जं मुक्का सवणंतरेण तरला तिक्खा कडक्खच्छडा
शुंगाधिट्टिअकेद अग्गिमदलद्दोणीसरिच्छच्छई।
तं कप्पूररसेण णं धवलिदो ? ज्योण्हाअ णं ण्हाविदो ?
मुत्ताणं घणरेणुणा व्व छुरिदो ? जादो म्हि एत्थंतरे॥ २६॥

हुआ है और जिसका लता की तरह सुकुमार शरीर गीले वस्त्र से और भी अधिक आकर्षक प्रतीत होता है ऐसी यह नायिका अपने दर्शनों से सौन्दर्य की वृष्टि करती है॥

नायिका—(सबको देख कर अपने मनमें):—

इस गम्भीर और मधुर शोभासमुदाय से मालूम पड़ता है कि ये कोई महाराज हैं, अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर की पार्वती की तरह यह भी इसकी रानी प्रतीत होती है। ये कोई योगीश्वर हैं, ये सेवकगण हैं। न मालूम क्या बात है कि स्त्रियों के साथ होते हुये भी इनकी निगाहें मेरी ओर बड़े आदर से लगी हुई हैं।

राजा—विदूषक को एक ओर ले जाकर इसके तोः—

तदंशुकम्, तेन उल्लासिनी तनुलता अस्ति यस्याः तस्याः = आर्द्रांशुकोल्लासितनूलतायाः = आर्द्रवसनोल्लासिशरीरलतायाः॥ २८॥

(यत् मुक्ता श्रवणान्तरेण तरला तीक्ष्णा कटाक्षच्छटा
शृङ्गाधिष्ठितकेतकाग्रिमदलद्रोणीसदृक्षच्छविः ।
तत् कर्पूररसेन ननु धवलितो ? ज्योत्स्नया ननु स्नापितः ?
मुक्तानां घनरेणुनेव छुरितो ? जातोऽस्म्यत्रान्तरे ॥ २९ ॥)

विदूषकः—**अहो ! से रूअरेहा !!** (अहो ! अस्या रूपरेखा !!)

**मण्णे मज्झं तिवलिवलिअं डिंभमुट्ठीअ गेज्झं
णो बाहूहिं रमणफलअं बेट्ठिदुं जादि दोहिं ।
णेत्तक्खेत्तं तरुणिपमुईदिज्जमाणोबमाणं
ता पच्चक्खं मह बिलिहिदुं जादि एसा ण चित्ते ॥ ३० ॥**

अन्वयः—श्रवणान्तरेण तरला शृंगाधिष्ठितकेतकाग्रिमदलद्रोणीसदृक्षच्छविः तीक्ष्णाकटाक्षच्छटा यत् मुक्ता, तत् अत्रान्तरे कर्पूररसेन धवलितः ननु ? ज्योत्स्नया स्नापितः ननु ? मुक्तानां घनरेणुनेव छुरितः (किम्) जातः अस्मि ।

व्याख्या—श्रवणान्तरेण कर्णान्तरेण तरला चञ्चला, शृङ्गेण अधिष्ठितः यः केतकीकुसुमस्य अग्रदलः स एव द्रोणी तत्सदृक्षा छविः यस्याः सा तीक्ष्णा कटाक्षपरम्परा यदनया मां प्रतिमुक्ता, तेन अत्रान्तरे कर्पूररसेन कर्पूरजले अहम् धवलितः किम् , उत ज्योत्स्नया स्नापितः, अथवा मुक्ताना घनरेणुना अनुलिप्तः संजातोऽस्मि ।किम् ॥

इस नायिका ने कानों तक फैले हुये, चञ्चल तथा केतकी के दलरूपी द्रोणी के समान छवि वाले तीक्ष्ण कटाक्षों से जो मुझको देखा है, उससे ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे मैं कपूर के जल से धो दिया गया हूँ, या चांदनी में मुझे स्नान करा दिया गया है अथवा मोतियों का अंगराग मुझ पर लगा दिया गया है ॥ २९ ॥

विदूषक—**अहो ! क्या सौन्दर्य है ?ः—**

टिप्पणी—अपवार्य=अन्यसगोपनेन सम्भाष्य—औरों से छिपाकर कहना—देखिए दशरू० । त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् । अन्योन्यामन्त्रण वत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ॥ शृङ्गेण अधिष्ठितः यः केतकीकुसुमस्य अग्रदलः स एव द्रोणी, तत्सदृक्षा छविः यस्याः साः शृङ्गाधिष्ठितकेतकाग्रिमदलद्रोणीसदृक्षच्छविः (बहु०) द्रोणी=काष्टाम्बुवाहिनी (डोंगा)। स्नापितः=स्नापि+तः=स्नापितः–स्नापि (ण्यन्त) से त (क्त) प्रत्यय॥ २९ ॥

(मन्ये मध्यं त्रिवलिवलितं डिम्भमुष्ट्या ग्राह्यं
नो बाहुभ्यां रमणफलकं वेष्टितुं याति द्वाभ्याम् ।
नेत्रक्षेत्रं तरुणीप्रसृतिदीयमानोपमानं
तत् प्रत्यक्षं मम विलिखितुं यात्येषा न चित्ते ॥ ३० ॥)

कथं ण्हाणधोविदविलेवणा समुत्तारिदविहूसणा वि रमणिज्जा !! । (कथं स्नानधौतविलेपना समुत्तारितविभूषणाऽपि रमणीया !!)

अहवा (अथवा)—

जे रूअमुक्का वि विहूसयंति ताणं अलंकारवसेण सोहा ।
णिसग्गचंगस्स वि माणुसस्स सोहा समुम्मीलदि भूसणेहिं ॥३१॥

अन्वयः—त्रिवलिवलितम् मध्यम् डिम्भमुष्ट्या ग्राह्यं, रमणफलकम् द्वाभ्यां बाहुभ्यां वेष्टितुं नो याति, नेत्रक्षेत्रम् तरुणीप्रसृतिदीयमानोपमानम्, तत् एषा मम प्रत्यक्षम् (अपि) चित्ते विलिखितुम् न याति, इति मन्ये ॥

व्याख्या—त्रिवलीभिः तिसृभिः रेखाभिः वलितम् वेष्टितम् मध्यम् मध्यदेशः डिम्भस्य बालकस्य मुष्ट्या ग्राह्यं गृहीतुं शक्यम्, मुष्टिग्राह्यमध्येयमिति भावः । रमणफलकं जघनपरिसरः रतिस्थानम् द्वाभ्यां बाहुभ्यां वेष्टितुम् आवरीतुं नो याति न शक्ता भवति । नेत्रक्षेत्रं चक्षुःपरिसरः विशालवितस्तिसदृशम् । यद्यपि इयं मम प्रत्यक्षगोचरा, तथापि मम चित्ते इयं न धार्यते, इति संभावयामि ॥ ३० ॥

त्रिवलि से युक्त इसकी कमर बच्चे की मुट्ठी तक से पकड़ी जा सकती है, इसकी जंघायें दोनों हाथों में भी नहीं आसकती अर्थात् जंघायें बड़ी विशाल हैं, आंखों की उपमा वितस्ति से दी जा सकती है । यद्यपि यह मेरे सामने है, फिर भी मैं इसको अपने मन में नहीं रख सकता हूँ ॥ ३० ॥

स्नान से अंगरागों के धुल जाने पर भी तथा आभूषणों के न रहने पर भी यह कितनी सुन्दर लगती है ? अथवा:—

(या रूपमुक्ता अपि विभूषयन्ति तासामलङ्कारवशेन शोभा ।
निसर्गसुन्दरस्यापि मानुषस्य शोभा समुन्मीलति भूषणैः ॥ ३१ ॥)

राजा—एदाए दाव एदं (एतस्यास्तावदेतत्)—

लावण्णं णवजच्चकंचणणिहं णेत्ताण दीहत्तणं
कण्णेहिं खलिदं कवोलफलआ दोखंडचंदोवमा ।
एमा पंचसरेण सज्जिदधणूदंडेण रक्खिज्जए
जेणं सोमणमोहणप्पहुदिणो विज्भंति मं मग्गणा ॥ ३२ ॥

(लावण्यं नवजात्यकाञ्चननिभं नेत्रयोर्दीर्घत्वं

अन्वयः—याः रूपमुक्ताः अपि (अंगानि) विभूषयन्ति, तासाम् अलंकार-वशेन शोभा (भवति) । निसर्गसुन्दरस्य अपि मानुषस्य शोभा भूषणैः समुन्मीलति ।

व्याख्या—याः स्त्रियः रूपेण मुक्ताः सौन्दर्यरहिताः अलंकारैः शरीरम् विभूषयन्ति, तासां सौन्दर्यमलंकाराधीनमेव भवति । निसर्गसुन्दरस्य स्वभावरम्यस्य मानुषस्य शोभा तु स्वतः सिद्धा, भूषणैस्तु सा परां पुष्टिमावहति ॥ ३१ ॥

अन्वयः—लावण्यम् नवजात्यकाञ्चननिभम्, नेत्रयोः दीर्घत्वम् कर्णाभ्यां

जो स्त्रियां सुन्दर नहीं होती हैं, वे अलंकारों से अपने को सजाती हैं और उनका सौन्दर्य अलंकारों पर ही निर्भर है। स्वभाव सुन्दर मनुष्य को अलंकारों की अपेक्षा नहीं होती है, किन्तु अलंकार उसके सौन्दर्य को और अधिक उत्कृष्ट बनाते हैं ॥३१॥

राजा—इसका तो यह :—

इस नायिका का सौन्दर्य नवीन और उत्कृष्ट सुवर्ण की तरह है, इसके नेत्र बड़े विशाल—कान तक खिंचे हुये हैं, कपोलें अर्धचन्द्र की तरह सुन्दर हैं,

---

टिप्पणी—तरुणी चासौ प्रसृतिः = तरुणीप्रसृतिः तया दीयमानम् उपमानम् यस्य तत् तरुणीप्रसृतिदीयमानोपमानम् = विशालवितस्तिसदृशम् । वितस्ति = बालिश्त । स्नानेन धौतं विलेपनं यस्याः सा = स्नानधौतविलेपना = स्नानप्रक्षालिताङ्गरागा (बहु०) । समुत्तारितानि विभूषणानि यया सा = समुत्तारितविभूषणा = अवमुक्ता भूषणा (बहु०) ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—लावण्यम् = शरीर का एक विशेष गुण जिस तरह मोती में चमक होती है, उसी तरह शरीर की कान्ति को लावण्य कहते हैं । नवं जात्यं च यत् काञ्चनं तन्निभं =

कर्णाभ्यां स्खलितं कपोलफलकौ द्विखण्डचन्द्रोपमौ ।

एषा पञ्चशरेण सज्जितधनुर्दण्डेन रक्ष्यते

येन शोषणमोहनप्रभृतयो विध्यन्ति मां मार्गणाः ॥ ३२ ॥)

विदूषकः—[विहस्य] जाणे रत्थाए लोट्टदि से सोहारअणं । (जाने रथ्यायां लुठत्यस्याः शोभारत्नम्)

राजा—[विहस्य] पिअवअस्स ! कधेमि दे (प्रियवयस्य ! कथयामि ते)—

अंगं चंगं णिअगुणगणालंकिदं कामिणीणं

पच्छाअंती उण तणुसिरिं भादि णेवच्छलच्छी ।

इत्थं जाणं अवअवगदा कावि सुंदेरमुद्दा

मण्णो ताणं वलइदधणू णिच्चभुच्चो अणंगो ॥ ३३ ॥

स्खलितम्, कपोलफलकौ द्विखण्डचन्द्रोपमौ, सज्जितधनुर्दण्डेन पञ्चशरेण एषा रक्ष्यते, येन शोषणमोहनप्रभृतयः मार्गणाः मां विध्यन्ति ।

व्याख्या—अस्याः नायिकायाः लावण्यं नवीनोत्कृष्टसुवर्णसदृशम्, नेत्रे च कर्णपर्यन्तमाकृष्टे, कपोलौ च अर्धचन्द्रसदृशौ । कामदेवः साक्षात् धनुर्गृहीत्वा अस्याः रक्षा करोति । शोषणमोहनादयः कामदेवप्रयुक्ताः शराः एतद्दर्शने मामाहतं कुर्वन्ति । एतां दृष्ट्वाऽहं मुग्धोऽस्मीति भावः ॥ ३२ ॥

धनुष लेकर साक्षात् कामदेव इसकी रक्षा कर रहा है इसको देखकर कामदेव के शोषण और मोहन इत्यादि बाण मुझे तो व्याकुल कर रहे हैं ॥ ३२ ॥

विदूषक—(हँसकर) इसका सौन्दर्य रास्ते पर पड़े हुये रत्न के समान सबको आकृष्ट करता है ।

राजा—(हँसकर) प्रियवयस्य, तुझे बतलाता हूं:—

नवजात्यकाञ्चननिभम् = नवीनोत्कृष्टसुवर्णसदृशम् । धनुः एव दण्डः = धनुर्दण्डः । सज्जितः धनुर्दण्डः येन तेन सज्जितधनुर्दण्डेन = गृहीतधनुषा । पञ्चशर = कामदेव-शोषण, मोहन, मादन, तापन और मारण, यह पांच कामदेव के बाण हैं । मार्गण = बाण । विध्यन्ति = व्यध् + य + अन्ति । व्यध् (दिवादि-श्यन्) ॥ ३२ ॥

(अङ्गं सुन्दरं निजगुणगणालङ्कृतं कामिनीनां
प्रच्छादयन्ती पुनस्तनुश्रियं भाति नेपथ्यलक्ष्मीः ।
इत्थं यासामवयवगता काऽपि सौन्दर्यमुद्रा
मन्ये तासां वलयितधनुर्नित्यभृत्योऽनङ्गः ॥ ३३ ॥)

अवि अ एदाए (अपि च, एतस्याः)—

तहा रमणवित्थरो जह ण ठाइ कंचीलदा
तहा अ थणतुंगिमा जह ण एइ णाहिं मुहं ।
तहा णअणबंहिमा जह ण किंपि कण्णुप्पलं
तहा अ मुहमुज्जलं दुससिणी जहा पुण्णिमा ॥ ३४ ॥

अन्वयः—कामिनीनाम् सुन्दरम् अंगम् निजगुणगणालंकृतम् (भवति), नेपथ्यलक्ष्मीः पुनः तनुश्रियं प्रच्छादयन्ती भाति, यासाम् इत्थम् अवयवगता का अपि सौन्दर्यमुद्रा, तासाम् वलयितधनुः अनंगः नित्यभृत्यः (इति) मन्ये ।

व्याख्या—कामिनीनां विलासिनीनाम् सुन्दरम् अङ्गम् निजगुणैः विभ्रम-विलासादिभिः एव अलंकृतम् भवति, न तासां बाह्यप्रसाधनापेक्षा । नेपथ्यलक्ष्मीः परिच्छदकान्तिः पुनः अन्यासां स्त्रीणां तनुश्रियं शरीरशोभां प्रच्छादयन्ती भाति राजते। यासां कामिनीनां पूर्वप्रकारा कापि अनिर्वचनीया सौन्दर्यमुद्रा सौन्दर्यसम्पात् वियते, गृहीतसायकः कामदेवः तासां चिरकिङ्करः भवतीति मन्ये । भृत्यो यथा भर्तुराज्ञाम् विनैव तदाशयं ज्ञात्वा तत्कार्यं संपादयति एवमेव कामः अस्याः कटाक्षेनैव कामिनो स्ववशे करोति ॥ ३३ ॥

कामिनियों का सुन्दर अंग अपने विभ्रम और विलास गुणों से ही अच्छा लगता है, बाह्य सजावट तो दूसरी स्त्रियों की ही शोभा बढ़ाती है। जिन स्त्रियों का सौन्दर्य इस तरह अनिर्वचनीय होता है, कामदेव धनुष लिये हुये हमेशा उनकी सेवा में तत्पर रहता है। उनके आशय को जान कर उनके बिना कहे ही कामदेव कामियों को वश में कर लेता है ॥ ३३ ॥

और भी—इस नायिका की:—

(तथा रमणविस्तरो यथा न तिष्ठति काञ्चीलता
तथा च स्तनतुङ्गिमा यथा नैति नाभिं मुखम् ।
तथा नयनबंहिमा यथा न किमपि कर्णोत्पलं
तथा च मुखमुज्वलं द्विशशिनी यथा पूर्णिमा ॥ ३४ ॥

देवी—अज्ज कविंजल ! पुच्छिअ जाण, का एसा त्ति ।
(आर्य कपिञ्जल ! पृष्ट्वा जानीहि, कैषेति)

विदूषकः—[तां प्रति] एहि मुद्धमुहि ! उअविसिअ

अन्वयः—रमणविस्तरः तथा, यथा काञ्चीलता न तिष्ठति, स्तनतुंगिमा च तथा, यथा मुखं नाभिं न पश्यति, नयनबंहिमा तथा, यथा कर्णोत्पलम् न किमपि, मुखं च तथा उज्ज्वलम्, यथा द्विशशिनो पूर्णिमा ।

व्याख्या—अस्याः नायिकायाः जघनस्थली अतीव विस्तृता यत् रशना-कलापः तत्र न पर्याप्नोति, स्तनौ च तथा उन्नतौ यत् मुखं नाभिं न द्रष्टुं शक्नोति, नेत्रे च तथा विशाले यत् कर्णोत्पलानां न काप्यावश्यकता । मुखं च तथा उज्ज्वलं कान्तिमत् यथा चन्द्रद्वययुक्ता पूर्णमासी प्रतिभाति ॥ ३४ ॥

जंघायें इतनी चौड़ी हैं कि करधनी उन पर पर्याप्त ही नहीं होती, स्तन इतने ऊँचे हैं कि मुख नाभि तक आ ही नहीं सकता, आँखें इतनी बड़ी हैं कि कानों में कर्णोत्पल की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती और मुख तो इस तरह कान्तिमान है जैसे कि पूर्णमासी की रात्रि में दो चन्द्रमा निकल आये हों ॥ ३४ ॥

देवी—**आर्य कपिंजल ! पूछो तो यह कौन है ?**

विदूषक—**(उससे) अयि मुग्धानने ! आओ, बैठो, बताओ तो तुम, कौन हो ।**

टिप्पणी—रथ्या = सड़क । नेपथ्य = वेषभूषा । वलयितं धनुः येन सः = वलयित-धनुः = आकृष्टसायकः (बहु०) । नित्यभृत्यः = दैनिकसेवक । तुंगिमा = ऊंचाई । बहिमा = विशालता । तुंगस्य भावः = तुंगिमा—तुंग + इमा = तुंगिमा (इमनिच् प्रत्ययः) । बहुलस्य-भावः = बंहिमा—बहुल = इमनिच्—बंहि + इमन् = बंहिमा—बहुल शब्द को बंह् आदेश हो गया । द्वौ शशिनौ यस्या सा द्विशशिनी = द्विचन्द्रा । पूर्णिमा = पूर्णमासी ॥ ३४ ॥

णिवेदेहि का तुमं त्ति ?। (एहि मुग्धमुखि ! उपविश्य निवेदय का त्वमिति)

राजा—आसणमिमीए (आसनमस्यै)

विदूषकः—एदं मे उत्तरीअं आसणं। (एतन्मे उत्तरीयमासनम्)

[विदूषकनायिके वस्त्रदानोपवेशने नाटयतः]

विदूषकः—भोदि ! संपदं कहिज्जदु। (भवति ! साम्प्रतं कथ्यताम्)

नायिका—अत्थि एत्थ बिदब्भं णाम णअरं कुंतलेसु, तहिं सअलजणवल्लहो वल्लहराओ णाम राजा। (अस्त्यत्र विदर्भं नाम नगरं कुन्तलेषु, तत्र सकलजनवल्लभो वल्लभराजो नाम राजा)

देवी—[स्वगतम्] जो मह माउस्सिआए पई होई। (यो मम मातृष्वसुः पतिर्भवति)

नायिका—तस्स घरिणी ससिप्पहा णाम। (तस्य गृहिणी शशिप्रभा नाम)

राजा—इसके लिये आसन दो।
विदूषक—लो, यह मेरा उत्तरीय बिछा लो।
(विदूषक और नायिका दोनों वस्त्र देने और बैठने का अभिनय करते हैं)
विदूषक—हां, अब कहो।
नायिका—कुन्तल देश में विदर्भ नाम का नगर है, वहां सारी जनता का प्रिय वल्लभराज नाम का राजा है।
देवी—(स्वगत) जो मेरी मौसी के पति हैं।
नायिका—उनकी रानी का नाम शशिप्रभा है।

---

१. मुग्धं मुखं यस्याः सा, तत्संबुद्धौ=मुग्धमुखि=वरानने।
२. उत्तरीयम्=दुपट्टा।
३. सकलस्य जनस्य वल्लभः=सकलजनवल्लभः=सर्वजनप्रियः।
४. मातुः स्वसा=मातृष्वसा-माता की बहिन, मौसी।

देवी—[स्वगतम्] सावि मे माउस्सिआ। (साऽपि मे मातृष्वसा)

नायिका—तेहिं अहं उप्पण्णेत्ति। (ताभ्यामहमुत्पन्नेति)

देवी—[स्वगतम्] ण क्खु ससिप्पहागब्भुप्पत्तिमंतरेण ईदिसो रूअरेहा होदि। ण क्खु वेदुरिअभूमिगब्भुप्पत्तिमंतरेण वेदुरिअमणिसलाआ णिप्पज्जई। [प्रकाशम्] णं तुमं कप्पूर-मंजरी ? । (न खलु शशिप्रभागर्भोत्पत्तिमन्तरेणेदृशी रूपरेखा भवति। न खलु वैदूर्यभूमिगर्भोत्पत्तिमन्तरेण वैदूर्यमणिशलाका निष्पद्यते। [प्रकाशम्] ननु त्वं कर्पूरमञ्जरी ?)

[नायिका सलज्जमधोमुखी तिष्ठिति][3]

देवी—एहि बहिणिए ! आलिंगेसु मं। (एहि भगिनि ! आलिङ्गय माम्) [इति परिष्वजते][4]

देवी—(स्वगत) वह भी मेरी मौसी है।

नायिका—उनसे मैं उत्पन्न हुई हूँ।

देवी—(स्वगत) इस तरह की सुन्दर रूपरेखा शशिप्रभा के गर्भ के अतिरिक्त और कहीं से उत्पन्न नहीं हो सकती। वैदूर्यमणि, वैदूर्यमणि की खान से ही निकल सकती है (प्रकाश में) तो तुम कर्पूरमंजरी हो ?

(नायिका लज्जा के साथ मुख नीचा किये रहती है)

देवी—आओ बहिन, मुझसे मिलो तो। (आलिंगन करती है)

---

१. रूपरेखा=सौन्दर्य।
२. वैदूर्यमणि=नीलम।
३. लज्जया सह=सलज्जम् (क्रि० वि०)।
४. परिष्वजते=परि √स्वज+अ+ते। (आत्मने० वर्तमान०)।

कर्पूरमञ्जरी—अज्जे ! कप्पूरमंजरीए एसो प्पढमो प्पणामो । (आर्ये ! कर्पूरमञ्जर्या एष प्रथमः प्रणामः)

देवी—अज्ज भैरवाणंद ! तुह प्पसादेण अपुव्वं संविधाणअं अणुभविदं कप्पूरमंजरीदंसणेण; ता चिट्ठदु दाव एसा पंचदसदिअसाइं, पच्छा झाणविमाणेण णइस्सध । (आर्य भैरवानन्द ! तव प्रसादेन अपूर्वं संविधानकमनुभूतं कर्पूरमञ्जरीदर्शनेन; तत् तिष्ठतु तावदेषा पञ्चदशदिवसानि, पश्चात् ध्यानविमानेन नेष्यथ)

भैरवानन्दः—जं भणादि देई । (यत् भणति देवी)

विदूषकः—[राजानमुद्दिश्य] भो वअस्स ! अम्हे परं दुए वि बाहिरा एत्थ, जदो एदाणं मिलिदं कुटुंबअं वट्टदि, जदो इमीए दुओ वि बहिणिआओ । भैरवाणंदो उण एदाणं संजोअअरो अच्चिदो मण्णिदो अ । एसा वि महीअलसरस्सई अ कुट्टणो देहंतरेण देवो ज्जेव्व । (भो वयस्य आवां परं द्वावपि बाह्यावत्र, यत एतयोः मिलितं कुटुम्बकं वर्त्तते, यत इमे द्वे अपि भगिन्यौ । भैरवानन्दः पुनरेतयोः संयोगकरोऽर्चितो मानितश्च । एषाऽपि महीतल-

---

कर्पूरमंजरी—आर्ये, कर्पूरमंजरी का यह पहिला प्रणाम स्वीकार करें ।

देवी—आर्य भैरवानंद ! तुम्हारी कृपा से कर्पूरमंजरी के दर्शन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । पन्द्रह बीस दिन इसको यहाँ ही रहने दो, बाद में अपने ध्यानरूपी विमान से इसको ले जाना ।

भैरवानन्द—जैसी महारानी की आज्ञा ।

विदूषक—(राजा को सम्बोधित कर) प्रिय मित्र ! हम दोनों तो यहाँ पर बाहर के हैं । इनका तो कुटुम्ब ही मिल गया, क्योंकि यह दोनों बहिनें हैं ।

टिप्पणी—बाह्य=बहिरंग, उदासीन । संयोगस्य करः=संयोगकरः–संयोग पूर्वक √कृ+अ=संयोगकरः । महीतलस्य सरस्वती=महीतलसरस्वती–यह विचक्षणा के लिये प्रयुक्त

सरस्वती च कुट्टनी देहान्तरेण देव्येव)

देवी—विअक्खणे ! णिअजेट्ठबहिणिअं सुलक्खणं भणिअ भैरवाणंदस्स हिअअट्ठिआ सपज्जा कादव्वा। (विचक्षणे ! निजज्येष्ठभगिनिकां सुलक्षणां भणित्वा[1] भैरवानन्दस्य हृदयेप्सिता सपर्या[2] कर्त्तव्या)

विचणा—जं देवी आणवेदि। (यत् देवी आज्ञापयति)

देवी—[राजानं प्रति] अज्जउत्त ! पेसिहि मं, जेण अहं बहिणाए एदावत्थाए णेवच्छलच्छीलीलाणिमित्तं अंतेउरं गमिस्सं। !! (आर्यपुत्र ! प्रेषय मां, येनाहं भगिन्या एतदवस्थाया नेपथ्यलक्ष्मीलीला[3]निमित्तमन्तःपुरं गमिष्यामि)

राजा—जुज्जदि चंपअलदाए कत्थूरिआकप्पूरेहिं आलबालपरिपूरणं। (युज्यते चम्पकलतायाः कस्तूरीकर्पूरैरालवाल[4]परिपूरणम्)

[नेपथ्ये]

भैरवानन्द ने इन दोनों का संयोग कराया है इसलिये यह इनका माननीय है। पृथ्वीतल पर सरस्वती के समान यह विचक्षणा भी दूसरी ही देवी (रानी) है।

देवी—विचक्षणे ! अपनी बड़ी बहिन सुलक्षणा से भैरवानन्द का मनोनुकूल सत्कार करने के लिये कह दो ?

विचक्षणा—जो महारानी की आज्ञा।

देवी—(राजा से) आर्यपुत्र ! मुझे आज्ञा दीजिये ताकि मैं अपनी बहिन के लिये वस्त्र इत्यादि ठीक करने के लिये अंतःपुर में जाऊँ !

राजा—चम्पकलता का कस्तूरी और कपूर से आलवाल भरना ठीक ही है।

(नेपथ्य में)

किया गया है। कुट्टनी = महिला।

१. भणित्वा- √भण् + इ + त्वा = कह कर (त्वा प्रत्यय) २. सपर्या = सत्कार। ३. नेपथ्यलक्ष्मीलीला = वेशभूषा की सजावट। ४. आलवाल = थाला, पेड़ों के नीचे का स्थान।

वैतालिकयोरेकः—सुहाअ संझा भोदु देवस्स। (सुखाय सन्ध्या भवतु देवस्य)—

एदं वासरजीवपिंडसरिसं चंडंसुणो मंडलं
को जाणादि कहिं पि संपदि गअं एतम्मि कालंतरे।
जादा किं च इअं पि दीहविरहा ओएण णाहे गदे
मुच्छामुद्दिदलोअणे व्व णलिणी मीलंतपंकेरुहा ॥ ३५ ॥

(एतद्वासरजीवपिण्डसदृशं चण्डांशोर्मण्डलं
को जानाति क्वापि सम्प्रति गतमेतस्मिन् कालान्तरे।
जाता किं चेयमपि दीर्घविरहा शोकेन नाथे गते
मूर्च्छामुद्रितलोचनेव नलिनी मीलत्पङ्केरुहा ॥ ३५ ॥)

अन्वयः—एतद् वासरजीवपिण्डसदृशं चण्डांशोः मण्डलम् एतस्मिन् कालान्तरे सम्प्रति क्वापि गतम् को जानाति। किंच इयम् अपि नलिनीनाथे गते दीर्घविरहा मीलत्पंकेरुहा शोकेन मूर्च्छामुद्रितलोचना इह जाता।

व्याख्या—साम्प्रतं सायंकाले समागते वासरस्य दिवसस्य जीवपिण्डसदृशम् जीवनपुंजतुल्यं चण्डांशोः सूर्यस्य मण्डलं क्व गतमिति न कोऽपि जानाति। सूर्योऽस्तंगत इति भावः। किंच इयम् नलिनी अपि नाथे भर्तरि सूर्ये गते प्रोषिते सति दीर्घविरहा चिरविरहिणी संजाता, अस्याः कमलानि च मुकुलितानि अभूवन्। एतां दृष्ट्वा एतत् प्रतीयते यत् शोकेन मूर्च्छया च अस्याः नेत्रे निमीलिते स्तः। अत्रोत्प्रेक्षालंकारः। भवद्दर्शनात् कर्पूरमंजर्याः अपि संजातरागत्वमिति समासोक्तिश्च। नायिकाधर्माणां शोकविरहमूर्च्छादीनां नलिन्यामारोपात्समाधिरपि ॥ ३५ ॥

प्र० वैतालिक—**महाराज के लिये संध्या सुखकर हो:—**

सायंकाल होते ही दिन के लिये प्राणों के समान सूर्य का मण्डल कहाँ छिप गया यह कौन जानता है। यह नलिनी भी सूर्यास्त होने पर विरहिणी सी हो गई है और इसके मुंदे हुये कमल देख कर ऐसा लगता है मानो इसकी आँखें शोक से मूर्च्छा आजाने पर मिच गई हैं ॥ ३५ ॥
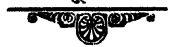
द्वितीयः—

उग्घाडीग्रंति लीलामणिमअवलहीचित्तभित्तीणिवेसा
पल्लंका किंकरीहिं रुदुसमअसुहा वित्थरिज्जंति झत्ति ।
सेरंधीलोलहत्थांगुलिचलणबसा पट्टणादो पउट्टो
हुंकारो मंडपेसुं विलसदि महुरो रुट्ठतुट्ठंगणाणं ॥ ३६ ॥
(उद्घाटयन्ते लीलामणिमयवलभीचित्रभित्तिनिवेशाः
पर्यङ्काः किङ्करीभिः ऋतुसमयसुखा विस्तार्यन्ते झटिति ।
सैरिन्ध्रीलोलहस्ताङ्गुलिचलनवशात् पट्टनादः प्रवृत्तः
हुङ्कारो मण्डपेषु विलसति मधुरो रुष्टतुष्टाङ्गनानाम् ॥ ३६ ॥)

अन्वयः—लीलामणिमयवलभीचित्रभित्तिनिवेशाः उद्घाट्यन्ते, किंकरीभिः ऋतुसमयसुखाः पर्यंकाः झटिति विस्तार्यन्ते, सैरन्ध्रीलोलहस्ताङ्गुलिचलनवशात् पट्टनादः प्रवृत्तः, मण्डपेषु रुष्टतुष्टांगनानाम् मधुरः हुंकारः विलसति ।

व्याख्या—साम्प्रतं सायंकाले समागते लीलार्थं निर्मिताः मणिमय्यः वलभ्यः कपोतनिलयाः चित्रभित्तिनिवेशाश्च उद्घाट्यन्ते दिवसे सूर्यतापेन कपोतानां क्लेशपरिहाराय चित्रलिखितानां च आतपयोगे मालिन्यभयात् रात्रावेव तेषामुद्घाटनम् । किंकरीभिः दासीभिः ऋतुसमये वसन्तसमये सुखाः सुखकराः पर्यंकाः झटिति शीघ्रं विस्तार्यन्ते सज्जीक्रियन्ते । सैरिन्ध्रीणाम् स्वाधीनानां स्त्रीणां लीलाभिः हस्ताङ्गुलिभिः चलनवशात् पट्टनादः मृदङ्गध्वनिः प्रवृत्तः । तथा मण्डपेषु रुष्टानां मानिनीनां

द्वि० वैतालिक—खेलने के लिये बनाई गई वलभियों और चित्रशालायें सन्ध्या होने पर खोली जा रही हैं। दासियाँ वसन्त में सुखकर शय्यायें बिछा रही हैं,

---

टिप्पणी—चण्डांशोः = चण्डाः अंशवः सन्ति यस्य तस्य चण्डांशोः = प्रखरकिरणस्य । मूर्च्छया मुद्रिते लोचने यस्याः सा मूर्च्छामुद्रितलोचना = मूर्च्छानिमीलितनयना (बहु०) । मीलन्ति पंकेरुहाणि यस्याः सा मीलत्पंकेरुहा = मुकुलितपद्मा । उद्घाट्यन्ते =

राजा— अहे वि संभं वंदिदुं गमिस्सामो। (वयमपि सन्ध्यां वन्दितुं गमिष्यामः)

[इति निक्रान्ताः सर्वे]

इति प्रथमं जवनिकान्तरम्।

तुष्टानां प्रीतमनसां नारीणां मधुरः मनोहरः हुंकारः प्रियेषु तर्जनरवः चाटुरवश्च विलसति प्रसरति ॥ ३६ ॥

सैरिन्ध्री स्त्रियों का (स्वतन्त्र स्त्रियों का) अपनी चञ्चल अंगुलियों से मृदङ्ग बजाना प्रारम्भ हो गया है। घरों में कुपित तथा प्रसन्न अंगनाओं का अपने पतियों के साथ मधुर कोपसंलाप या प्रेमसंलाप चलने लगा है ॥ ३६ ॥

राजा—हम लोग भी संध्या करने चलें।

(सब का प्रस्थान)

प्रथम जवनिका समाप्त

उद् √घाटि + य + अन्ते। (कर्मवा० वर्त० प्रथमपु० बहु०) वलभी = गोपानसी–कबूतरों के रखने का स्थान। सैरिन्ध्री = दूसरे के घर में रहने वाली, स्वतन्त्र और केश झाड़ना, गूथना इत्यादि शिल्पकार्य करने वाली स्त्री ॥ ३६ ॥

द्वितीयं जवनिकान्तरम्

[ततः प्रविशति राजा प्रतीहारी च]

प्रतीहारी—(परिक्रामितकेन) इदो इदो महाराओ । (इत इतो महाराजः)

राजा—(कतिचित्पदानि गत्वा, तामनुसन्धाय) तहिं क्खु अवसरे (तस्मिन् खलु अवसरे)

ण ट्ठाणाहिं तिलांतरं बि चलिदा सुत्था णिदंबत्थली
थोउव्वेल्लबली तरंगमुदरं कंठो तिरच्छि ट्ठिदो ।
वेणीए उण आणणेन्दु बलणे लद्धं थणालिंगणं
जादा तीअ च उब्बिधा तणुलदा णिज्झाअ अंतीअमं ॥१॥
(न स्थानात्तिलान्तरमपि चलिता स्वस्था नितम्बस्थली
स्तोकोद्वेल्लद्वलीतरङ्गमुदरं कण्ठस्तिर्यक् स्थितः ।

अन्वयः—माम् निध्याययन्त्याः तस्याः तनुलता चतुर्विधा जाता, स्वस्था नितम्बस्थली स्थानात् तिलान्तरमपि न चलिता, उदरम् स्तोकोद्वेल्लद्वलीतरङ्गम्, कण्ठः तिर्यक् स्थितः, वेण्या पुनः आननेन्दुवलने स्तनालिङ्गनम् लब्धम् ।

व्याख्या—राज्ञ उक्तिरियम् । माम् निध्याययन्त्याः नितरां ध्यायन्त्याः तस्याः नायिकायाः तनुलता अङ्गवल्ली चतुर्विधा जाता । लतारोपेण तन्वाः कार्श्य–चापल्य–शैत्य-कोमलतादिगुणवत्त्वं व्यज्यते । स्वस्था स्थिरा नितम्बस्थली स्वस्थानात्

(तब राजा और प्रतीहारी प्रवेश करते हैं)

प्रतीहारी– (घूम कर) महाराज । इस तरफ, इस तरफ ।

राजा—(कुछ चल कर और कर्पूरमञ्जरी का ध्यान कर) उस समयः—

लगातार मेरा ध्यान करती हुई उस नायिका का लता की तरह सुकुमार

टिप्पणी—नितम्बमेव स्थली—नितम्बस्थली = नितम्बप्रदेशः । स्तोकम् उद्वेल्लन्त्यः = स्तोकोद्वेल्लन्त्यः । वल्यः एव तरङ्गाः यस्मिन् तत् स्तोकोद्वेल्लद्वलीतरङ्गम् = स्वल्पप्रकटीभवद्रेखातरङ्गम्) तिरः अञ्चति (गच्छति) इति तिर्यक् तिरस् को (तिरि आदेश हो

वेण्या पुनराननेन्दुवलने लब्धं स्तनालिङ्गनं

जाता तस्याश्चतुर्विधा तनुलता निध्याययन्त्या माम् ॥ १ ॥)

प्रतीहारी—(स्वगतम्) **कधं अज्ज वि सो ज्जेव्व तालीपत्त-संचओ, ताओ ज्जेव्व अक्खरपंतीओ; ता वसंतवण्णणेण सिढिलआमि से तग्गदं हिअआवेअं ।** (प्रकाशम्) **दिट्ठिं देउ महाराओ ईसोसि जरठाअमाणे कुसुमाअरम्मि ।** (कथमद्यापि स एव ताडीपत्रसंचयः, ता एव अक्षरपंक्तयः, तत् वसन्तवर्णनेन शिथिलयामि अस्य तद्गतं हृदयावेगम् । (प्रकाशम्) दृष्टिं ददातु महाराज ! ईषदीषज्जरठायमाने कुसुमाकरे)

तिलान्तरमपि लेशमात्रमपि न चलिता गौरवातिशयादिति भावः । उदरं स्वल्पप्रकटीभवद्रेखाविशेषैः तरङ्गवदिव प्रतिभाति स्म । कण्ठः परिवृत्य दर्शनात् तिर्यक् तिरश्चीनं स्थित आसीत् । केशपाशेन पुनः मुखचन्द्रस्य वलने परावर्त्तने स्तनयोरालिङ्गनं प्राप्तम् परावर्तनकाले स्तनोपरि पतनादिति ॥ १ ॥

शरीर चार तरह का हो गया । उसके स्थिर नितम्ब जरा भी न हिलते थे, उसके पेट पर कुछ २ चमकती हुई रेखायें तरङ्गों की तरह लगती थीं, घूम कर देखने से उसकी गर्दन तिरछी थी और उसके बाल उसके स्तनों पर बिखरे हुये थे ॥ १ ॥

प्रतीहारी—**(अपने मन में) क्यों आज भी फिर वही ताड़पत्र और वे ही अक्षरपङ्क्तियाँ दिखाई देती हैं ? वसन्तवर्णन के द्वारा मैं इसके हृदयावेग (कर्पूरमञ्जरीसम्बन्धी) को कम करूंगी । (प्रकाश में) महाराज ! कुछ कुछ खिलते हुये बगीचे की ओर देखें ।**

जाता है । तिर्यक्=तिरछा चलने वाला । वेणी=केशपाश । आननमेवेन्दुः तस्य वलने=मुखचन्द्रपरावर्तने=मुखचन्द्र के घुमाने पर । यहाँ स्मृति अलङ्कार है, स्थली, तरङ्ग इत्यादि साभिप्राय विशेषणों की वजह से परिकर अलङ्कार भी है तथा साथ में रूपक अलङ्कार भी प्रयुक्त किया गया है ॥ १ ॥

टिप्पणी—कथमद्यापि…अक्षरपङ्क्तयः–इस कथन में किसी मन्दबुद्धि छात्र का प्रसङ्ग लिया गया है जो बराबर एक ही पुस्तक पढ़ता रहे और एक सा ही लिखता रहे ।

मूलाहिंतो परभुअवहूकंठमुद्दं दलंता
देंता दीहं महुरिमगुणं जप्पिदे छप्पआणम् ।
संचारंता बिरहिसु णवं पंचमं किंच राअं
राओम्मत्ता रइकुलघरा बासरा बित्थरंति ॥ २ ॥

(मूलात्प्रभृति परभृतवधूकण्ठमुद्रां दलन्तो
ददतो दीर्घं मधुरिमगुणं जल्पिते षट्पदानाम् ।
सञ्चारयन्तो विरहिषु नवं पञ्चमं किञ्च रागं
रागोन्मत्ता रतिकुलगृहा वासरा विस्तीर्यन्ते ॥ २ ॥)

अन्वयः—मूलात् परभृतवधूकण्ठमुद्रां दलन्तः, षट्पदानाम् जल्पिते दीर्घं मधुरिमगुणं ददतः, किञ्च विरहिषु नवम् (कोकिलेषु) पञ्चमं रागं सञ्चारयन्तः, रागोन्मत्ताः रतिकुलगृहाः वासराः विस्तीर्यन्ते ।

व्याख्या—मूलात्प्रभृति प्रारम्भादेव परभृतवधूनां कोकिलस्त्रीणाम् कण्ठमुद्रां कण्ठनिरोधं दलन्तः भिन्दन्तः (कोकिलरवं जनयन्तः), षट्पदानाम् भ्रमराणां जल्पिते गुञ्जने दीर्घं गम्भीरं मधुरिमगुणं माधुर्यं ददत उत्पादयन्तः, किञ्च विरहिषु नवमभिनवं कोकिलेषु पञ्चमं रागमनुरागं स्वरविशेषं च सञ्चारयन्तः रागोन्मत्ताः रागप्रेरकाः रतिकुलगृहाः रतेः स्थायिभावस्य उत्पादकाः वासराः वसन्तदिवसाः विस्तीर्यन्ते क्रमेण दीर्घीभवन्ति ॥ २ ॥

प्रारम्भ से ही कोयल के कण्ठ का विकास करते हुये, भ्रमरों के गुञ्जन को और भी मधुर बनाते हुये, विरहियों के हृदय में नवीन अनुराग तथा कोयलों का पञ्चम स्वर उत्पन्न करने वाले राग से भरे तथा श्रृङ्गार रस को उद्दीप्त करने वाले यह बसन्त के दिन कैसे लम्बे होते जाते हैं ॥ २ ॥

इसी तरह राजा को बराबर कर्पूरमञ्जरी का ही ध्यान बना हुआ है । कुसुमाकर = कुसुमनामाकरः उत्पत्तिस्थानम्, उद्यान ।

टिप्पणी—दलन्तः = $\sqrt{}$दल् + शतृ = अन्तः = दलन्तः । विस्तीर्यन्ते = क्रमेण वर्धन्ते (कर्मकर्तरि लट्) ॥ २ ॥

राजा—[तदनाकर्ण्य सानुरागम्]—

आत्थाणी जणलोअणाणं बहुला लावण्णकल्लोलिणी

लीलाविब्भमहासबासणअरी सोभाग्गपारट्ठिआ।

णेत्तेंदीवरदीहिआ मह उणो सिंगाररसंजीअणी

संजादा अह मम्महेण धणुहे तिक्खो सरो पुंखिदो॥ ३॥

(आस्थानीजनलोचनानां बहुला लावण्यकल्लोलिनी

लीलाविभ्रमहासवासनगरी सौभाग्यपारस्थिता।

नेत्रेन्दीवरदीर्घिका मम पुनः शृङ्गाररसञ्जीविनी

सञ्जाताऽथ मन्मथेन धनुषि तीक्ष्णः शरः पुङ्खितः॥ ३॥)

व्याख्या—आस्थान्यां सभायामुपविष्टाः ये जनाः सभ्याः तेषां लोचनानां बहुला पूर्णा लावण्यकल्लोलिनी लावण्यतरङ्गिणी। इयं नायिका सभ्यानां नेत्राणि लावण्यस्रोतोभिरिव पूरयतीति भावः। लीलया विभ्रमेण च यो हासः मन्दस्मितं तस्य वासनगरी मृदुमन्दहासिनीति यावत्। सौभाग्यस्य पारे स्थिता सौभाग्य-पारस्थिता परमसौभाग्ययुक्ता चेयम्। नेत्रेन्दीवरयोः दीर्घिका वापी, तां दृष्ट्वा नेत्रे परमानन्दमनुभवतः। मम तु पुनः शृङ्गारसञ्जीविनी शृङ्गाररसोद्दीपिनी सा सञ्जाता। अथ अनन्तरमेव मन्मथेन कामेन धनुषि तीक्ष्णः मर्मभिन् शरः बाणः प्रक्षिप्तः। अहं तु तद्दर्शनादेव कामवश आसम् तत्रापि पुनस्तेन शरेणान्तर्विद्धः॥ ३॥

राजा—(**प्रतीहारी के वचनों पर ध्यान न देकर अनुरागपूर्वक**):—

सभा में उपस्थित सभासदों के नेत्रों को नदी की तरह अपने सौन्दर्य से तृप्त करती हुई, लीला और विभ्रम से मन्द २ मुस्कराती हुई, परम सौभाग्य वाली, नेत्ररूपी कमलों के लिये वापी के समान अर्थात् नेत्रों को प्रसन्न करने वाली तथा शृङ्गार रस को बढ़ाने वाली वह कर्पूरमञ्जरी अब भी मेरे हृदय में वर्तमान है। फिर भी कामदेव ने मुझ पर अपने धनुष से तीक्ष्ण बाण छोड़ ही दिया॥ ३॥

टिप्पणी—आस्थान्यां ये जनाः आस्थानीजनाः तेषां लोचनानाम् = आस्थानीजनलोचनानाम्। आस्थानी = सभाभवन। नेत्रे एव इन्दीवरे = नेत्रेन्दीवरे, तयोः दीर्घिका = नेत्रेन्दीवरदीर्घिका दीर्घिका = वापी, बावड़ी। पुङ्खितः = चढ़ा दिया— √पुंख + इ + तः॥ ३॥

[सोन्मादमिव] दंसणक्खणादो पहुदि कुरंगाक्खी ।
(दर्शनक्षणात् प्रभृति कुरङ्गाक्षी[1])—

चित्ते चिहुट्टदि ण क्खुट्टदि सा गुणेसु
सेज्जासु लोट्टदि विसप्पदि दिम्मुहेसु ।
बोल्लम्मि वट्टदि पअट्टदि कव्वबंधे
झाणेन तुट्टदि चिरं तरुणी चलाक्खी ॥ ४ ॥

(चित्ते तिष्ठति न क्षीयते सा गुणेषु
शय्यायां लुठति विसर्पति दिङ्मुखेषु ।
वचने वर्त्तते प्रवर्त्तते काव्यबन्धे
ध्यानेन त्रुट्यति चिरं तरुणी चलाक्षी[2] ॥ ४ ॥)

अन्वयः—चलाक्षी सा तरुणी चिरम् चित्ते तिष्ठति, गुणेषु न क्षीयते, शय्यायां लुठति, दिङ्मुखेषु विसर्पति, वचने वर्तते, काव्यबन्धे प्रवर्तते, ध्याने न त्रुट्यति ।

व्याख्या—चलाक्षी चञ्चलनेत्रा सा तरुणी नायिका चिरं निरन्तरम् चित्ते मानसे तिष्ठति वर्तते, गुणेषु सौन्दर्यादिषु न क्षीयते न न्यूना भवति, अपि तु सा सर्वगुणयुक्तेति प्रतीयते, शय्यायां मत्पार्श्वे लुठति शेते । दिङ्मुखेषु विसर्पति सञ्चरति, वचने वर्तते मद्वाक्यं शृणोतीत्यर्थः, काव्यबन्धे मद्विषयिणि प्रवर्तते प्रक्रमते इत्थं सा ध्याने न त्रुट्यति, सततं मम मनसि वर्तते ॥ ४ ॥

(पागल की तरह) वह मृगनयनी दर्शनों के बाद से ही:—

चञ्चल नेत्रों वाली वह तरुण नायिका सर्वदा मेरे चित्त में बसी रहती है, उसके गुण सदत मुझे याद आते रहते हैं, वह मेरे पास शय्या पर सोती हुई सी प्रतीत होती है, मुझे हर तरफ वह चलती हुई दिखाई देती है, मेरे वचनों को सुनती है, मेरे सम्बन्ध की काव्यरचना करती है और मेरे ध्यान से कभी नहीं उतरती है ॥४॥

१. कुरङ्गाक्षी=कुरङ्गस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा कुरङ्गाक्षी =मृगनयनी ।

२. चले अक्षिणी यस्याः सा चलाक्षी—अक्षि से टच् प्रत्यय ।

अवि अ (अपि च)—

जे तीअ तिक्खचलचक्खुतिभाअदिट्ठा
ते कामचंदमहुपंचममारणिज्जा ।
जेसुं उणो णिवडिदा सअला वि दिट्ठी
वट्टंति ते तिलजलांजलिदाणजोग्गा ॥ ५ ॥

(ये तया तीक्ष्णचलचक्षुस्त्रिभागदृष्टा-
स्ते कामचन्द्रमधुपञ्चममारणीयाः ।
येषु पुनर्निपतिता सकलाऽपि दृष्टि-
र्वर्त्तन्ते ते तिलजलाञ्जलिदानयोग्याः ॥ ५ ॥)

अन्वयः—तया ये तीक्ष्ण चलचक्षुस्त्रिभागदृष्टाः, ते कामचन्द्रमधुपञ्चममारणीयाः, येषु पुनः सकला अपि दृष्टिः निपतिताः, ते तिलजलाञ्जलिदानयोग्याः वर्तन्ते।

व्याख्या—तया नायिकया ये जनाः तीक्ष्णस्य चलस्य चञ्चलस्य च नेत्रस्य तृतीयभागेन दृष्टाः अवलोकिताः, ते जनाः कामेन चन्द्रेण मधुना वसन्तेन पञ्चमेन कोकिलरवेण च अवश्यमेव कालान्तरे मारणीयाः विनाशनीयाः। येषु जनेषु तस्याः सकला अपि दृष्टिः अपतत् ते साम्प्रतमेव तिलजलाञ्जलिदानस्य योग्याः। अर्थात् साम्प्रतमेव मृताः। तेषां तु तर्पणमावश्यकमिति भावः ॥ ५ ॥

और भी :—

उस नायिका ने जिन लोगों को अपने पैने और चञ्चल नेत्र के तीसरे भाग से भी देखा है उन्हें कामदेव, चन्द्रमा, वसन्त और कोकिल का स्वर शीघ्र ही मार डालेगा। जिन लोगों पर उसकी भरपूर आंखें पड़ी हैं, उन्हें तो मरा हुआ ही समझो ॥ ५ ॥

टिप्पणी—त्रिभाग = तीसरा भाग—कहीं संख्यावाची शब्द भी पूरणार्थक देखा जाता है। मारणीयाः = मारयितुं योग्याः— √मारि + अनीय = मारणीय—यहाँ भव्य अर्थ में अनीयर् प्रत्यय हुआ है। तिलानां जलस्य च अञ्जलयः = तिलजलाञ्जलयः तासां दानस्य योग्याः = तिलजलांजलिदानयोग्याः = तर्पणार्हाः। मरे हुओं को तिलाञ्जलि और तर्पण दिया जाता है। इसलिये इस कथन का अभिप्राय यह है कि उन लोगों को मरा हुआ ही समझो ॥

[सस्मरणमिव] अवि च (अपि च)—

अग्गम्मि भिंगसरणी णअणाण तीए
मज्झे उणो कढिददुद्धतरंगमाला ।
पच्चा अ से सरदि तंसणिरोक्खिदेसु
आकण्णमंडलिअचावधरो अअंगो ॥ ६ ॥

(अग्रे भृङ्गसरणिर्नयनयोस्तस्या
मध्ये पुनः क्वथितदुग्धतरङ्गमाला ।
पश्चाच्च तस्याः सरति तिर्यङ्निरीक्षितेषु
आकर्णमण्डलितचापधरोऽनङ्गः ॥ ६ ॥)

[विचिन्त्य] **कधं चिरअदि प्पिअवअस्सो ?** (कथं चिरयति प्रियवयस्यः ?)

अन्वयः—तस्याः नयनयोः अग्रे भृङ्गसरणिः, पुनः मध्ये क्वथितदुग्धतरङ्गमाला, पश्चात् तस्याः तिर्यङ्निरीक्षितेषु आकर्णमण्डलितचापधरः अनङ्गः सरति ।

व्याख्या—तस्याः कर्पूरमञ्जर्याः नयनयोः नेत्रयोः अग्रे भृङ्गानां भ्रमराणां सरणिः पङ्क्तिः चरतीवेति भावः । पुनः मध्ये क्वथितस्य आवर्तितस्य दुग्धस्य तरङ्गमाला ऊर्मिमाला विराजते । पश्चात् तस्याः तिर्यगवलोकनेषु कामः कर्णपर्यन्तम् धनुराकृष्य सञ्चरन्निव प्रतीयते ॥ ६ ॥

(कुछ याद सा कर के) और भीः—

उस कर्पूरमञ्जरी के नेत्रों के आगे भौंरे मंडराते हैं, मध्य में विलोये हुये दूध की तरङ्गमाला जैसी मालूम पड़ती है, जब वह पीछे की ओर तिरछा होकर देखती है तो ऐसा लगता है जैसे कि कान तक धनुष खींचे साक्षात् कामदेव ही चल रहा हो ॥६॥

(सोचकर) प्रिय वयस्य ! (विदूषक !) क्यों देर कर रहा है ?

टिप्पणी—सरणिः = पङ्क्तिः । आकर्णं मण्डलितः = आकर्णमण्डलितः, यः चापस्तम् धरतीति आकर्णमण्डलितचापधरः = आकर्णाकृष्टधनुर्धरः । आकर्णमण्डलित चापपूर्वक √धृ धातु से अप् (अ) प्रत्यय । मण्डलित = झुका हुआ ॥ ६ ॥

[प्रविश्य विदूषको विचक्षणा च परिक्रामतः]

विदूषकः—**अइ विअक्खणे ! सब्वं सच्चं एदं ?** (अयि विचक्षणे ! सर्वं सत्यमिदम् ?)

विचक्षणा—**सब्वं सच्चअरं ।** (सर्वं सत्यतरम्)

विदूषकः—**णाहं पत्तिआमि, जदो परिहाससीला क्खु तुमं ।** (नाहं प्रत्येमि, यतः परिहासशीला खलु त्वम्)

विचक्षणा—**अज्ज ! मा एव्वं भण; अण्णो वक्कुत्तिकालो, अण्णो कज्जविआरकालो ।** (आर्य ! मैवं भण; अन्यो वक्रोक्तिकालः, अन्यः कार्यविचारकालः)

विदूषकः—[पुरोऽवलोक्य] **एसो प्पिअवअस्सो हंसो विअ विमुक्कमाणसो, करी विअ मदक्खामो, मुणालदंडो विअ घणघम्ममिलाणो, दिणदीओ विअ विगलिअच्छाओ, प्पभाद-पुण्णिमाचंदो विअ पंडुरपरिक्खीणो चिट्ठदि ।** (एष प्रियवयस्यो हंस इव विमुक्तमानसः, करीव मदक्षामः, मृणालदण्ड इव घनघर्म-

---

(विदूषक और विचक्षणा रंगमंच पर आकर घूमते हैं)

विदूषक—**अरी विचक्षणे ! क्या यह सब सच है ?**

विचक्षणा—**सब सच्चा ही समझो ।**

विदूषक—**मुझे तो विश्वास नहीं होता क्योंकि तुम्हारा तो परिहास करने का स्वभाव ही है ।**

विचक्षणा—**आर्य ! ऐसा मत कहो, हंसने का समय और होता है, काम करने का समय और होता है ।**

विदूषक—**(सामने देखकर) यह मेरा प्रिय मित्र (राजा) तो मानसरोवर से**

टिप्पणी—प्रत्येमि = प्रति — √इ + मि । इण् गतौ (अदादि) विश्वास करना । वक्राचासौ उक्तिः = वक्रोक्तिः, तस्याः कालः = वक्रोक्तिकालः = हंसी करने का समय । विमुक्तं त्यक्तं मानसं सरः येन सः = विमुक्तमानसः = त्यक्तमानसरोवरः (हंसपक्षे) ।

म्लानः, दिनदीप इव विगलितच्छायः, प्रभातपूर्णिमाचन्द्र इव पाण्डुर-परिक्षीणस्तिष्ठति)

उभे—[परिक्रम्य] जअदु जअदु महाराओ। (जयतु जयतु महाराजः)

राजा—वअस्स! कधं उण विअक्खणाए मिलिदोसि? (वयस्य! कथं पुनर्विचक्षणया मिलितोऽसि?)

विदूषकः—अज्ज विअक्खणा मए सह संधिं कादुं आअदा। किदसंधोए इमोए सह मतअंतस्स एत्तिआ वेला लग्गा। (अद्य विचक्षणा मया सह सन्धिं कर्त्तुमागता। कृतसन्ध्यैतया सह मन्त्रय-माणस्यैतावती वेला लग्ना)

छूटे हुये हंस के समान तथा उद्विग्न मन वाला मदस्राव से दुर्बल हाथी की तरह एवं प्रचण्ड सूर्यताप से मुरझाये हुये कमलनाल की तरह या दिन में कान्तिहीन दीपक की तरह तथा प्रभात कालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह पीला और थका सा बैठा हुआ है।

दोनों—(घूमकर) महाराज की जय हो, जय हो।

राजा—मित्र! विचक्षणा से फिर कैसे मेल हुआ?

विदूषकः—आर्य! विचक्षणा मेरे साथ सन्धि करने आई थी। सन्धि करने के बाद इससे बातचीत करते हुये इतना समय लग गया।

विमुक्तं विरहितमुद्विग्नं वा मानसं हृदयं यस्य सः=विमुक्तमानसः=उद्विग्नमनाः (नृपपक्षे)। मदेन मदस्रावेण क्षामः क्षीणः=मदक्षामः=दानवारि के छूटने से दुर्बल। क्षामः=√क्षै क्षये—क्त प्रत्यय त को म आदेश—क्षामः। घनेन घर्मेण म्लानः=घनघर्मम्लानः=प्रचण्डा-तपक्लान्तः। विगलिता छाया यस्य सः=विगलितच्छायः=विगतप्रभः, कान्तिहीन। पाण्डु-रश्चासौ परिक्षीणश्च=पाण्डुरपरिक्षीणः=पीला और दुबला सा। परिक्षीण=परि—√क्षि+त=परिक्षीण—त को न आदेश हो जाता है।

टिप्पणी—कृतसन्ध्या=कृता सन्धिः सम्मेलनं यया सा, तया कृतसन्धया=कृतसम्मेल-नया। मन्त्रयमाण=√मन्त्रि+आन (शानच्-म् का आगम) मन्त्रयमाण=बातचीत करता हुआ।

राजा—संधिकरणस्स किं फलं ? । (सन्धिकरणस्य किं फलम् ?)

विदूषकः—एसा अहिमदजणप्पेसिदा लेहहत्था णं विअक्खणा आअदा । (एषा अभिमतजनप्रेषिता लेखहस्ता[1] ननु विचक्षणा आगता)

राजा—[गन्धं सूचयित्वा] केदईकुसुमगंधो विअ आआदि ? (केतकीकुसुमगन्ध इव आयाति)

विचक्षणा—केदईदललेहो ज्जेव्व एसो मह हत्थे । (केतकी-[2] दललेख एवैष मम हस्ते)

राजा—महुसमए कधं केदईकुसुमं ? । (मधुसमये[3] कथं केतकीकुसुमम् ?)

विचक्षणा—भैरवाणंददिण्णमंतप्पहावेण देवीभवणुज्जाणे केदईलदाए एक्को दाव प्पसवो दंसिदो । तस्स ताए देवीए दलसंपुडेहिं अज्ज हिंदोलअप्पभंजणीए चउत्थीए हरवल्लहा देवी अच्चिदा । अण्णं च दलसपुडजुअलं उण कणिट्ठबहिणीआए

राजा—सन्धि करने का क्या फल हुआ ?

विदूषक—प्रियजन के द्वारा भेजी हुई और हाथ में पत्र लिए हुए यह विचक्षणा आई है ।

राजा—(कुछ सूंघकर) केतकी के फूल की गन्ध सी आरही है ।

विचक्षणा—मेरे हाथ में यह केतकी पत्र पर लिखा हुआ ही लेख है ।

राजा—वसन्त ऋतु में यह केतकी का फूल कैसे ?

विचक्षणा—भैरवानन्द के द्वारा दिए गए मन्त्र के प्रभाव से महारानी के भवन

---

१. लेखहस्ता—लेखः हस्ते यस्या सा लेखहस्ता = पत्रहस्ता ।

२. केतकी = केवड़ा ।

३. मधुसमयः = वसन्त ऋतु ।

कप्पूरमंजरीए प्पसादीकिदं । ताए वि एक्केण दलसंपुडेण भअवदी गोरी ज्जेब्व अच्चिदा । अण्णं च—(भैरवानन्ददत्तमन्त्रप्रभावेण देवीभवनोद्याने केतकीलतया एकस्तावत् प्रसवो दर्शितः । तस्य तया देव्या दलसम्पुटैरद्य हिन्दोलकप्रभञ्जन्यां चतुर्थ्यां हरवल्लभा देवी अर्चिता । अन्यच्च दलसम्पुटयुगलं पुनः कनिष्ठभगिन्यै कर्पूरमञ्जर्यै प्रसादीकृतम् । तयाऽपि एकेन दलसम्पुटेन भगवती गौरी एव अर्चिता । अन्यच्च)—

केदईकुसुमपत्तसंपुडं पाहुदं तुअ सहीअ पेसिदं ।
एणणाहिमसिवण्णसोहिणा तं सिलोअजुअलेण लंछिदं ॥ ७ ॥
(केतकीकुसुमपत्रसम्पुटं प्राभृतं तव सख्या प्रेषितम् ।
एणनाभिमसीवर्णशोभिना तत् श्लोकयुगलेन लाञ्छितम् ॥७॥)

(इति लेखमर्पयति)

अन्वयः—तव सख्या एणनाभिमसीवर्णशोभिना श्लोकयुगलेन लाञ्छितम् तत् केतकीकुसुमपत्रसम्पुटम् तत् प्राभृतम् प्रेषितम् ।

व्याख्या—तव सख्या कर्पूरमञ्जर्या कस्तूरीलिखितेन श्लोकद्वयेन अलंकृतम्

के बगीचे में केवड़े की लता पर एक फूल दिखलाई दिया । उस फूल के दलों से आज हिन्दोलक उत्सव की समाप्ति पर चतुर्थी के दिन महारानी ने पार्वती की पूजा की और कुछ दल अपनी छोटी बहिन कर्पूरमञ्जरी को प्रसाद रूप में दिए । उसने भी एक दलसम्पुट से गौरी की पूजा की । और :—

तुम्हारी सखी (कर्पूरमञ्जरी) ने कस्तूरी की स्याही से यह दो श्लोक लिख कर केतकीकुसुम के यह दल उपहार में भेजे हैं ॥ ७ ॥

(लेख हाथ में देती है)

टिप्पणी—प्रसवः=फूल । हिन्दोलक—भगवान् का हिण्डोले का उत्सव । प्रभञ्जनी=समाप्त करने वाली । हरस्य वल्लभा प्रिया=हरवल्लभा=गौरी । अर्चिता=पूजिता—√अर्च पूजायाम् क्त प्रत्यय । अप्रसादः प्रसादः कृतम्=प्रसादीकृतम् (च्विप्रत्ययान्त) ।

टिप्पणी—एणनाभिः=कस्तूरी । प्राभृतम्=भेंट, उपहार । लाञ्छितम्=अलंकृतम्, शोभित ।

राजा—[प्रसार्य्य वाचयति]—

हंसिं कुंकुमपंकपिंजरतणुं काऊण जं बंचिदो

तब्भत्ता किल चक्कवाअघरिणी एमत्ति मण्णंतओ !

एदं तं मह दुक्किदं परिणदं दुक्खाणां सिक्खवणं

एक्कत्थो बि ण जासि जेण बिसअं दिट्ठित्तिभाअस्स बि ॥

(हंसीं कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरतनुं कृत्वा यद्वञ्चितः

तद्भर्त्ता किल चक्रवाकगृहिण्येषेति मन्यमानः ।

एतत्तन्मम दुष्कृतं परिणतं दुःखानां शिक्षकं

एकस्थोऽपि न यासि येन विषयं दृष्टित्रिभागस्यापि ॥८॥)

एतत् केतकीकुसुमपत्रसम्पुटम् उपहारीकृतं तवेति भावः। कर्पूरमञ्जरी महिष्याः भगिनी, अतः राज्ञः सखीत्वेन सा व्यवहृता ॥ ७ ॥

अन्वयः—हंसी कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरतनुं कृत्वा चक्रवाकगृहिणी एषा इति मन्यमानः तद्भर्ता यत् वञ्चितः (दैवेन)। तत् एतत् दुःखानाम् शिक्षकम् मम दुष्कृतम् परिणतम् येन एकस्थः अपि दृष्टित्रिभागस्यापि विषयं न यासि।

व्याख्या—हंसः स्वानुरक्ताम् हंसीम् पूर्वं कुङ्कुमरागेण पिङ्गलवर्णां करोति पश्चात् भ्रमवशात् तां चक्रवाकीं मन्यमानः त्यजति, एवं यथा दैवेन हंसः प्रतार्यते तथैवाहम्। एषः मे दुःखदायिनां दुष्कृतानामेव परिणामः यदेकदेशस्थितोपि त्वम् मया नेत्रापाङ्गेनापिं द्रष्टुं न शक्यते ॥ ८ ॥

राजा—(**खोलकर पढ़ता है**):—

अपने से प्रेम करनेवाली हंसिनी को कुङ्कुमराग से सजाकर पुनः भूल से उसे चक्रवाकी समझने वाला हंस उसे छोड़ देता है। यह मेरे दुःखद पापों का ही परिणाम है कि तुम्हारे एक स्थान पर रहने पर भी मैं तुम्हें जरा भी नहीं देख पाती हूँ ॥ ८ ॥

टिप्पणी—प्रसार्य्य=खोल कर, फैला कर। प्र— √सारि+य— √सारि (ण्यन्त) से ल्यप् प्रत्यय।

टिप्पणी—कुङ्कुमस्य पङ्केन पिञ्जरा तनुः यस्याः सा ताम् कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरतनुम्=

[द्वित्रिर्वाचयित्वा]—एदाइं ताइं मअणरसाअणाक्खराइं ।
(एतानि तानि मदनरसायनाक्षराणि ।)

विचक्खणा—दुदीओ उण मए प्पिअसहीए अवत्थाणिवेदओ कदुअ सिलोओ लिहिदो एत्थ, तं वाचेदु महाराओ । (द्वितीयः पुनर्मया प्रियसख्या अवस्थानिवेदकः कृत्वा श्लोको लिखितोऽत्र, तं वाचयतु महाराजः ।)

राजा—[वाचयति]—

सह दिवसणिसाइं दीहरा सासदंडा
सह मणिवलएहिं वाहधारा गलंति ।
सुहअ ! तुअ विओए तेअ उव्वेअणीए
सह अ तणुलदाए दुब्बला जीविदासा ॥ ९ ॥

(सह दिवसनिशाभ्यां दीर्घाः श्वासदण्डाः

अन्वयः—हे सुभग तव वियोगे उद्वेगिन्याः तस्याः दिवसनिशाभ्यां सह

(दो तीन बार पढ़कर) यह शब्द तो काम के वेग को शान्त करने वाली ओषधि के समान हैं ।

विचक्षणा—अपनी प्रिय सहेली की अवस्था बताने वाला एक दूसरा श्लोक मैंने लिखा है । उसे महाराज पढ़ें ।

राजा—पढ़ता है :—

हे प्रिय ! तुम्हारे वियोग में कर्पूरमञ्जरी के लिए दिन रात बड़े लम्बे हो गए हैं

कुङ्कुमरागपिङ्गलाङ्गाम् । एकत्र तिष्ठति—इति एकस्थः—एकपूर्वक— √स्था धातु से अ (क) प्रत्यय । विषय=गोचर । शिक्षकम्=सिखाने वाला । √शिक्ष् धातु से अक (वुञ्) प्रत्यय ।

टिप्पणी—मदनस्य रसायनानि मदनरसायनानि तानि एव अक्षराणि=मदनरसायनाक्षराणि=मन्मथोपचारवाक्यानि ।

टिप्पणी—निवेदयतीति निवेदकः, अवस्थायाः निवेदकः अवस्थानिवेदकः=हाल बताने वाला=नि √वेदि+अक् ।

सह मणिवलयैर्बाष्पधारा गलन्ति ।

सुभग ! तव वियोगे तस्या उद्वेगिन्या

सह च तनुलतया दुर्बला जीविताशा ॥ ६ ॥)

विचक्षणा—एत्थ ज्जेब्व एदाए अवत्थाए मह ज्जेट्ठबहिणिआए सुलक्खणाए उग्गाविआए भविअ सिलोओ किदो, तं महाराओ सुणादु । (इहैव एतस्या अवस्थाया मम ज्येष्ठभगिन्या सुलक्षणया उद्गारिण्या भूत्वा श्लोकः कृतः, तं महाराजः शृणोतु ।) [पठति]—

श्वासदण्डाः दीर्घाः, वाष्पधाराः मणिवलयैः सह गलन्ति, जीविताशा च तनुलतया सह दुर्बला ।

व्याख्या—हे सुभग ! वल्लभ ! तव वियोगे विरहे तस्याः कर्पूरमञ्जर्याः दिवसनिशे आयते सञ्जाते कथमपि न अतिवाह्येते, एवमेव तस्याः श्वासाः अपि दीर्घाः सञ्जाताः, सा दीर्घमुच्छ्वसितीति भावः । कार्श्यात् तस्याः मणिवलयाः अधः पतन्ति, एवमेव तस्याः अश्रूण्यपि पतन्ति । तव वियोगे सा महत् उद्विग्ना, यथा तस्याः शरीरं दुर्बलं सञ्जातम् तथैव तस्याः जीवनस्याशापि क्षीणाऽस्ति, न सा चिरकालं जीविष्यतीति भावः ॥ ९ ॥

और वह लम्बी २ सांसे छोड़ती है । विरह में दुबले हो जाने से मणिकङ्कण उसके हाथ से गिर पड़ते हैं । इसी तरह उसकी आंखों से अश्रुधारा बहती रहती है । जैसे २ उसका शरीर दुबला होता जाता है, उसके जीवन की आशा भी घटती जाती है ॥ ९ ॥

विचक्षणा—इस पत्र पर ही मेरी बड़ी बहिन सुलक्षणा ने कर्पूरमञ्जरी की पूर्वोक्त अवस्था का निवेदन करते हुए एक श्लोक लिखा है, महाराज उसे भी सुनें । (श्लोक पढ़ती है)

टिप्पणी—मणिवलय = मणियों का कङ्कण । जीवितस्य आशा = जीविताशा = जीवन की आशा ॥ ८ ॥

णीसासा हारजट्ठोसरिसपसरणा चंदणं फोडकारी
चंदो देहस्स दाहो सुमरणसरिसी हाससोहा मुहम्मि ।
अंगाणं पंडभाओ दिवससिकलाकोमलो किं च तीए
णिच्चं बाप्पप्पबाहो तुह सुहअ ! किदे होंति कुल्लाहिंतुल्ला ॥१०॥

(निःश्वासा हारयष्टिसदृशप्रसरणाश्चन्दनः स्फोटकारी
चन्द्रो देहस्य दाहः स्मरणसदृशी हासशोभा मुखेऽपि ।
अङ्गानां पाण्डुभावो दिवसशशिकलाकोमलः किञ्च तस्या
नित्यं वाष्पप्रवाहास्तव सुभग ! कृते भवन्ति कुल्याभिस्तुल्याः ॥१०॥)

अन्वयः—हे सुभग ! तव कृते तस्याः निःश्वासाः हारयष्टिसदृशप्रसरणाः, चन्दनः स्फोटकारी, चन्द्रः देहस्य दाहः, मुखे अपि स्मरणसदृशी हासशोभा, अङ्गानां पाण्डुभावः दिवसशशिकलाकोमलः किञ्च बाष्पप्रवाहाः नित्यं कुल्याभिः तुल्याः भवन्ति ।

व्याख्या—हे सुभग ! तव कृते निमित्तं तस्याः कर्पूरमञ्जर्याः निःश्वासाः हारयष्टेः हारलतायाः सदृशं विस्तृताः दीर्घाः निर्गच्छन्ति, चन्दनरसः स्फोटकारी अङ्गे तापमुत्पादयति, चन्द्रोऽपि देहं सन्तापयति, यदा सा हसति, तदा 'अहं प्रिये, युष्माभिः स्मर्तव्याऽहमित्येवं तन्मुखं स्मारयति, तस्याः अङ्गानि विरहवेदनया निष्प्रभाणि सञ्जातानि, दिवसकालीनचन्द्रकला इव कोमलत्वं तेषाम्, सा इत्थं नित्यमश्रूणि मुञ्चति यथा काचित् कृत्रिमसरित् प्रवहति ॥ १० ॥

हे सौभाग्यशालिन् ! तुम्हारे कारण कर्पूरमञ्जरी बड़ी गहरी सांसे लेती है (उसके सांसे हारलता के समान विस्तार वाली हैं), चन्दन का रस उसके शरीर पर जलन उत्पन्न करता है, चन्द्रमा उसकी देह को जलाता है, उसके मुख पर मुस्कराहट भी 'मैं मर रही हूँ, मेरी याद रखना, इस तरह का स्मरण सा कराती है, उसका शरीर पीला पड़ गया है जैसे कि दिन के समय चन्द्रमा फीका सा लगता है, उसके निरन्तर बहते हुए आंसू किसी कृत्रिम नदी की तरह लगते हैं ॥ १० ॥

टिप्पणी—हारयष्टेः सदृशं प्रसरणं येषां ते—हारयष्टिसदृशप्रसरणाः—हारलता समान-विस्तृताः । स्फोटं कर्तुं शीलमस्य-इति स्फोटकारी-स्फोटपूर्वक √कृ धातु से इन् (णिनि)

राजा—[निःश्वस्य]—किं भणीअदि, सुकइत्तणे तुह ज्जेट्ठ-बहिणिआ क्खु एसा। (किं भण्यते, सुकवित्वे तव ज्येष्ठभगिनिका खलु एषा।)

विदूषकः—एसा विअक्खणा महीदलसरस्सई। एदाए ज्जेट्ठबहिणिआ तिहुअणसरस्सई। ता एदाहिं समं प्पडिप्पद्धां ण करिस्सं। किं उण प्पिअवअस्स! पुरदो मअणावत्थं अत्तणो उचिदेहिं अक्खरेहिं णिवेदेमि। (एषा विचक्षणा महीतलसरस्वती ? एतस्या ज्येष्ठभगिनिका त्रिभुवनसरस्वती। तदेताभ्यां समं प्रतिस्पर्द्धां न करिष्यामि। किं पुनः प्रियवयस्य ! पुरतो मदनावस्थामात्मन उचितैः अक्षरैर्निवेदयामि।)

राजा—पढ, एदं पि सुणीअदि। (पठ, एतदपि श्रूयते।)

विदूषकः—

परं जोण्हा उण्हा गरलसरिसो चंदणरसो
खदक्खारो हारो रअणिपवणा देहतवणा।

राजा—(गहरी सांस लेकर) क्या कहा जाय, तुम्हारी बड़ी बहिन तो बड़ी अच्छी कविता करती है।

विदूषक—यह विचक्षणा तो केवल पृथ्वीतल की सरस्वती है। इसकी बड़ी बहिन तो तीनों लोकों की सरस्वती है। इन दोनों से मैं प्रतिस्पर्द्धा नहीं करूंगा। हे प्रिय मित्र ! क्यों न तुम्हारी विरहावस्था कुछ उचित शब्दों द्वारा तुम्हारे सामने ही निवेदन करूँ।

राजा—पढ़ो, यह भी सुनते हैं।

विदूषक—जब से कमल के समान सुन्दर मुखवाली उस सुनयना को देखा है,

---

प्रत्यय। कुल्या=कृत्रिमनदी, नाली। दिवसे या शशिकला तद्वत् कोमलः=दिवसशशिकलाकोमलः॥ १०॥

मुणाली बाणाली जलदि अ जलाद्दा तणुलदा
वरिट्ठा जं दिट्ठा कमलवदणा सा सुणअणा ॥ ११ ॥
(परं ज्योत्स्ना उष्णा गरलसदृशश्चन्दनरसः
क्षतक्षारो हारो रजनिपवना देहतपनाः ।
मृणाली बाणाली ज्वलति च जलार्द्रा तनुलता
वरिष्ठा यत् दृष्टा कमलवदना सा सुनयना ॥ ११ ॥)

राजा—वअस्स ! तुमं पि थोएण चंदणरसेण समालहिस्ससि; ता कहेहि तग्गदं किंपि वुत्तंतं । अत्र अंतेउरं णइअ देवीए

अन्वयः—यत् सा कमलवदना वरिष्ठा सुनयना दृष्टा, परम् ज्योत्स्ना उष्णा, चन्दनरसः गरलसदृशः, हारः क्षतक्षारः, रजनिपवनाः देहतपनाः, मृणाली बाणाली, जलार्द्रा तनुलता ज्वलति च ।

व्याख्या—यत् यस्मात् कालात् सा कमलवदना अरविन्दानना वरिष्ठा सर्वाङ्गसुन्दरी सुनयना दृष्टा, ततः परम्, ज्योत्स्ना चन्द्रिका उष्णा उत्तापकरी सञ्जाता, चन्दनरसः चन्दनलेपः गरलसदृशः विषमिव कटुरित्यर्थः, हारः मुक्तामाला क्षते व्रणे क्षारः लवणमिव वेदनां वर्धयति, रजनिपवनाः शीतलाः निशावाताः अपि देहं तपन्तीत्यर्थः, मृणाली मृणाललता बाणावली इव विध्यति, जलार्द्रा जलेन सिच्यमाना अपि तनुलता अङ्गयष्टिः ज्वलति ॥ ११ ॥

तब से चांदनी गर्म मालूम पड़ती है, चन्दन का लेप विष की तरह कटु प्रतीत होता है, हार घाव पर नमक की तरह और कष्ट को बढ़ाता है, रात्रि की ठण्डी २ हवायें भी शरीर को झुलसाती हैं, कमल के नाल बाणों की तरह लगते हैं, स्नान करने पर भी शरीर जलता ही रहता है ॥ ११ ॥

राजा—वयस्य ! तुम्हें भी थोड़ा सा चन्दनरस लगेगा । (तुम्हें भी कुछ पुर-

टिप्पणी—कमलस्येव वदनं यस्याः सा कमलवदना (बहु०) । वरिष्ठ = अतिशयेन उरुः—वरिष्ठ—इष्ठप्रत्यय—उरु शब्द को 'वर्' आदेश । देहं तपन्ति—इति देहतपनाः = देह— √तप् + यु (अन) । (कृदन्त) । इस श्लोक में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक अर्थालङ्कार हैं, अनुप्रास शब्दालङ्कार है ॥ ११ ॥

किं किदं तीस ? (वयस्य ! त्वमपि स्तोकेन चन्दनरसेन समालभ्यसे; तत् कथय तद्गतं कमपि वृत्तान्तम् । अथान्तःपुरं नीत्वा देव्या किं कृतं तस्याः ?)

विदूषकः—विअक्खणे ! किं किदं, कहेहि । (विचक्षणे ! किं कृतं, कथय)

विचक्षणा—देव ! मंडिदा टिक्किदा भूसिदा तोसिदा अ । (देव ! मण्डिता तिलकिता भूषिता तोषिता च)

राजा—कधं विअ ? (कथमिव ?)

विचक्षणा—

घणमुव्वट्टिदमंगं कुंकुमरसपंकपिंजरं तिस्सा ।
(घनमुद्वर्तितमङ्गं कुङ्कुमरसपङ्कपिञ्जरं तस्याः ।)

राजा—

रोसाअणं किदं ता कंचणमअबालिआरूवम् ॥ १२ ॥
(उज्ज्वलीकृतं तत् काञ्चनमयबालिकारूपम् ॥ १२ ॥)

स्कारमिलेगा)। कर्पूरमञ्जरी का कुछ हाल तो बताओ। उसको अन्तःपुर में लेजाकर महारानी ने क्या किया ?

विदूषक—विचक्षणे ! क्या किया, कहो तो।

विचक्षणा—देव ! महारानीने उसे अलंकरण पहिनाया, तिलक लगाया, सुन्दर वस्त्रों से सजाया और प्रसन्न किया।

राजा—कैसे ?

विचक्षणा—उसके शरीर पर खूब उबटन किया और कुङ्कुमरस का लेप किया।

राजा—बलिका के सोने जैसे रूप को और भी उज्ज्वल कर दिया ? ॥ १२ ॥

टिप्पणी—उद्वर्तितम् = उबटन किया—उत् — √वृत + इ + त = क्त प्रत्यय। कुङ्कुमरसस्य पङ्केन पिञ्जरम् = कुङ्कुमरसपङ्कपिञ्जरम् = कुङ्कुमरसलेपरञ्जितम्। काञ्चनस्य इयं = काञ्चनमयी, सा चासौ बालिका तस्याः रूपम् = काञ्चनमयबालिकारूपम् ॥ १२ ॥

विचक्खणा—

मरगअमंजीरजुअं चरणे से लंभिआ बअस्साहिं ।

(मरकतमञ्जीरयुगं चरणावस्या लम्भितौ वयस्याभिः ।)

राजा—

भमिदमधोमुहपंकअजुअलं ता भमरमालाए ॥ १३ ॥

(भ्रमितमधोमुखपङ्कजयुगलं तत् भ्रमरमालया ॥ १३ ॥)

विचक्खणा—

राअसुअपिच्छणीलं पट्टंसुअजुअलअं णिवसिदा सा ।

(राजशुकपिच्छनीलं पट्टांशुकयुगलकं निवसिता सा ।)

राजा—

कअलीकंदलिआ ता खरपवणविलोलिअदलग्गा ॥ १४ ॥

(कदलीकन्दली तत् खरपवनविलोलितदलाग्रा ॥ १४ ॥)

विचक्खणा—

तीए णिदंबफलए णिवेसिआ पउराअमणिकंची ।

विचक्षणा—सखियों ने उसके चरणों में पन्नों से बनी हुई पायजेबें पहिनाईं ।

राजा—तब तो भौंरों की पंक्ति ने नीचे मुखवाले दो कमलों को जैसे घेर लिया हो।

विचक्षणा—फिर उसको तोते के पंख की तरह हरे रंग के वस्त्र पहिनाये ।

राजा—तब तो वह तेज हवा से उड़ते हुए पत्तों वाले केले के वृक्ष की तरह लगी होगी ॥ १४ ॥

विचक्षणा तब उसके नितम्बों पर पद्मरागमणि से जड़ी हुई करधनी पहिनाई ।

टिप्पणी—लम्भितौ = √लम्भि + त । ण्यन्त लभ् से क्तप्रत्यय । भ्रमितम् = √भ्रम् + इ + त ॥ १३ ॥

टिप्पणी—पिच्छ = पंख निवसिता = परिधापिता, पहिनाया । खरश्चासौ पवनः = खरपवनः, तेन विलोलितं दलाग्रं यस्याः सा खरपवनविलोलितदलाग्रा = तीव्रवायुसञ्चलित-पत्राग्रा । कदलीकन्दली = रम्भातरुः—केले का वृक्ष ॥ १४ ॥

(तस्या नितम्बफलके निवेशिता पद्मरागमणिकाञ्ची ।)

राजा—

कंचणसेलसिलाए ता बरिही कारिओ णिच्चं ॥ १५ ॥

(काञ्चनशैलशिलायां तद्बर्ही कारितो नृत्यम् ॥ १५ ॥

विचक्षणा—

दिण्णा बलआबलिओ करकमलपउट्ठणालजुअलम्मि ।

(दत्ता वलयावल्यः करकमलप्रकोष्ठनालयुगे ।)

राजा—

ता भण कधं ण सोहइ विपरीअं मअणतूणीरम् ? ॥ १६ ॥

(तद्भण कथं न शोभते विपरीतं मदनतूणीरम् ? ॥ १६ ॥)

विचक्षणा—

कंठम्मि तीअ ठविदो छम्मासिअमोत्तिआण बरहारो ।

(कण्ठे तस्याः स्थापितः षाण्मासिकमौक्तिकानां बरहारः ।)

राजा—तब तो सोने के पर्वत पर जैसे मोर को नचाया ॥ १५ ॥

विचक्षणा—करकमलों के प्रकोष्ठ भाग में कङ्कण पहिनाए ।

राजा—तब तो उसके हाथ उलटे हुए कामदेव के तरकस के समान क्यों न अच्छे लगते होंगे ? कहो तो सही ॥ १६ ॥

विचक्षणा—पक्के मोतियों का सुन्दर हार उसके गले में पहिनाया ।

टिप्पणी—पद्मरागमणिकांची=पद्मरागमणीनां काञ्ची, लाल जड़ी हुई करधनी । बर्हीं=मोर । कारितः= √कारि+तः । कराया ॥ १५ ॥

टिप्पणी—करकमलयोः प्रकोष्ठ एव नालयुगं तस्मिन् करकमलप्रकोष्ठनालयुगे=कर-कमलों के प्रकोष्ठरूपी नालों में—कलाईयों में । मदनतूणीरम्=कामदेव का तरकस ॥ १६ ॥

टिप्पणी—षाण्मासिकमौक्तिकानाम्=छः महीनों के अन्दर तैयार हुए मोतियों का—स्वाती नक्षत्र में आकाश से सीप में पड़ा हुआ जल मोती बन जाता है । यदि यह जल

राजा—

सेवइ ता पंतीहिं मुहचंदं तारआणिअरो ॥ १७ ॥

(सेवते तत् पङ्क्तिभिर्मुखचन्द्रं तारकानिकरः ॥ १७ ॥)

विचक्खणा—

उभएसु वि सुवणेसुं णिवेसिदं रअणकुंडलजुअं से ।

(उभयोरपि श्रवणयोर्निवेशितं रत्नकुण्डलयुगं तस्याः ।)

राजा—

ता वदणम्महरहो दोहिं वि चक्केहिं चंकमिदो ॥ १८ ॥

(तद्वदनमन्मथरथो द्वाभ्यामिव चक्राभ्यां चङ्क्रमितः ॥१८॥)

विचक्खणा—

जच्चंजणजणिदपसाहणाइं जादाइं तीअ णअणाइं ।

(जात्याञ्जनजनितप्रसाधने जाते तस्या नयने ।)

राजा—

उप्पुंखिअ णवकुवलअसिलीमुहे पंचबाणस्स ॥ १९ ॥

राजा—**तब तो मानों तारागणों ने घेरा बनाकर चन्द्रमा को घेर लिया ॥ १७ ॥**

विचक्षणा—**उसके दोनों कानों में रत्नों से जड़े हुए कुण्डल पहिनाये ।**

राजा—**तब तो उसका मुखरूपी कामदेव का रथ दोनों पहियों पर चला होगा (अर्थात् वह बड़ी सुन्दर लगी होगी) ॥ १८ ॥**

विचक्षणा—**उसके नेत्रों में बढ़िया काजल लगाया ।**

राजा—**कामदेव के नीलकमल रूपी बाण जैसे सजा दिए गए हों ॥ १९ ॥**

छः महीने तक सीप में पड़ा रहता है तो बहुत अच्छे मोती के रूप में बदल जाता है । तारकानिकरः = नक्षत्रों का समूह ॥ १७ ॥

टिप्पणी—रत्नकुण्डलयुगम् = रत्नजड़े हुए कुण्डलों का जोड़ा । **चङ्क्रमितः**—√चङ्क्रम् (यङ्लुगन्त) + इ + तः । (क्त प्रत्यय) । वदनमेव मन्मथस्य रथः = वदनमन्मथरथः = मुखरूपी कामदेव का रथ ॥ १८ ॥

टिप्पणी—जात्यं च तदञ्जनं = जात्याञ्जनम् तेन जनितं प्रसाधनं ययोस्ते जात्याञ्जन-

(उत्पुङ्खितौ नवकुवलयशिलीमुखौ पञ्चबाणस्य ॥ १९ ॥)

विचक्षणा—

कुडिलालआणं माला ललाडफलअग्गसंगिणी रइदा ॥

(कुटिलालकानां माला ललाटफलकाग्रसङ्गिनी रचिता ।)

राजा—

ता ससिबिंबस्सोवरि वट्टइ मज्झम्मि किसणसारंगी ॥२०॥

(तच्छशिबिम्बस्योपरि वर्त्तते मध्ये कृष्णसारङ्गः ॥ २० ॥)

विचक्षणा—

घणसारतारणअणाइ गूढकुसुमोच्चओ चिउरभारो ।

(घनसारतारनयनाया गूढकुसुमोच्चयश्चिकुरभारः ।)

राजा—

ससिराहुमल्लजुज्झं विअ दंसिअमेणणअणाए ॥ २१ ॥

(शशिराहुमल्लयुद्धमिव दर्शितमेणनयनायाम् ॥ २१ ॥)

विचक्षणा—उसके ललाट पर घुंघराले बालों को सजाया ।
राजा—तब तो उसके मुखरूपी चन्द्रबिम्ब के ऊपर कृष्ण मृग सा घूमता होगा ॥
विचक्षणा—फिर उस सुन्दरनयनों वाली के केशों में फूलों को सजाया ।
राजा—उस मृगनयनी में चन्द्रमा और राहु का जैसे मल्लयुद्ध दिखाया हो ॥२१॥

जनितप्रसाधने=उत्कृष्टकज्जलालंकृते—बढिया काजल लगे हुए । उत्पुंखितौ=सजाए । नवकुवलये एव शिलीमुखौ=नवकुवलयशिलीमुखौ—नए कमल जैसे बाण ॥ १९ ॥

टिप्पणी—कुटिलालकानाम् घुंघराले बालों का । ललाटफलकस्य अग्रसङ्गः अस्ति यस्याः सा ललाटफलकाग्रसंगिनी—मस्तक पर स्थित । कृष्णसारङ्गः=काला हरिण ॥ २० ॥

टिप्पणी—चिकुरभारः=बालों का बांधना । गूढः कुसुमानाम् उच्चयः यस्मिन् सः= गूढकुसुमोच्चयः=गुम्फितपुष्पनिकरः, जिसमें फूल गूंथे गए हैं । एणस्य इव नयने यस्याः सा, तस्याम्=एणनयनायाम्=मृगाक्ष्याम्, हिरन जैसे नयन वाली ॥ २१ ॥

विचक्षणा—

इअ देवीअ जहिच्छं प्पसाहणेहिं प्पसाहिदा कुमरी ।

(इति देव्या यथेच्छं प्रसाधनैः प्रसाधिता कुमारी ।)

राजा—

ता केलिकाणणमही विहूसिआ सुरहिलच्छीए ॥ २२ ॥

(तत् केलिकाननमही विभूषिता सुरभिलक्ष्म्या ॥ २२ ॥)

विदूषकः—देव ! एदं परमत्थं विण्णवीअदि ।—(देव ! एतत् परमार्थं विज्ञाप्यते)—

जेस्सा दिट्ठी तरलधवला कज्जलं तिस्स जोग्गं ?
जा वित्थिण्णत्थणकलसिणी सोहदे तिस्स हारो ? ।
चक्काआरे रमणफलहे कोवि कंचीमरट्टो
जिस्सा तिस्सा उण वि भणिमो भूसणं दूसणं अ ॥२३॥

(यस्या दृष्टिस्तरलधवला कज्जलं तस्या योग्यम् ?

अन्वयः—यस्याः दृष्टिः तरलधवला, (किम्) कज्जलं तस्याः योग्यम् ? । या विस्तीर्णस्तनकलशिनी, (किम्) तस्याः हारः शोभते ? । यस्याः चक्राकारे रमणफलके कोऽपि काञ्च्याडम्बरः, तस्याः पुनरपि भूषणं दूषणं च भणामः ।

विचक्षणा—इस तरह महारानी ने अपनी इच्छा के अनुसार कुमारी कर्पूरमञ्जरी को विभिन्न अलङ्कारों से सजाया ।

राजा—मानों वसन्तशोभा ने क्रीडोद्यान भूमि को सजा दिया हो ॥ २२ ॥

विदूषक—श्रीमन् ! सच बात तो यह है :—

जिसके नेत्र चञ्चल और चमकते हुए हैं उसे काजल की क्या आवश्यकता ?

टिप्पणी—इच्छामनतिक्रम्य = यथेच्छम् (अव्ययीभाव) इच्छा के अनुसार । प्रसाधन = श्रृङ्गार, सजाना ॥ २२ ॥

टिप्पणी—तरला च धवला च = तरलधवला = चञ्चलोज्ज्वला । विस्तीर्णौ च तौ स्तनौ =

या विस्तीर्णस्तनकलशिनी शोभते तस्या हारः ? ।
चक्राकारे रमणफलके कोऽपि काञ्च्याडम्बरो
यस्यास्तस्याः पुनरपि भणामो भूषणं दूषणञ्च ॥ २३ ॥)

राजा—[पुनस्तामनुसन्धाय]—

तिबलिबलिअणाहीबाहुमूलेसु लग्गं
थणकलसणिदंबाडंबरेसूस्ससंतं ।
जलणिबिडमिमीए सिलक्खणं ण्हाणवत्तं
पिसुणदि तणुजट्ठीचंगिमं लंगिमं अ ॥ २४ ॥

(त्रिवलिवलितनाभीबाहुमूलेषु लग्नं
स्तनकलसनितम्बाडम्बरेषूच्छ्वसन्तम् ।

व्याख्या—यस्याः नेत्रे चञ्चले धवले च स्तः, तस्याः न कज्जलस्य कापि आवश्यकता । यस्याः स्तनौ कलशाविव विस्तीर्णौ, किमस्ति तस्याः हारस्य काप्यावश्यकता, नैवेत्यर्थः । यस्याः जघनस्थलम् चक्राकारमस्ति, तस्याः रशनाकलापः कामपि अनिर्वचनीयां शोभामुत्पादयति । तस्याः पुनरपि अन्यत् भूषणं दूषणमेव । विनैव भूषणं सा नैसर्गिकीं शोभां धत्ते ॥ २३ ॥

अन्वयः—त्रिवलिवलितनाभीबाहूमूलेषु लग्नम्, स्तनकलसनितम्बाडम्बरेषु

जिसके स्तन कलशों के समान उठे हुए हैं, उसे हार की क्या आवश्यकता ? चक्र के समान गोलाकार जिसकी जङ्घाओं पर करधनी से एक अनोखी शोभा उत्पन्न हो जाती है, उसके लिए भूषणों की क्या आवश्यकता ? वे तो उसके लिए दूषण ही हैं—अर्थात् निरर्थक हैं ॥ २३ ॥

राजा—(फिर उसका स्मरण कर) :—

तीन रेखाओं से युक्त उसकी नाभि तथा कन्धों पर चिपके हुए, कलसों के

विस्तीर्णस्तनौ कलशाविव यस्याः अस्ति = विस्तीर्णस्तनकलशिनी (मत्वर्थीय इन् प्रत्यय) । रमण = जङ्घा । दूषणम् = दोष । भूषणम् = सजावट । भणामः = कहते हैं— √भण् + अ + मः = भणामः (भ्वादि लट्) ॥ २३ ॥

टिप्पणी—तिस्रश्च ताः वलयः = त्रिवलयस्ताभिः वलिता = त्रिवलिवलिता—सा चासौ

जलनिविडमेतस्याः श्लक्ष्णं स्नानवस्त्रं
पिशुनयति तनुयष्टिचङ्गिमानं तारुण्यञ्च ॥ २४ ॥)

विदूषकः—[सक्रोधमिव] । भो ! मए सव्वालंकारसहिदा वण्णिदा । तुमं उण जलविलुत्तप्पसाहणं ज्जेव्व सुमरसि, ता किं ण सुदं देवेण ? ।—(भोः ! मया सर्वालङ्कारसहिता वर्णिता । त्वं पुनर्जलविलुप्तप्रसाधनामेव स्मरसि, तत् किं न श्रुतं देवेन ?)—

उच्छ्लसत्, जलनिविडम् एतस्याः श्लक्ष्णम् स्नानवस्त्रम् तनुयष्टिचङ्गिमानम् तारुण्यम् च पिशुनयति ।

व्याख्या—त्रिवलीभिः तिसृभिः रेखाभिः वलितायां युक्तायां नाभ्याम्, बाहुमूलयोः च लग्नं सम्पृक्तं, कलसोपमयोः स्तनयोः, नितम्बभागे चोर्ध्वम् उच्छ्लसत्, जलनिविडम् जलसिक्तम्, अस्याः कान्तायाः कर्पूरमञ्जर्याः श्लक्ष्णं चिक्कणं कोमलं च स्नानवस्त्रं स्नानपरिधानम् शरीरसौन्दर्यं नवं यौवनं च पिशुनयति सूचयति ॥ कर्पूरमञ्जर्याः शरीरे स्नानपरिधानमतीव सूक्ष्मं चिक्कणं चासीत्, अतः स्नानानन्तरं तस्याः नाभिः, बाहुमूले, कलसोपमौ उरोजौ चक्राकारौ नितम्बौ च स्पष्टं व्यक्तावास्ताम्, तेन च तस्याः सौन्दर्यं यौवनं च न कस्याप्यगूढमभवत् ॥ २४ ॥

समान ऊंचे उठे हुए स्तनों तथा नितम्बों पर ऊपर को उठते हुए जल से भींगे उसके महीन कपड़े नहाने के समय उसके शरीर की सुन्दरता तथा जवानी को प्रकट करते हैं ॥ २४ ॥

विदूषक—(क्रुद्ध सा होकर) मैंने तो उसका सब अलङ्कारों के साथ वर्णन किया।

नाभी = त्रिवलिवलितनाभी—त्रिवलिवलितनाभी बाहुमूले च = त्रिवलिवलितनाभीबाहूमूलानि तेषु = त्रिवलिवलितनाभीवाहुमूलेषु = त्रिवलियुक्तनाभिस्कन्धेषु । लग्नम् = संपृक्तम् । स्तनावेव कलसौ स्तनकलसौ—स्तनकलशौ नितम्बाडम्बरश्च तेषु स्तनकलसनितम्बाडम्बरेषु = कलस के समान ऊंचे स्तन और खूब चौड़े नितम्बों पर । चङ्गस्य भावः चङ्गिमा, तनुयष्टेः चङ्गिमा तनुयष्टिचङ्गिमा तं तनुयष्टिचङ्गिमानम् = अङ्गसौन्दर्यम्—चङ्गशब्द से भावार्थक इमनिच् प्रत्यय । तरुणस्य भावः तारुण्यम्—तरुण शब्द से भावार्थक ष्यञ् (य) प्रत्यय ॥२४॥

टिप्पणी—क्रोधेन सह = सक्रोधम् (अव्ययी भाव), सह को स आदेश । विभक्ति को

णिसग्गचंगस्स वि माणुसस्स
सोहा समुम्मीलदि भूषणेहिं ।
मणीणं जच्चाणं वि कंचणेहिं
विहूसणे सज्जदि काबि लच्छी ॥ २५ ॥

(निसर्गचङ्गस्यापि मानुषस्य
शोभा समुन्मीलति भूषणैः ।
मणीनां जात्यानामपि काञ्चनै-
र्विभूषणे सज्जति काऽपि लक्ष्मीः २५)

राजा—
मुद्धाणं णाम हिअआइं हरंति हंत !
णेवच्छकप्पणगुणेण णिदंबिणीओ ।

अन्वयः—निसर्गचङ्गस्य अपि मानुषस्य शोभा भूषणैः समुन्मीलति । जात्यानाम् मणीनाम् अपि काञ्चनैः विभूषणे का अपि लक्ष्मीः सज्जति ।

व्याख्या—स्वभावतः सुन्दरस्यापि पुरुषस्य शोभा आभूषणानां धारणेन अधिकं वर्धते । यथा उत्कृष्टरत्नानि सुवर्णसंयोगेन कामप्यनिर्वचनीयां शोभां गृह्णन्ति, एवमेव निसर्गसुन्दराः मनुष्याः अलङ्कारपरिधानेन अधिकं शोभन्ते ॥ २५ ॥

और आपको वह केवल उस अवस्था में ही याद आती है जब कि स्नान करने से उसके सारे प्रसाधन बिगड़ गए रहते हैं। क्या आपने यह नहीं सुना है कि :—

स्वभाव से ही सुन्दर मनुष्य आभूषणों से और अच्छे लगते हैं, जैसे कि उत्तम रत्न सोने के साथ और भी शोभायमान होते हैं ॥ २५ ॥

राजा—बड़े दुःख की बात है कि सुन्दर नितम्बों वाली स्त्रियां अपनी अनोखी

अम् आदेश । सर्वे च ते अलङ्काराः, सर्वालङ्काराः तैः सहिता = सर्वालङ्कारसहिता = सर्वालङ्करणशोभिता । जलेन विलुप्तं प्रसाधनं यस्याः ताम् = जलविलुप्तप्रसाधनाम् = जलावमुक्ताकल्पाम्—जल से जिसकी सजावट नष्ट हो गई है ।

टिप्पणी—चंग = सुन्दर । समुन्मीलति = खिल उठती है । जात्य = उत्तम । सज्जति = प्राप्त होती है ॥ २५ ॥

छेआ उणो प्पकिदिचंगिमभावणिज्जा
दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए ॥ २६ ॥

(मुग्धानां नाम हृदयानि हरन्ति हन्त !
नेपथ्यकल्पनगुणेन नितम्बिन्यः ।
छेकाः पुनः प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः
द्राक्षारसो न मधुरीयति शर्करया ॥ २६ ॥)

अन्वयः—हन्त ! नितम्बिन्यः नेपथ्यकल्पनगुणेन मुग्धानां हृदयानि हरन्ति नाम । छेकाः पुनः प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः, द्राक्षारसः शर्करया न मधुरीयति ।

व्याख्या—अस्ति अयं महान् खेदः यत् नितम्बिन्यः सुन्दरनितम्बाः कामिन्यः नेपथ्यकल्पनगुणेन सुन्दरवेषरचनया मुग्धानां, अविदग्धानाम् हृदयानि मनांसि हरन्ति आकर्षन्ति । ये पुनः छेकाः विदग्धाः, ते प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः स्वाभाविकसौन्दर्येण आकृष्टाः भवन्ति । यः स्वभावसुन्दरः, तस्य न कस्यापि वेष-रचनस्यावश्यकता किं द्राक्षारसः माधुर्यार्थम् शर्करामपेक्षते, नहि, स तु स्वभावमधुर इति भावः ॥ २६ ॥

वेषरचना के द्वारा मुग्धों (मूर्खों) का मन अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं । जो अनुभवी और चतुर हैं, वे स्वाभाविक सौन्दर्य पर ही मुग्ध होते हैं । क्या मिठास के लिए द्राक्षारस को शक्कर की आवश्यकता पड़ती है ? वह तो स्वतः मीठा होता है । इसी तरह स्वाभाविक सुन्दर व्यक्ति को बाह्य सजावट की आवश्यकता नहीं है ॥

टिप्पणी—**हन्त**=खेद । प्रशस्तौ नितम्बौ यस्याः सा नितम्बिनी=सुन्दर नितम्बों वाली—प्रशंसा में मत्वर्थीय इन् प्रत्यय—स्त्रीत्व विवक्षा में ई प्रत्यय । नेपथ्य=आभूषण, वस्त्रों आदि से उत्पन्न शोभा । मुग्धः=सुन्दर, भोलेभाले । छेकः=चतुर, विदग्धा प्रकृत्या यः चङ्गिमा=प्रकृतिचङ्गिमा, तेन भावनीयाः=प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः=नैसर्गिक-सौन्दर्यहरणीयाः—स्वाभाविक सौन्दर्य से आकृष्ट होनेवाले । मधुरमिच्छति=मधुरीयति—मधुर शब्द से नामधातु य (क्यच्) प्रत्यय । अ को ई—मधुरीयति=मिठास चाहता है ॥ २६ ॥

विचक्खणा—जधा देवेणादिट्ठं (यथा देवेनादिष्टम्)—

थोआणं थणआणं कण्णकलिआलंघोणं अच्छोणं बा
भूचंदस्य मुहस्स कंतिसरिआसोत्तस्स गत्तस्स अ ।
को णेवच्छकलाहिं कीरदि गुणा ? जं तं वि मव्वं प्पिअं
संजुत्तं सुणु तत्थ कारणमिणं रूढोअ का खंडणा ? ॥ २७ ॥

(स्थूलानां स्तनानां कर्णकलिकालङ्घिनोरक्ष्णोर्वा
भूचन्द्रस्य मुखस्य कान्तिसरित्स्रोतसो गात्रस्य च ।
को नेपथ्यकलाभिः क्रियते गुणो यत्तदपि सर्वं प्रियं
संयुक्तं शृणु तत्र कारणमिदं रूढेः का खण्डना ॥ २७ ॥)

अन्वयः—स्थूलानाम् स्तनानाम् कर्णकलिकालङ्घिनोः अक्ष्णोः वा भूचन्द्रस्य मुखस्य कान्तिसरित्स्रोतसः गात्रस्य च नेपथ्यकलाभिः कः गुणः क्रियते ? तत्र इदम् कारणम् शृणु यत् अपि सर्वम् प्रियम् संयुक्तम् तत् रूढेः का खण्डना ? ।

व्याख्या—स्थूलानाम् वर्तुलानाम् स्तनानाम् उरोजानाम्, कर्णकलिकालङ्घिनोः कर्णपर्यन्तमायतयोः अक्ष्णोः नयनयोर्वा, चन्द्रोपमस्य मुखस्य, अत्यन्तं कान्तिमतः शरीरस्य च नेपथ्यकलाभिः विविधाभिः वेशरचनाभिः को गुणः किं वैशिष्ट्यं क्रियते सम्पाद्यते ? प्रत्युत तैस्तैः प्रसाधनैः प्राकृतिकसौन्दर्यं परिच्छाद्यते एव । तथापि

विचक्षणा—जैसा कि महाराज ने आदेश दिया :—

उठे हुए स्तनों, बड़ी २ आंखों, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख और कान्तिमान् शरीर को विभिन्न प्रसाधनों से कोई लाभ नहीं होता है। (बल्कि ये चीजें सौन्दर्य को और बिगाड़ देती हैं) जैसे कि वस्त्रों से सुन्दर स्तन ढक जाता है, काजल से आखों के चारों ओर काले निशान बन जाते हैं, चेहरे का प्राकृतिक सौन्दर्य अङ्गराग से ढक जाता है तथा शरीर की सुन्दर बनावट वस्त्रों से ढक जाती है। फिर भी लोगों को यह अच्छे लगते हैं। उक्त कथन में कारण यही है कि जिस तरह रूढि

टिप्पणी—कर्णौ च ते कलिके=कर्णकलिके, तयोः लंघिनोः=कर्णकलिकालघिनोः= कर्णकोरकातिक्रामिणोः। भुवः चन्द्रः=भूचन्द्रस्तस्य=भूचन्द्रस्य। कान्तिरेव सरित्= कान्तिसरित, तस्याः स्त्रोतः, तस्य कान्तिसरित्स्रोतसः=कान्तिप्रवाहवहतः, कान्तिमत

राजा—(विदूषकमुद्दिश्य) सुप्पांजल कविंजल ! एस सिक्खावीअसि । ([1]सुप्राञ्जल कपिञ्जल ! एष शिक्ष्यसे ।)

किं कज्जं किত্তिमेण विरअणविहिणा ? सो णडीणं विडंबो
तं चंगं जं णिअंगं जणमणहरणं तेण सीमंतिणीओ ।
जस्सि सव्वांगसंगो सअलगुणगणो सो अदंभो अलंभो
तस्सिं णेच्छंति काले परमसुहअरे किं पि णेवच्छलच्छीं ॥२८॥

(किं कार्यं कृत्रिमेण विरचनविधिना स नटीनां विडंबः
तच्चङ्गं यन्निजांगं जनमनोहरणं तेन सीमन्तिन्यः ।

तत्तत् प्रसाधनं सर्वस्य प्रियं भवति । प्रसाधनानां गुणानुत्पादकत्वे इदमेव कारणं यत् यथा रूढिः योगाद् बलवती भवति तथा निसर्गसौन्दर्यं न कमप्यन्यं योगमपेक्षते ॥

अन्वयः—कृत्रिमेण विरचनविधिना किं कार्यम् ? स नटीनाम् विडम्बः (अस्ति) । यत् निजाङ्गम् जनमनोहरणम् तत् चङ्गम्, तेन सीमन्तिन्यः (भवन्ति)। यस्मिन् सकलगुणगणः सर्वाङ्गसङ्गः स अदम्भः अलभ्यः तस्मिन् परमसुखकरे काले (विदग्धाः) कामपि नेपथ्यलक्ष्मीम् न इच्छन्ति ।

व्याख्या—कृत्रिमेण बाह्येन विरचनविधिना अलङ्करणविधानेन किं कार्यम् प्रयोजनम्, न किमपीत्यर्थः, सः कृत्रिमविरचनविधिः नटीनां वेश्यानां विडम्बः

अर्थ यौगिक अर्थ से बलवान् होता है उसी तरह स्वभाव से ही सुन्दर व्यक्ति के लिए भूषणों के योग की अपेक्षा नहीं है ॥ २७ ॥

राजा—(विदूषक की ओर मुंह करके) अरे नादान कपिञ्जल ! विचक्षणा तो यह बताती है :—

बाह्य सजावट से क्या लाभ, यह तो वेश्याएँ लोगों को ठगने के लिए किया करती हैं। लोगों के मन को हरने वाला सुन्दर अंग ही कुल स्त्रियों का श्रृङ्गार है ।

इति वा । नेपथ्यकला = वेशरचना । खण्डना = दूर करना । रूढिः = व्याकरण में शब्द का किसी अर्थ में प्रसिद्ध होना । खण्डना √खण्ड् + अन + आ = खण्डना = युच् प्रत्यय ॥

१. सुप्राञ्जल = सीधा, कृत्रिम = बनावटी ।

टिप्पणी—नटी = वेश्या । सीमन्तोऽस्याः अस्ति या सा सीमन्तिनी = उत्तमस्त्री-सीमन्त

यस्मिन् सर्वाङ्गसङ्गः सकलगुणगणः सोऽदम्भोऽलभ्यः

तस्मिन्नेच्छन्ति काले परमसुखकरे कामपि नेपथ्यलक्ष्मीम् ॥२८॥)

विचक्षणा—देव। एदं विण्णवीअदि—ण केवलं देवीए णिओएण तिस्सा अणुगदम्हि, तारामेत्तीए वि सहित्तणं प्पत्ता कप्पूरमंजरीए। तेण तक्कज्जसज्जा अहं उणो वि ओलग्गाविअ भविअ णिवेदइस्सं। (देव ! एतद्विज्ञाप्यते— न केवलं देव्या नियोगेन तस्या अनुगताऽस्मि, तारामैत्र्यापि सखीत्वं प्राप्ता कर्पूरमञ्जर्याः। तेन तत्कार्यासक्ताऽहं पुनरपि सेवकीभूय निवेदयिष्यामि)—

प्रतारणम्, मुग्धान् वञ्चयितुमेव वेश्याः कृत्रिमप्रसाधनैः स्वाङ्गं विभूषयन्ति। यत् निजांगं जनानां मनसः चित्तस्य आह्लादकं तेन अङ्गेन सीमन्तिन्यः कुलाङ्गनाः सौन्दर्यं धारयन्ति। यस्मिन् सकलगुणानां शीलसौन्दर्यादीनां गणः सर्वेषु अङ्गेषु सज्जति स कालः अदम्भः स्वाभाविकः अलभ्यः अप्राप्यश्च भवति, तस्मिन् परमसुखकरे अत्यन्तानन्दवर्धके काले यौवने विदग्धाः कामपि नेपथ्यलक्ष्मीं प्रसाधनशोभां नेच्छन्ति न अपेक्षन्ते। युवावस्थायां विदग्धाः न कामपि वेशभूषाजनितश्रियं वाञ्छन्ति, तदा तु स्वत एव सीमन्तिन्यः मनोहराः भवन्ति ॥ २८ ॥

सारे गुण, शील और सौन्दर्य इत्यादि स्वाभाविक रूप से समग्र शरीरावयवों में जिस समय पाए जाते हैं वह यौवनकाल दुर्लभ होता है, परम सुखदायक उस यौवनकाल में विदग्ध जन किसी श्रृङ्गार की आवश्यकता नहीं समझते। युवावस्था में बिना श्रृङ्गार के ही शरीर सुन्दर रहता है ॥ २८ ॥

विचक्षणा—महाराज ! केवल महारानी के आदेश से ही मैं कर्पूरमञ्जरी के साथ

शब्द से मत्वर्थीय इन् प्रत्यय, स्त्रीलिङ्ग का ई प्रत्यय-सीमन्तिनी। सर्वेषु अङ्गेषु सज्जति सर्वाङ्गसङ्गः=सर्वाङ्गव्यापी। अदम्भः=दम्भरहित-नैसर्गिक। नेपथ्यलक्ष्मी=वेशरचना की शोभा ॥ २८ ॥

टिप्पणी—तारामैत्री=एक दूसरे को देखने से उत्पन्न स्वाभाविक प्रेम। सेवकीभूय-असेवकः सेवकः भवति इति सेवकीभवति (च्विप्रत्ययान्त) √सेवकीभू+य (ल्यबन्त) सेवक होकर। नि √विदि+इ+ष्यामि=निवेदयिष्यामि=निवेदन करूँगी।

तिस्सा दाव परिक्खणाअ णिहिदो हत्थो थणोत्थंगदो
दाहोड्डामरिदो सहीहिं बहुसो हेलाअ कड्ढिज्जदि ।
किं तेणावि इमं णिसामअ गिरं संतोसिणिं त्तासिणिं
हत्थच्छत्तणिवारिदेंदुकिरणा बोल्लेइ सा जामिणीं ॥ २६ ॥

(तस्यास्तावत्परीक्षणाय निहितो हस्तः स्तनोत्सङ्गतो
दाहोड्डामरितः सखीभिर्बहुशो हेलया कृष्यते ।
किं तेनापीमां निशामय गिरं सन्तोपिणीं त्रासिनीं
हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुकिरणाऽतिवाहयति सा यामिनीम् ॥२६॥)

अन्वयः—तस्याः तावत् परीक्षणाय सखीभिः स्तनोत्संगतः निहितः हस्तः दाहोड्डामरितः बहुशः हेलया कृष्यते । किं तेन अपि, इमाम् सन्तोषिणीं त्रासिनीं गिरम् निशामय । सा हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुकिरणा यामिनीम् अतिवाहयति ।

व्याख्या—तस्याः कर्पूरमञ्जर्याः तावत् साकल्येन सम्यग्वा परीक्षणाय किंनिमित्तः कीदृशश्चास्याः सन्ताप इति निश्चयाय सखीभिः स्तनयोः उत्संगतः समीपात् निहितः अर्पितः हस्तः दाहोड्डामरितः सन्तापेन भृशमुत्तापितः बहुशः पुनः पुनः हेलया अवज्ञया कृष्यते अपनीयते इति भावः । यदि एतेनापि तस्याः सन्तापः सम्यग् न ज्ञायते तदा इमाम् सन्तोषिणीं सन्तोषजनिकां त्रासिनीं त्रासोत्पादिकां

नहीं रहती हूँ, बल्कि मेरा कर्पूरमञ्जरी से स्वाभाविक प्रेम भी हो गया है। इस लिए उसके काम में लगे होने पर भी सेवक रूप से मैं कुछ निवेदन करती हूँ:—

सखियों के द्वारा कर्पूरमञ्जरी के सन्ताप के कारण और स्वरूप को पूर्णतया जानने के लिए उसके स्तनों पर रखा हुआ हाथ अत्यन्त गरम लगने पर बार बार हटा लिया जाता है। यदि इससे भी उसका सन्ताप ठीक न जाना जाय, तो सन्तोष और डर उत्पन्न करने वाली यह बात सुनिए। हाथ के छत्र से ही चन्द्रमा

टिप्पणी—निहितः = रखा हुआ—नि √धा + त = निहित—धा धातु को हि आदेश, क्तप्रत्यय। दाहेन उड्डामरितः = दाहोड्डामरितः = सन्तापेन भृशमुत्तापितः। हेला = खेल, अवज्ञा। कृष्यते = हटा लिया जाता है √कृष् + य + ते (कर्मवाच्य वर्तमान)। निशामय = सुनिए—नि √शामि + अ = निशामय—लोट् मध्यमपुरुष का एकवचन। 'सन्तुष्यति' इति

कज्जसेसं कविंजलो णिवेदइस्सदि, तं च देवेण तधा कादव्व।
(कार्यशेषं कपिञ्जलो निवेदयिष्यति, तच्च देवेन तथा कर्त्तव्यम्)

[इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता]

राजा—वअस्स। किं उण तं कज्जसेसं ?। (वयस्य ! किं पुनस्तत् कार्यशेषम् ?)

विदूषक:—अज्ज हिंदोलणचउत्थी, तहिं देवीए गोरीं कदुअ कप्पूरमंजरीं हिंदोलए आरोहइदव्वा। ता मरगअकुंजट्ठिदेण देवेण कप्पूरमंजरी हिंदोलंती दट्ठव्वा; एदं तं कज्जसेसं।
(अद्य हिन्दोलनचतुर्थी, तत्र देव्या गौरीं कृत्वा कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलके आरोहयितव्या। तन्मरकतकुञ्जस्थितेन देवेन कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलन्ती द्रष्टव्या; एतत्तत् कार्यशेषम्)

गिरं वाणीं शृणु। हस्तच्छत्रेण चन्द्रमयूखान् निवारितवती सा यथाकथंचित् यामिनीम् अतिवाहयति यापयति। 'सा देवे अनुरक्ता' इति प्रतिपादकत्वेन इयं वाक् देवस्य सन्तोषकरी, 'चन्द्रकिरणानि अपि दुःसहतापमुत्पादयन्ति, बिलम्बोऽसह्यः' इतीयंवाणी भयमुत्पादयति अनिष्टाशंकया ॥ २९ ॥

की किरणों को बचाती हुई वह किसी तरह रात काटती है। 'कर्पूरमञ्जरी महाराज से प्रेम करती है' यह बात तो महाराज को सन्तोष पहुँचाती है लेकिन चन्द्रमा की किरणों तक से अपने को बचाने का समाचार डर उत्पन्न करता है ॥ २९ ॥

बाकी काम कपिञ्जल बतलायगा, उसे भी महाराज उसके अनुसार करें।

(यह कह कर घूमकर बाहर चली जाती है)

राजा—मित्र ! वह बाकी काम क्या है ?

विदूषक—आज हिंडोला झूलने की चतुर्थी है, महारानी गौरी की पूजा कर कर्पूरमञ्जरी को हिंडोले में झुलावेंगी, आप मरकतकुञ्ज नामक प्रासाद में बैठकर

या सा सन्तोषिणी=सन्तोष देने वाली—सम् √तुष्+इन्+ई=सन्तोषिणी (णिनि प्रत्यय, स्त्रीलिङ्ग का ई प्रत्यय)। हस्त एव छत्रम्=हस्तच्छत्रं तेन निवारिताः इन्दुकिरणाः यया सा हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुकिरणा=करातपत्राच्छादितचन्द्रमयूखा—हाथ से ही चन्द्रमा की किरणों को बचाती हुई। यामिनी=रात्रि। अतिवाहयति=बिताती है ॥ २९ ॥

राजा—[विचिन्त्य] ता अदिणिउणा वि छलिदा देवी। (तदतिनिपुणाऽपि छलिता देवी)

विदूषकः—पाइआ जोण्णमज्जारिआ दुद्धं त्ति तक्कं। (पायिता जीर्णमार्जारिका दुग्धमिति तक्रम्।)

राजा—को अण्णो तुम्हाहिंतो मह कज्जसज्जो ? को अण्णो चंदाहिंतो समुद्दवड्ढणणिट्ठो ?। (कोऽन्यो युष्मत्तो मम कार्य-सज्जः ? कोऽन्यश्चन्द्रतः समुद्रवर्द्धननिष्ठः ?।)

[इति परिक्रम्य कदलीगृहप्रवेशं नाटयतः]

विदूषकः—इअं उत्तुंगफटिअमणिवेदिआ, ता इह उवविसदु प्पिअवअस्सो। (इयमुत्तुङ्गस्फटिकमणिवेदिका, तदिहोपविशतु प्रिय-वयस्यः।)

कर्पूरमञ्जरी को झूला झूलता हुआ देखें। यही काम बाकी है।

राजा—(कुछ सोचकर) अत्यन्त चतुर महारानी को भी हम लोगों ने धोखा दे दिया।

विदूषक—बूढ़ी बिल्ली को दूध के नाम से मट्ठा पिला दिया।

राजा—तुम्हारे अतिरिक्त और कौन मेरे कार्य में इतना तत्पर हो सकता है ? चन्द्रमा के अतिरिक्त और कौन समुद्र को बढ़ाने का काम कर सकता है ?

(इसके बाद दोनों घूमकर कदलीगृह में प्रवेश करने का अभिनय करते हैं)

विदूषक—यह स्फटिक मणि का ऊँचा चबूतरा है, मित्र ! यहाँ बैठो।

टिप्पणी—आरोहयितव्या = चढ़ानी चाहिए—आ √रोहि + इ + तव्या = आरोहयि-तव्या (तव्य प्रत्ययान्त)। हिन्दोलकम् = हिंडोला।

टिप्पणी—पायिता = पिलाया √पायि + त + अ। ण्यन्त पा धातु से कर्मवाच्य में क्त प्रत्यय। जीर्णा-च सा मार्जारिका = जीर्णमार्जारिका = बूढ़ी बिल्ली।

टिप्पणी—युष्मत्तः = तुमसे भिन्न = अन्य योग में पञ्चमी। कार्ये सज्जः कार्यसज्जः = कार्य में लगा हुआ। समुद्रस्य वर्धने निष्ठा यस्य स समुद्रवर्धननिष्ठः = समुद्राह्लादनतत्परः।

टिप्पणी—स्फटिकमणीनां वेदिकाः स्फटिकमणिवेदिका—उत्तुंगा चासौ स्फटिकमणि-वेदिका = उत्तुंगस्फटिकमणिवेदिका = स्फटिकमणि का ऊँचा चबूतरा। स्फटिक = सफेद पत्थर। वेदिका = चबूतरा।

[राजा तथा करोति]

विदूषकः—[हस्तमुद्यम्य] भो ! दीसदु पुण्णिमाचंदो ।
(भोः ! दृश्यतां पूर्णिमाचन्द्रः !)

राजा—[विलोक्य] अए ! दोलारूढाए मह बल्लभाए वअणं पुण्णिमाचंदो त्ति णिद्दिससि (आये दोलारूढाया मम वल्लभाया वदनं पूर्णिमाचन्द्र इति निर्दिशसि) [समन्तादवलोक्य]—

विच्छाअंतो णअररमणीमंडलस्साणणाइं
पक्खालंतो गगणकुहरं कंतिजोण्हाजलेण ।
पेच्छंतोणं हिदअणिहिदं णिद्दलंतो अ दप्पं
दोलालीलासरलतरलो दीसए से मुहेंदू ॥ ३० ॥

(विच्छाययन्नगररमणीमण्डलस्याननानि
प्रक्षालयन् गगनकुहरं कान्तिज्योत्स्नाजलेन ।

अन्वयः—अस्याः मुखेन्दुः नगररमणीमण्डलस्य आननानि विच्छाययन् कान्तिज्योत्स्नाजलेन गगनकुहरम् प्रक्षालयन् प्रेक्षमाणानाम् हृदयनिहितम् दर्पम् निर्दलयन् दोलालीलासरलतरलः दृश्यते ।

व्याख्या—अस्याः कर्पूरमञ्जर्याः मुखेन्दुः मुखचन्द्रः नगररमणीमण्डलस्य

(राजा बैठता है)

विदूषक—(हाथ उठाकर) महाराज ! पूर्णिमा का चन्द्रमा देखिए ।

राजा—(देख कर) अरे ! हिंडोले पर बैठी हुई मेरी प्रेमिका के मुख को पूर्णिमा का चन्द्र बतलाता है । (चारो ओर देखकर):—

कर्पूरमञ्जरी का चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख नगर की समस्त स्त्रियों के मुखों को अपने सौन्दर्य से मलिन करता हुआ, कान्तिरूपी चांदनी के विस्तार से

टिप्पणी—विगता छाया यस्य तत् विच्छायम्-विच्छायं करोति = विच्छाययति (नामधातुण्यन्त) विच्छाययतीति विच्छाययन् (शत्रन्त) मलिनीकुर्वन् = मलिन करता हुआ । प्रक्षालयन् = उज्ज्वल बनाता हुआ प्र √क्षालि + अन् (शत्रन्त) । निर्दलयन् =

प्रेक्षमाणानां हृदयनिहितं निर्दलयंश्च दर्पं
दोलालीलासरलतरलो दृश्यतेऽस्या मुखेन्दुः ॥ ३० ॥)

अवि अ (अपि च)—

उच्चेहिं गोपुरेहि धवलधअपटाडंबरिल्लावलीहिं
घंटाहि विंदुरिल्लासुरतरुणिविमाणाणुरूअं वहंती ।
प्पाकारं लंघअंती कुणइ रअवसा उण्णमंती णमंती
एंती जंती अ दोला जणमणहरणं कड्ढणुकड्ढणेहिं ॥ ३१ ॥

(उच्चेषु गोपुरेषु धवलध्वजपटाडम्बरबहलावलीषु
घण्टाभिर्विद्राणसुरतरुणिविमानानुरूपं वहन्ती ।

नगरकामिनीसंघस्य आननानि मुखानि विच्छाययन् विच्छायानि विगतकान्तीनि कुर्वन् दृश्यते । अस्याः मुखचन्द्रः स्वकान्तिरूपायाः ज्योत्स्नायाः चन्द्रिकायाः जलेन गगनकुहरम् अन्तरिक्षविवरम् प्रक्षालयन् धवलयन् प्रकाशयन् वा दृश्यते । कर्पूरमंजरीं पश्यतां पश्यन्तीनां च नराणां नारीणां च 'ममैव भार्या सुन्दरी नान्या, अहमेव सुन्दरी नान्येति वा हृदयस्थं दर्पमभिमानं निर्दलयन् निरसयन, उन्मूलयन् वा अस्याः मुखचन्द्रः दोलायाः लीलया सरलतरलः संनिकृष्टविप्रकृष्टश्च दृश्यते । यदा दोला सन्मुखमायाति तदा सन्निकृष्टं समीपं दृश्यते, यदा पृष्ठतः गच्छति तदा दूरमिति भावः ॥ ३० ॥

अन्वयः—धवलध्वजपटाडम्बरबहलावलीषु उच्चेषु गोपुरेषु घण्टाभिः विद्राण-

---

आकाश को उज्ज्वल करता हुआ तथा देखने वाले पुरुषों और स्त्रियों के हृदय के (अपनी प्रेयसियों तथा अपने सौन्दर्य सम्बन्धी) गर्व को चूर करता हुआ झूले के आने जाने से पास तथा दूर दिखाई पड़ता है ॥ ३० ॥

और भी :—

श्वेत ध्वजाओं की पङ्क्तियों से युक्त ऊँचे गोपुरों में घण्टे के शब्द से शीघ्र जाते

चूर करता हुआ (शत्रन्त) दृश्यते=दिखाई पड़ता है (√दृश्+य+ते—कर्मवाच्य-लट्-वर्तमान) मुखमेव इन्दुः मुखेन्दुः=मुखचन्द्रः (उपमानसमास) ॥ ३० ॥

गोपुर=नगर का द्वार । धवलाश्च ते ध्वजपटाः=धवलध्वजपटाः, तेषां ये आडम्बराः

प्राकारं लङ्घयन्ती करोति रयवशादुन्नमन्ती नमन्ती
आयान्ती यान्ती च दोला जनमनोहरणं कर्षणोत्कर्षणैः ॥३१॥

अवि अ (अपि च)—

रणंतमणिणेउरं झणझणंतहारच्छडं
कलक्कणिदकिंकिणीमुहरमेहलाडंबरं ।
विलोलवलआवलीजणिदमंजुसिंजारवं
ण कस्स मणमोहणं ससिमुहीअ हिंदोलणं ? ॥३२॥

सुरतरुणिविमानानुरूपम् वहन्ती प्राकारं लङ्घयन्ती रयवशात उन्नमन्ती नमन्ती कर्षणोत्कर्षणैः आयान्ती यान्ती दोला जनमनोहरणम् करोति ।

व्याख्या—धवलानां श्वेतानां ध्वजपटानां ये आडम्बराः विस्ताराः तैः बहलाः पूर्णाः आवल्यः येषु तादृशेषु उच्चेषु गोपुरेषु पुरद्वारेषु घण्टाभिः घण्टारवैः विद्राणं वेगेन गच्छत् यत् सुरतरुणीनां विमानम् तदनुरूपं वहन्ती चलन्ती, प्राकारं प्राचीरं लङ्घयन्ती अतिक्रामन्ती, तथा रयवशात् वेगहेतोः उन्नमन्ती ऊर्ध्वं गच्छन्ती, नमन्ती अधोभवन्ती, कर्षणोत्कर्षणैः आकर्षणेन त्यागेन च आयान्ती आगच्छन्ती समीपमिति यावत , यान्ती दूरं गच्छन्ती दोला जनानां मनांसि हरति ॥ ३१ ॥

हुए देवाङ्गनाओं के विमान की तरह चलता हुआ, चहारदीवारी को भी लाङ्घने वाला, वेग से ऊपर और नीचे जाता हुआ, तथा खैंचने और छोड़ देने से पास आता और जाता हुआ यह झूला लोगों के मन को अपनी ओर आकृष्ट करता है ॥३१॥

और भी:—

विस्ताराः, तैः बहलाः पूर्णाः आवल्यः पङ्क्तयः येपु तेपु धवलध्वजपटाडम्बरबहलावलीपु = श्वेतध्वजपटविस्तारपूर्णपङ्क्तिषु । विद्राणं वेगेन गच्छत् यत् सुरतरुणिविमानम् = विद्राण-सुरतरुणिविमानं तस्यानुरूपम् = विद्राणसुरतरुणिविमानानुरूपम् । प्राकार=प्राचीर, चाहार-दीवारी । लङ्घयन्ती = √लङ्घि + अ + अन्ती (शत्रन्त, स्त्रीप्रत्ययान्त) कर्षण = खींचना । उत्कर्षण = छोड़ना । विद्राण-वि √द्रा + त = विद्राण क्त प्रत्यय का त न हो गया ॥ ३१ ॥

(रणन्मणिनूपुरं झणझणायमानहारच्छटं
कलक्वणितकिङ्किणीमुखरमेखलाडम्बरम् ।
विलोलवलयावलीजनितमञ्जुशिञ्जारवं
न कस्य मनोमोहनं शशिमुख्या हिन्दोलनम् ? ॥३२॥)

विदूषकः—भो ! सुत्तआरो तुमं । अहं उण वित्तिआरो भविअ वित्थरेण वण्णेमि । (भोः ! सूत्रकारस्त्वम् । अहं पुनर्वृत्ति-

---

अन्वयः—रणन्मणिनूपुरम् झणझणायमानहारच्छटम् कलक्वणितकिङ्किणी-मुखरमेखलाडम्बरम् विलोलवलयावलीजनितमञ्जुशिञ्जारवम् शशिमुख्याः हिन्दोलनं कस्य मनोमोहनं न ।

व्याख्या—रणन्तौ ध्वनन्तौ मणिनूपुरौ यस्मिन् तादृशं शब्दायमाननूपुर-संयुक्तं, झणझणायमानया हारच्छटया च मिश्रितम्, कलं मधुरं क्वणन्त्यः याः किङ्किण्यः क्षुद्रघण्टिकाः ताभिः मुखरः यः मेखलायाः रशनायाः आडम्बरः तेन संयुक्तम्, विलोलाभिः चपलाभिः वलयावलीभिः उत्पन्नः यः मञ्जुः मनोहरः शिञ्जारवः, तेन च युक्तम् चन्द्रवदनायाः कर्पूरमञ्जर्या हिन्दोलनं कस्य मनो न मोहयति, अपि तु सर्वस्यै-वेति भावः। यदा कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलति, तदा तस्याः नूपुरौ शब्दं कुरुतः, हारच्छटा च झणझणायते, मेखलायां च याः क्षुद्रघण्टिकाः ताः मधुरं कूजन्ति, तस्याः कङ्कणानि च मञ्जुशिञ्जारवं कुर्वन्ति । एतादृशं तस्याः हिन्दोलनं कस्य मनः नाह्लादयति, अपि तु सर्वस्यैव ॥ ३२ ॥

मणिनूपुरों की झङ्कार से युक्त, हारावली के झन् झन् शब्द से पूर्ण, करधनी की छोटी २ घण्टियों के मधुर शब्द से भरा हुआ तथा चञ्चल कङ्कणों से उत्पन्न मधुर शब्दवाला यह चन्द्रमुखी कर्पूरमञ्जरी का झूलना किसके मन को अच्छा नहीं लगता ? ॥ ३२ ॥

विदूषक—मित्र ! तुम तो सूत्रकार हो—अर्थात् संक्षेप में बोलते हो, मैं वृत्तिकार

टिप्पणी—हिन्दोलनम् = झूला झूलना । मनसः मोहनम् = मनोमोहनम्—मन को मुग्ध करने वाला ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—सूत्रं करोतीति सूत्रकारः—कर्म में अण् प्रत्यय । सूत्रलक्षण-स्वल्पाक्षरम-

कारो भूत्वा विस्तरेण वर्णयामि)—

उवरिठिअथणपाब्भारपीडिअं चरणपंकजजुअं से ।
फुक्कारइव्व मअणं रणंतमणिणेउररवेण ॥ ३३ ॥
(उपरिस्थितस्तनप्राग्भारपीडितं चरणपङ्कजयुगं तस्याः ।
फूत्कारयतीव मदनं रणन्मणिनूपुररवेण ॥ ३३ ॥)

हिंदोलणलीलाललणलंपडं चक्कवत्तुलं रमणं ।
किलकिलइव्व सहरिसं कंचीमणिकिंकिणिरवेण ॥ ३४ ॥
(हिन्दोलनलीलाललनलम्पटं चक्रवर्त्तुलं रमणम् ।
किलकिलायतीव सहर्षं काञ्चीमणिकिङ्किणीरवेण ॥ ३४ ॥)

व्याख्या—उपरिस्थितेत्यादि–तस्याः कर्पूरमञ्जर्याः चरणपङ्कजयुगम् पादपद्म-युगलम्, उपरिस्थितयोः स्तनयोः प्राग्भारेण पीडितं भाराक्रान्तं सत्, रणन्तौ यौ मणिनूपुरौ तयोः रवेण मदनम् कामदेवं फूत्कारयतीव आह्वयतीव । कर्पूरमञ्जर्याः मणिनूपुराणां शब्दमात्रमेव श्रुत्वा कामिनां मदनावेशः जायते । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । फूत्कारयति = फूत्कारं करोति । फूत्कार शब्द से णिच् √फूत्कारि + अ + ति ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हिन्दोलनलीलाललनलम्पटं चक्रवर्तुलम् रमणम् काञ्चीमणि किङ्किणी-रवेण सहर्षम् किलकिलायति इव ।

व्याख्या—हिन्दोलनस्य या लीला तस्याः ललने लम्पटं हिन्दोलनविलास-प्रसरणलुब्धम् चक्रवत् वर्तुलं गोलाकारम् रमणम् नितम्बस्थलम् काञ्ची रशना तत्र

के रूप में विस्तारपूर्वक वर्णन करूंगा ।

कर्पूरमञ्जरी के चरण कमल, ऊपर उठे हुए स्तनों के उभार से दब कर मणि-नूपुरों के शब्द द्वारा कामदेव को बुलाते हुए से लगते हैं ॥ ३३ ॥

हिंडोले की लीला के साथ लीला (खेलने) करने के लालची और चक्र की तरह गोल कर्पूरमञ्जरी के नितम्ब, करधनी में लगी हुई रत्नों की छोटी २ घण्टियों के शब्द द्वारा हर्ष के साथ मानों किलकिलाते हैं ॥ ३४ ॥

संदिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् । अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः । वृत्ति = टीका ॥

दोलांदोलणलीलासरंतसरिआछलेण से हारो ।
वित्थारइव्व कुसुमाउहणरवइणो कित्तिवल्लीओ ॥ ३५ ॥
(दोलान्दोलनलीलासरत्सरिकाच्छलेनास्या हारः ।
विस्तारयतीव कुसुमायुधनरपतेः कीर्त्तिवल्लीः ॥ ३५ ॥)

संमुहपवणप्पेरिदोवरिवत्थे दरदंसिदाइं अंगाइं ।
टक्कारिऊण मअणं पासम्मि णिवेसअंति व्व ॥ ३६ ॥
(सम्मुखपवनप्रेरितोपरिवस्त्रे दरदर्शितान्यङ्गानि ।
आकार्य्य मदनं पार्श्वे निवेशयन्तीव ॥ ३६ ॥)

स्थिताः याः मणिकिङ्किण्यः मणिमयक्षुद्रघंटिकाः तासां रवेण सहर्षं प्रसादपूर्वकम् किलकिलेति शब्दं करोति । यदा कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलते, तदा तस्याः नितम्बोपरि स्थिता काञ्चीकिङ्किण्यः किलकिलेति गुञ्जन्ति ॥ ३४ ॥

अन्वयः—अस्याः हारः दोलान्दोलनलीलासरत्सरिकाच्छलेन कुसुमायुधनरपतेः कीर्तिवल्लीः विस्तारयति इव ।

व्याख्या—अस्याः कर्पूरमञ्जर्याः हारः दोलायाः आन्दोलनलीला तस्यां सरन्ती चलन्ती या सरिका मुक्तावली तस्याः छलेन कामदेवभूपतेः कीर्तिवल्लीः कीर्तिलताः कीर्तिपरम्पराः विस्तारयति प्रसारयतीवेत्यर्थः । यदा कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलते तदा दोलान्दोलनानुसारं तस्याः हारस्य मुक्तावली अपि चलति । एतद्दृष्ट्वा इदं प्रतिभाति यत् हारः कामदेवस्य कीर्तिं प्रसारयन्नास्ते ॥ ३५ ॥

अन्वयः—सम्मुखपवनप्रेरितोपरिवस्त्रे दरदर्शितानि अङ्गानि, मदनम् आकार्य पार्श्वे निवेशयन्ति इव ।

व्याख्या—सम्मुखेन सम्मुखादागतेन पवनेन वायुना प्रेरितं सञ्चालितं यत् उपरिवस्त्रं तस्मिन् दरदर्शितानि ईषदुद्घाटितानि अङ्गानि ऊरुप्रभृतीनि मदनमनङ्गम्

झूले के चलने के साथ चलती हुई मुक्तावली के द्वारा कर्पूरमञ्जरी का हार कामदेवरूपी राजा की कीर्तिपरम्परा को फैलाता सा है ॥ ३५ ॥

सामने से आती हुई हवा के द्वारा ऊपर के वस्त्र के हट जाने पर कुछ २ दिखाई देती हुई इसकी जङ्घाएँ कामदेव को बुला कर पास बैठाती हुई सी दिखाई देती है ॥ ३६ ॥

ताडंकजुअं गंडेसु बहलघुसिणेसु घट्टणलीलाहिं ।
देइ व्व दोलांदोलणरेहाओ गणणकोदुएण ॥ ३७ ॥

(ताटङ्कयुगं गण्डयोर्बहलघुसृणयोर्घटनलीलाभिः ।
ददातीव दोलान्दोलनरेखा गणनकौतुकेन ॥ ३७ ॥)

णअणाइं प्पसिदिसरिसाइं झत्ति फुल्लाइ कोदुहलेण ।
अप्पेतिअ व्व कुवलअसिलीमुहे पंचबाणस्स ॥ ३८ ॥

(नयने प्रसृतिसदृशे झटिति फुल्ले कौतूहलेन ।
अर्प्येते इव कुवलयशिलीमुखे पञ्चबाणस्य ॥ ३८ ॥)

आकार्य आहूय पार्श्वे समीपे निवेशयन्ति इव दृश्यन्ते । पवनेन वस्त्राणां सञ्चालने ईषदुन्मिषितानामूर्वादीनां दर्शनादेव कामिनां कामोद्रेकः सञ्जायते अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ॥

अन्वयः—ताटङ्कयुगम् बहलघुसृणयोः गण्डयोः घटनलीलाभिः गणनकौतुकेन दोलान्दोलनरेखाः ददाति इव ।

व्याख्या—कर्पूरमञ्जर्याः ताटङ्कयुगम् कर्णभूषणयुगलम् बहलं घुसृणं ययोः तयोः प्रभूतकुङ्कुमरागवतोः गण्डयोः कपोलयोः घट्टनलीलाभिः घर्षणविलासैः गणनकौतुकेन कति वारान् हिन्दोल्यते इति संख्याकरणकुतूहलेन दोलाया आन्दोलनस्य रेखाः चिह्नविशेषान् ददातीव ॥ ३७ ॥

अन्वयः—प्रसृतिसदृशे नयने झटिति कौतूहलेन फुल्ले पञ्चबाणस्य कुवलय-शिलीमुखे अर्प्येते इव ।

व्याख्या—प्रसृतिसदृशे अर्धाञ्जलिपरिमिते अतिदीर्घे कर्पूरमञ्जर्याः नयने

कर्पूरमञ्जरी के कानों में पड़े हुए ताटङ्क उसके कुङ्कुम लगे हुए कपोलों पर बार २ लगने से ऐसे मालूम देते हैं जैसे झूला झूलने की गिनती करने के लिए रेखाएँ लगाते हों ॥ ३७ ॥

कर्पूरमञ्जरी की बड़ी २ आंखे कुतूहल में एकाएक खुली हुई ऐसी लगती हैं मानों कामदेव ने नीलकमलरूपी बाण कामिपुरुषों के मन पर छोड़ दिए हों ॥३८॥

टिप्पणी—घुसृण = कुंकुम । ताटंक = कान का गहना । कितने बार यह झूलती है यह गिनने के लिए ताटङ्क उसके गालों पर रेखाएँ सी बनाते है ॥ ३७ ॥

दोलारअविच्छेओ कहं वि मा होउ इत्ति पडइव्व।
पुट्ठम्मि वेणिदंडो मम्महचम्मजट्ठिआअंतो ॥ ३९ ॥
(दोलारसविच्छेदः कथमपि मा भवत्विति पततीव।
पृष्ठे वेणीदण्डो मन्मथचर्मयष्टिकायमानः ॥ ३९ ॥)

इत्तिएदाइं बिलासुज्जलाइं दोलापवंचचरिआइं।
कस्स ण लिहेइ चित्ते णिउणा कंदप्पचित्तअरो ॥ ४० ॥
(इत्येतानि विलासोज्ज्वलानि दोलाप्रपञ्चचरितानि।
कस्य न लिखति चित्ते निपुणः कन्दर्पचित्रकरः ? ॥ ४० ॥)

कौतूहलेन झटिति सहसा फुल्ले विकासं गते। तस्याः नेत्रे दृष्ट्वा एतत् प्रतीयते यत् कामदेवेन कामिनां मनस आघाताय स्वनीलकमलरूपिणौ बाणौ संधत्तौ। तस्याः नेत्रे नीलकमलोपमौ कामिनां मनांसि च संहरन्ति ॥ ३८ ॥

अन्वयः—दोलारसविच्छेदः कथमपि मा भवतु इति मन्मथचर्मयष्टिकायमानः वेणीदण्डः पृष्ठे पतति इव।

व्याख्या—दोलारसस्य दोलनव्यापारस्य विच्छेदः विरामः कथमपि न भवेदित्यर्थं मन्मथस्य कामस्य चर्मयष्टिकायमानः चर्मनिर्मिता यष्टिरिव आचरन् वेणीदण्डः वेणीकृतकेशयष्टिः पृष्ठे पतति इव आघातं करोतीव ॥ ३९ ॥

अन्वयः—निपुणः कन्दर्पचित्रकरः इत्येतानि विलासोज्ज्वलानि दोलाप्रपञ्चचरितानि कस्य चित्ते न लिखति।

व्याख्या—निपुणः कुशलः कन्दर्प एव चित्रकरः आलेख्यकरः इत्येतानि

झूलने में किसी भी तरह कमी न आए—इस विचार से कर्पूरमञ्जरी की वेणी कामदेव की चर्मनिर्मित कशा की तरह उसकी पीठ पर पड़ती है ॥ ३९ ॥

कामदेवरूपी चतुर चित्रकार ऊपर वर्णन किए गए विलास से पूर्ण झूला झूलने के विस्तृत चित्रों को किसके हृदय पर चित्रित नहीं करता है ? ॥ ४० ॥

टिप्पणी—कर्पूरमञ्जरी के झूला झूलने का यह विस्तृत वर्णन (३३-४० श्लो०) विदूषक का किया हुआ है। राजा ने केवल सूत्ररूप में (संक्षेप में) वर्णन किया था। विदूषक ने उसकी यह वृत्ति (विशद व्याख्या) कर दी ॥ ४० ॥

राजा—[सविषादम्] कधमवतिण्णा कप्पूरमंजरी ! रित्ता दोला, रित्तं अ मह चित्तं, रित्ताइं दंसणूसुआइं मह णअणाइं। (कथमवतीर्णा कर्पूरमञ्जरी ! रिक्ता दोला, रिक्तं च मम चित्तं, रिक्ते दर्शनोत्सुके मम नयने।)

विदूषकः—ता विज्जुल्लेहा विअ खणदिट्ठणट्ठा। (तद्विद्युल्लेखेव क्षणदृष्टनष्टा।)

राजा—मा एव्वं भण; हरिचंदपुरी विअ दिट्ठा पणट्ठा अ। (मैवं भण, हरिश्चन्द्रपुरीव दृष्टा प्रनष्टा च।) [स्मृतिनाटितकेन]—

मांजिठ्ठी ओठ्ठमुद्दा णवघडणसुवण्णुज्जला अंगजट्ठी
दिट्ठी बालेंदुलेहाधवलिमजइणी कुंतला कज्जलाहा।

पूर्वोक्तानि विलासेन उज्ज्वलानि विचित्राणि दोलाप्रपञ्चचरितानि दोलान्दोलनविस्तृतचरित्राणि कस्य जनस्य चित्ते हृदयपटले न लिखति न चित्रयति। अपि तु सर्वस्यैव कामिनः चित्रे इमानि चित्राणि कन्दर्पेण आलिख्यन्ते ॥ ४० ॥

राजा—(दुःख के साथ) अरे, कर्पूरमञ्जरी तो उतर पड़ी ? झूला खाली हो गया, मेरा मन भी खाली हो गया और उसको देखने के लिये लालायित मेरी आंखे भी खाली हो गई ?

विदूषक—वह बिजली की चमक की तरह कभी दिखाई देती है कभी छिप जाती है।

राजा—ऐसा मत कहो, हरिश्चन्द्र की नगरी की तरह दिखाई दी और नष्ट हो गई। (स्मृति का अभिनय कर):—

कर्पूरमञ्जरी के ओठें लाल हैं, उसका पतला शरीर नवीन सुवर्ण की तरह चमकता है, आंखे द्वितीया के चन्द्रमा से भी अधिक उज्ज्वल हैं, केश काजल की तरह काले हैं—इस तरह कर्पूरमञ्जरी में रंगों का अनिर्वचनीय सौन्दर्य झलक

टिप्पणी—हरिश्चन्द्रपुरीव—राजा हरिश्चन्द्र की नगरी निरन्तर उत्सवों से पूर्ण रहने के कारण लोगों को आनन्द देती रहती थी बाद में विश्वामित्र ऋषि ने अपने पराक्रम से उसे छीन कर नष्ट कर दिया—इसी तरह कर्पूरमञ्जरी को हरिश्चन्द्र की उपमा दी गई है।

इत्थं वण्णाणं रेहा विहरइ हरिणीचंचलाक्खो अ एसा
कंदप्पो दीहदप्पो जुअजणजअणे पुण्णलक्खो व्व भादि ॥४१॥

(माञ्जिष्ठी ओष्ठमुद्रा नवघटनसुवर्णोज्ज्वलाऽङ्गयष्टिः
दृष्टिर्बालेन्दुरेखाधवलिमजयिनी कुन्तलाः कज्जलाभाः ।
इत्थं वर्णानां रेखा विहरति हरिणीचञ्चलाक्षी चैषा
कन्दर्पो दीर्घदर्पो युवजनजये पूर्णलक्ष्य इव भाति ॥ ४१ ॥)

अन्वयः—ओष्ठमुद्रा माञ्जिष्ठी, अङ्गयष्टिः नवघटनसुवर्णोज्ज्वला, दृष्टिः बालेन्दुरेखाधवलिमजयिनी, कुन्तलाः कज्जलाभाः, इत्थं वर्णानां रेखा विहरति, एषा च हरिणीचञ्चलाक्षी, दीर्घदर्पः कन्दर्पः युवजनजये पूर्णलक्ष्य इव भाति ।

व्याख्या—कर्पूरमञ्जर्याः ओष्ठमुद्रा ओष्ठावयवः माञ्जिष्ठी मञ्जिष्ठारागरक्ता, अङ्गयष्टिः तनुलता नवसुवर्णमिव उज्ज्वला, दृष्टिः बालाया अभिनवायाः इन्दुरेखायाः चन्द्रकलायाः धवलिमानं जयति, कुन्तलाः केशाः कज्जलाभाः कज्जलसदृशाः गाढनीलाः, इत्थम् एवंरूपा वर्णानां रेखा माधुरी विहरति विलसति । इयं च स्वयं हरिणीवत् चपलनेत्रा वर्तते । अत एवं प्रतीयते यत् महान् गर्वशीलः कामदेव एव युवजनानां मनांसि जेतुं पूर्णमनोरथोऽस्ति ॥ ४१ ॥

रहा है, कर्पूरमञ्जरी स्वयं भी हिरनी की तरह चञ्चल नेत्र वाली है । ऐसा लगता है कि साक्षात् महान् गर्वशाली कामदेव ही नवयुवकों के हृदय को जीतने का अपना मनोरथ पूरा कर रहे हैं ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—ओष्ठयोः मुद्रा = ओष्ठमुद्रा । माञ्जिष्ठी = मजीठ के राग से रंगी हुई—लाल । मजीठ एक प्रकार की लकड़ी, जिससे रंग बनता है । नवं घटनं निर्माणं यस्य तत् नवघटनं, नवघटनं च तत्सुवर्णं नवघटनसुवर्णम्, तद्वत् उज्ज्वला = नवघटनसुवर्णोज्ज्वला = नये बने हुये सोने के समान उज्ज्वल । बाला च सा इन्दुरेखा = बालेन्दुरेखा तस्याः धवलिमानं जयतीति बालेन्दुरेखाधवलिमजयिनी—नवीन चन्द्रकला की उज्ज्वलता को भी जीतनेवाली—अर्थात् अत्यन्त उज्ज्वल । हरिण्याः इव चञ्चले अक्षिणी यस्याः सा रिणीचञ्चलाक्षी—हिरनी के समान चञ्चल नेत्र वाली । दीर्घो दर्पः यस्य सः दीर्घदर्पः = बड़े गर्व वाला ॥ ४१ ॥

विदूषकः—एदं तं मरगअकुंजं । इह उवविसिअ प्पिअवअस्सो प्पडिवालेदु तं । संझावि सण्णिहिदा वट्टदि । (एतत्तन्मरकतकुञ्जम् । इहोपविश्य प्रियवयस्यः प्रतिपालयतु ताम् । सन्ध्याऽपि सन्निहिता वर्त्तते ।)

[उभौ तथा कुरुतः]

राजा—अदिसिसिरं वि हिमाणिं संदावदाइणिं अणुहवामि । (अतिशिशिरामपि हिमानीं सन्तापदायिनीमनुभवामि ।)

विदूषकः—ता लच्छीसहअरो खणं चिट्ठदु देवो, जाव अहं सिसिरोपआरसामग्गिं संपादेमि । [इति नाट्येन निष्क्रम्य पुरोवलोक्य च] किं उण एसा विअक्खणा इदो णिअडे आअच्छदि ? । (तल्लक्ष्मीसहचरः क्षणं तिष्ठतु देवः, यावदहं शिशिरोपचारसामग्रीं सम्पादयामि[1] [इति नाट्येन निष्क्रम्य पुरोऽवलोक्य च] किं पुनरेषा विचक्षणा इतो निकटे आगच्छति ?)

विदूषक—यह मरकत कुञ्ज है, प्रिय मित्र ! यहाँ बैठकर उनकी प्रतीक्षा करो शाम भी हो गई है ।

(दोनों बैठते हैं)

राजा—अत्यन्त शीतल हिम भी गरम मालूम पड़ता है ।

विदूषक—श्रीमान् लक्ष्मी (राजलक्ष्मी) के साथ यहाँ प्रतीक्षा करें, मैं गर्मी दूर करने की सामग्री तैयार करता हूँ (अभिनय के साथ बाहर जाकर और सामने देख कर) क्या विचक्षणा पास आ रही है ?

टिप्पणी—उपविश्य = बैठकर-उप √विश् + य-ल्यबन्त । प्रतिपालयतु = प्रतीक्षा करें । सन्निहिता = निकट ।

टिप्पणी—हिमानी = हिमस्य अत्ययः = हिमानी-हिम शब्द से बाहुल्य में ई ङी प्रत्यय, मध्य में आन् आगम । सन्तापं दातुं शीलमस्याः इति सन्तापदायिनी ताम् = सन्तापदायिनीम् दाह उत्पन्न करने वाली-सन्ताप पूर्वक √दा धातु से इन् (णिनि) प्रत्यय, य् का आगम-फिर स्त्रीलिङ्ग का ई प्रत्यय ।

१. सम्पादयामि = तैयार करता हूँ ।

राजा—संणिहिदो संकेअकालो कहिदो मंतीहिंपि।
(सन्निहितः सङ्केतकालः कथितो मन्त्रिभ्यामपि।) [स्मृत्वा मदनाकूतमभिनीय]—

किसलअकरचरणा वि क्खु कुवलअणअणा मिअंकवअणा वि।
अहह ! णवचंपअंगी तह व्वि तावेइ अच्चरियं ॥ ४२ ॥

(किसलयकरचरणाऽपि खलु कुवलयनयना मृगाङ्कवदनाऽपि।
अहह ! नवचम्पकाङ्गी तथाऽपि तापयत्याश्चर्यम् ॥ ४२ ॥)

विदूषकः—[सम्यगवलोक्य] अए ! विअक्खणा सिसिरोवआरसामग्गीसहिदहत्था आअदा। (अये ! विचक्षणा शिशिरोपचारसामग्रीसहितहस्ता आगता।)

व्याख्या—इयं कर्पूरमञ्जरी नवपल्लवाविव कोमलौ करचरणौ दधाति, अस्याः नयने नीलोत्पले इव मनोहरे, अस्याः मुखम् चन्द्रवत् सुधामयम्, अङ्गानि च नवानि चम्पकपुष्पाणि इव दीप्यमानानि मृदूनि च सन्ति। तथापि सा तापयति दाहज्वरमुत्पादयति—महान् खेदोऽयम् आश्चर्यं चाऽस्ते। सन्तापनिवर्तकानां गुणानां सद्भावेऽपि सन्तापस्य निवृत्तिर्न—इति विशेषोक्तिरलंकारः, सन्तापहेतुं विनाऽपि सन्तापोत्पत्तिरिति विभावनालङ्कारः—उभयोः सन्देहसंकरः ॥ ४२ ॥

राजा—मन्त्रियों ने भी सङ्केत काल के पास होने का जिक्र किया है। (याद करके—कामावेश को प्रकट कर):—

नये पत्तों के समान कोमल चरणों वाली, नीलकमल के समान नेत्रों वाली, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली तथा चम्पा के नये फूल के समान मनोहर अङ्गों वाली भी यह कर्पूरमञ्जरी सन्ताप उत्पन्न करती है—यह बड़ा आश्चर्य है ॥४२॥

विदूषक—(अच्छी तरह देखकर) अरे ! शिशिरोपचार की सामग्री हाथ में लिये विचक्षणा आ रही है ?

टिप्पणी—किसलयौ नवपल्लवौ इव करचरणौ यस्याः सा किसलयकरचरणा (बहुव्रीहि)। नये पत्तों के समान कोमल हाथपैर वाली। कुवलये इव नयने यस्याः सा कुवलयनयना=नीलकमलाक्षी। मृगाङ्क इव वदनं यस्याः सा मृगाङ्कवदना=चन्द्रमुखी। नवानि चम्पकानि इव अंगानि यस्याः सा नवचम्पकांगी। विरहदाहज्वरः=विरह की जलन ॥ ४२ ॥

[ततः प्रविशति शिशिरोपचारसामग्रीसहिता विचक्षणा]

विचक्खणा—[परिक्रम्य] अहो ! प्पिअसहीए महंतो क्खु विरहदाहज्जरो। (अहो ! प्रियसख्या महान् खलु विरहदाहज्वरः)

विदूषकः—[उपसृत्य] भोदि ! किं एदं ? (भवति ! किमेतत् ?)

विचक्खणा—सिसिरोवआरसामग्गी। (शिशिरोपचारसामग्री)

विदूषकः—कस्स किदे ? (कस्य कृते ?)

विचक्खणा—प्पिअसहीए किदे। (प्रियसख्याः कृते।)

विदूषकः—ता मह वि अद्धं देहि ? (तन्ममापि अर्द्धं देहि ?)

विचक्खणा—किं णिमित्तं ? (किं निमित्तम् ?)

विदूषकः—महाराअस्स किदे। (महाराजस्य कृते।)

विचक्खणा—किं उण कारणं तस्स ? (किं पुनः कारणं तस्य ?)

विदूषकः—कप्पूरमंजरिए वि किं ? (कर्पूरमञ्जर्या अपि किम् ?)

(शिशिरोपचार की सामग्री लिये विचक्षणा आती है)

विचक्षणा—(घूम कर) प्रिय सखी को बड़ा दाहज्वर है।

विदूषक—(पास जाकर) बहिन जी ! यह क्या है ?

विचक्षणा—शीतलता पहुँचाने का सामान।

विदूषक—किसके लिये ?

विचक्षणा—अपनी प्रिय सखी के लिये।

विदूषक—मेरे लिये भी आधा दो।

विचक्षणा—किस लिये ?

विदूषक—महाराज के लिये।

विचक्षणा—उनको क्या हो गया है ?

विदूषक—कर्पूरमञ्जरी को क्या हो गया है ?

टिप्पणी—शिशिरोपचारस्य सामग्री = शिशिरोपचारसामग्री = सन्तापनिवर्तकद्रव्य-समूह-चन्दन लेप इत्यादि।

विचक्षणा—किं ण जाणासि महाराअस्स दंसणं ?
(किं न जानासि महाराजस्य दर्शनम् ?)

विदूषकः—तुमं वि किं ण जाणासि महाराअस्स कप्पूरमंजरीए दंसणं ? (त्वमपि किं न जानासि महाराजस्य कर्पूरमञ्जर्या दर्शनम् ?)

[इत्युभौ हसतः]

विचक्षणा—ता कहीं महाराओ ? (तत् कुत्र महाराजः ?)

विदूषकः—तुह बअणेण मरगअकुंजे चिट्ठदि । (तव वचनेन मरकतकुञ्जे तिष्ठति ।)

विचक्षणा—ता महाराएण सह मरगअकुंजदुआरे चिट्ठ खणं, जेण उहअदंसणे जादे सिसिरोवआरसामग्गीए जलंजली दिज्जदि । (तन्महाराजेन सह मरकतकुञ्जद्वारे तिष्ठ क्षणं, येनोभयदर्शने जाते शिशिरोपचारसामग्र्या जलाञ्जलिर्दीयते ।)

विदूषकः—[तामपहत्य] तहिं गच्छ जहिं णागच्छसि । (तत्र गच्छ यतो नागच्छसि) [इति क्षिपति] (पुनस्तां प्रति) ता कोस दुआरदेसे होदव्वं ? (तत किं द्वारदेशे भवितव्यम् ?)

विचक्षणा—देवीए आदेसेण कप्पूरमंजरी समाअच्छदि । (देव्या आदेशेन कर्पूरमञ्जरी समागच्छति ।)

विचक्षणा—क्या तुम्हें कर्पूरमञ्जरी के महाराज के दर्शन करने का पता नहीं है ?

विदूषक—तुम्हे भी क्या महाराज के कर्पूरमञ्जरी को देखने का पता नहीं है ?

(दोनों हंसते हैं)

विचक्षणा—महाराज कहाँ हैं ?

विदूषक—तुम्हारे कहने से मरकतमणि से युक्त चबूतरे वाली कुञ्ज में हैं ।

विचक्षणा—महाराज के साथ मरकतकुञ्ज के द्वार पर कुछ देर ठहरो, ताकि दोनों को एक दूसरे के दर्शन हो जाने पर शिशिरोपचार सामग्री को छोड़ दिया जाय ।

विदूषक—(उसको खींच कर) वहां जा, जहां से फिर न आवे (मर जा)। (धक्का देता है) (फिर उससे) क्या मैं द्वार पर ठहरूँ ?

विचक्षणा—महारानी के आदेश से कर्पूरमञ्जरी आवेगी ।

विदूषकः—को तीए आदेसो ? (कः तस्या आदेशः ?)

विचक्षणा—तहिं देवीए बालतरुणो तिण्णि आरोविदा। (तत्र देव्या बालतरवस्त्रय आरोपिताः।)

विदूषकः—को को ? (कः कः ?)

विचक्षणा—कुरबअतिलआसोआ। (कुरवकतिलकाशोकाः।)

विदूषकः—ता किं तेहिं ? (तत किं तैः ?)

विचक्षणा—भणिदा सा देवीए जधा (भणिता सा देव्या यथा)—

कुरबअतिलआसोआ आलिंगणदंसणाग्गचरणहदा।
विअसंति कामिणीणं ता ताणं देहि दोहदअं॥ ४३॥

(कुरबकतिलकाशोका आलिङ्गनदर्शनाग्रचरणहताः।
विकसन्ति कामिनीनां तत्तेषां देहि दोहदकम्॥ ४३॥)

अन्वयः—कुरबकतिलकाशोकाः कामिनीनाम् आलिंगनदर्शनाग्रचरणहताः विकसन्ति, तत् तेषां दोहदकम् देहि।

सरलार्थः—कुरबकतिलकाशोकाः वृक्षाः कामिनीनाम् आलिंगनेन दर्शनेन अग्रचरणेन च हताः यथाक्रमं स्पृष्टाः अवलोकिताः ताडिताश्च सन्तः विकसन्ति, तत् तस्मात् कारणात् तेषां दोहदकं गर्भाभिलाषं देहि॥ ४३॥

विदूषक—उनका क्या आदेश है ?

विचक्षणा—वहाँ पर महारानी ने तीन छोटे छोटे वृक्ष लगाये हैं।

विदूषक—कौन, कौन ?

विचक्षणा—कुरबक (लालकटसरैया), तिलक और अशोक।

विदूषक—उनसे क्या काम ?

विचक्षणा—उससे महारानी ने इस तरह कहा है:—

कामिनियों के आलिंगन से कुरबक, देखने से तिलक तथा पदाघात से अशोक खिलता है, इसलिये इनका दोहदपूर्णकर॥ ४३॥

टिप्पणी—कुरबकं तिलकमशोकश्च कुरबकतिलकाशोकाः (द्वन्द्वसमास)। आलिंगनेन दर्शनेन चरणाग्रेण च हताः=आलिंगनदर्शनचरणाग्रहताः=स्पृष्टावलोकिताडिताः। दोहदकम्=गर्भवती स्त्री की इच्छा॥ ४३॥

एण्हि तं संपादइस्सदि । (इदानीं तत् सम्पादयिष्यति)

विदूषकः—ता मरगअकुंजादो प्पिअवअस्सं आणीअ तमालविडवंतरिदं ठाविअ एदं प्पच्चक्खं करइस्सं । (तन्मरकतकुञ्जात् प्रियवयस्यमानीय तमालविटपान्तरितं स्थापयित्वा एतत्प्रत्यक्षं कारयिष्यामि) [तथा नाटयित्वा राजानं प्रति] भो भो ! उट्ठिअ पेक्ख णिअहिअअसमुद्दचंदलेहं । (भो भो ! उत्थाय प्रेक्षस्व निजहृदयसमुद्रचन्द्रलेखाम् ।)

[राजा तथा करोति]

[ततः प्रविशति विशेषभूषिताङ्गी कर्पूरमञ्जरी]

कर्पूरमञ्जरी—कहिं उण विअक्खणा ? (क्व पुनर्विचक्षणा ?)

विचक्षणा—[तामुपसृत्य] सहि ! करीअदु देवीए समादिट्ठं । (सखि ! क्रियतां देव्या समादिष्टम् ।)

अब वह उसे पूर्ण करेगी ।

विदूषकः—मरकत कुञ्ज से महाराज को लाकर तमालविटप में छिपाकर यह दृश्य प्रत्यक्ष दिखलाऊंगा । (ऐसा अभिनय कर–राजा से) अरे, अरे उठो, अपने हृदय समुद्र की चन्द्रलेखा को देखो ?

(राजा वैसा ही करता है)

(विशेष रूप से अंगों को सजाये हुये कर्पूरमञ्जरी आती है)

कर्पूरमञ्जरी—विचक्षणा कहाँ है ?

विचक्षणा—(उसके पास जाकर) सखी ! महारानी की आज्ञा पूर्ण करो ?

टिप्पणी—तमालविटपेन अन्तरितम् = तमालविटपान्तरितम्–तमाल वृक्ष में छिपा हुआ। स्थापयित्वा = बैठाकर– √स्थापि + इ + त्वा । क्त्वा प्रत्यय । उत्थाय = उठकर उद्– √स्था + य = उत्थाय–उद् + स्था = उत्था–हल्संधि, ल्यप् प्रत्यय । निजं च तत् हृदयम् = निजहृदयम् , तदेव समुद्रः, तस्य चन्द्रलेखा तां, निजहृदयसमुद्रचन्द्रलेखाम्–जिस तरह चन्द्रमा के देखने से समुद्र उमड़ता है, उसी तरह तुम्हारे हृदय को प्रसन्न करने वाली ।

टिप्पणी—विशेषं भूषितानि अंगानि यस्याः सा विशेषभूषितांगी=खास तौर से अंगो को सजाये हुये ।

राजा—वअस्स ! किं उण तं ? (वयस्य ! किं पुनस्तत् ?)

विदूषकः—तमालविडवांतरितो जाण। (तमालविटपान्तरितो जानीहि ।)

[राजा तथा करोति]

विचक्षणा—एस कुरबअतरू। (एष कुरवकतरुः ।)

[कर्पूरमञ्जरी तमालिङ्गति]

राजा—

णवकुरबअरुक्खो कुंभथोरत्थणीये
रहसविरइदेण णिब्भरालिंगणेण ।
तह कुसुमसमिद्धिं लंभिदो संदरीए
जह भमलकुलाणं तत्थ जत्ता प्पउत्ता ॥ ४४ ॥

(नवकुरवकवृक्षः कुम्भस्थूलस्तन्या
रभसविरचितेन निर्भरालिङ्गनेन ।

अन्वयः—कुम्भस्थूलस्तन्या सुन्दर्या नवकुरबकवृक्षः रभसविरचितेन निर्भरालिंगनेन तथा कुसुमसमृद्धि लम्भितः, यथा भ्रमरकुलानाम् यात्रा तत्र प्रवृत्ता ।

व्याख्या—कुम्भाविव पीनपयोधरया सुन्दर्या रभसविरचितेन सहसा कृतेन निर्भरालिंगनेन गाढालिंगनेन नवकुरबकवृक्षः तथा कुसुमानां समृद्धिं सम्पदं लम्भितः

राजा—मित्र ! वह कैसी आज्ञा है ?

विदूषक—तमाल विटप में छिप कर देखो ।

(राजा वैसा ही करता है)

विचक्षणा—यह कुरबक का वृक्ष है ।

(कर्पूरमञ्जरी उसका आलिंगन करती है)

राजा—कुम्भों के समान स्थूल स्तनवाली अर्थात् खूब उभरे हुये स्तनवाली इस नायिका ने धकाधक किये हुये अपने प्रगाढ आलिंगन से नये कुरबक वृक्ष में इतने

टिप्पणी—कुम्भौ इव स्थूलौ स्तनौ यस्यास्तया कुम्भस्थूलस्तन्या = घटपीनपयोधरया ।

तथा कुसुमसमृद्धिं लम्भितः सुन्दर्या
यथा भ्रमरकुलानां तत्र यात्रा प्रवृत्ता ॥४४॥)

विदूषकः—भो ! पेक्ख पेक्ख महिंद्जालं जेण (भोः ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व महेन्द्रजालं येन)—

बालोवि कुरबअतरू तरुणीए गाढमुबगूढो ।
सहसत्ति पुप्फणिअरं मअससरं विअ समुग्गिरइ ॥ ४५ ॥
(बालोऽपि कुरवकतरुस्तरुण्या गाढमुपगूढः ।
सहसेति पुष्पनिकरं मदनशरमिव समुद्गिरति ॥ ४५ ॥)

राजा—इदिसो ज्जेव्व दोहदअस्स प्पभावो । (ईदृश एव दोहदस्य प्रभावः ।)

प्रापितः यथा भ्रमरकुलानां भ्रमरपंक्तीनां यात्रा तत्र प्रवृत्ता प्रसक्ता । पीनपयोधराया अस्याः आलिंगनेन नवकुरबकवृक्षे तथा पुष्पाणि आजग्मुः यथा भ्रमराः समन्तात् तत्र परिवेष्टितुं प्रेरेभिरे ॥ ४४ ॥

व्याख्या—बालः अपि शिशुरपि कुरबकतरुः कुरबकवृक्षः तरुण्या सुन्दर्या गाढम् निर्भरम् उपगूढः आलिंगितः सन् सहसैव पुष्पसंचयं मदनशरमिव समुद्गिरति समुद्गमति प्रकटीकरोति ॥ ४५ ॥

फूल खिला दिये हैं कि भौरों का वहाँ मंडराना प्रारम्भ हो गया है ॥ ४४ ॥

विदूषक—अरे ! इस जादू की विद्या को देखो, जिससे कि:—

इस छोटे से ही कुरबक वृक्ष पर इस सुन्दरी के प्रगाढ़ आलिंगन से यकायक ही कामदेव के बाणों की तरह फूल निकलने लगे हैं ॥ ४५ ॥

राजा—दोहद का प्रभाव ही ऐसा है ।

घट के समान उठे हुए स्तन वाली । रभसः=सहसा—यकायक । लम्भितः=प्राप्त कराया—√लम्भि+तः=लम्भितः ण्यन्त लभ् (लम्भि) से क्तप्रत्यय ॥ ४४ ॥

१. महेन्द्रजालम्=चमत्कार करने वाली कपट की विद्या ।

टिप्पणी—गाढमुपगूढः=खूब जोर से आलिंगन किया हुआ। समुद्गिरति=उगलता है—सम्+उद्+√गृ+अ+ति=समुद्गिरति—सम् उद् पूर्वक √गृ (तुदादि) से वर्तमान काल में प्रथमपुरुष का एकवचन ॥ ४५ ॥

विचक्षणा—अथ एसो तिलअद्दुमो। (अथैष तिलकद्रुमः।)

[कर्पूरमञ्जरी चिरं तिर्यगवलोकयति]

राजा—

तिक्खाणं तरलाणं कज्जलकलासंवग्गिदाणं पि से
पास्से पंचसरं सिलीमुहधरं णिच्चं कुणंताणं अ।
णेत्ताणं तिलअद्दुमे णिवडिदा घाडी मिअच्छीअ जं
तं सो मंजरिपुंजदंतुरसिरो रोमांचिदो व्व ट्ठिदो ॥ ४६ ॥

(तीक्ष्णयोस्तरलयोः कज्जलकलासंवल्गितयोरप्यस्याः
पार्श्वे पञ्चशरं शिलीमुखधरं नित्यं कुर्वतोश्च।
नेत्रयोस्तिलकद्रुमे निपतिता घाटी मृगाक्ष्या यत्
तत् स मञ्जरीपुञ्जदन्तुरशिरा रोमाञ्चित इव स्थितः ॥ ४६ ॥)

अन्वयः—तीक्ष्णयोः तरलयोः अपि कज्जलकलासंवल्गितयोः, नित्यं शिलीमुखधरम् पञ्चशरम् पार्श्वे कुर्वतोः च अस्याः मृगाक्ष्याः नेत्रयोः घाटी यत् तिलकद्रुमे निपतिता, तत् स मञ्जरीपुञ्जदन्तुरशिरा रोमाञ्चित इव स्थितः।

व्याख्या—तीक्ष्णयोः दीर्घकृशाग्रयोः तरलयोः चञ्चलयोः अपि कज्जलकलया अञ्जनरेखया संवल्गितयोः अलंकृतयोः, नित्यं सततं शिलीमुखधरम् बाणधरम् पञ्च-

---

विचक्षणा—यह तिलक का वृक्ष है।

(कर्पूरमंजरी बड़ी देर तक तिरछी निगाह से देखती है)

राजा—**हिरन जैसे नयनों वाली इस के तीक्ष्ण और चञ्चल, काजल लगे हुये तथा हमेशा बाण धारण किये हुये कामदेव को अपने पास करने वाले (रखने वाले) नेत्र ज्यों ही तिलक वृक्ष पर पड़े कि मंजरी के समूह से उसकी अग्रशाखायें इस तरह लद गईं जैसे कि उसे रोमाञ्च हो गया हो ॥ ४६ ॥**

टिप्पणी—पञ्च शराः सन्ति यस्य तम् पञ्चशरम् = कामदेवम्। शिलीमुखान् धरति तम् शिलीमुखधरम् = शरधरम् (कृदन्त)। मञ्जरीणां पुञ्जैः दन्तुराणि शिरांसि यस्य स मञ्जरीपुञ्जदन्तुरशिराः = मंजरी के समूह से नुकीले हो गये हैं अग्रभाग जिसके (बहुव्रीहि) ॥ ४६ ॥

विचक्षणा—एसो असोअसाही । (एष अशोकशाखी ।)

[कर्पूरमञ्जरी चरणताडनं नाटयति]

राजा—

असोअतरुताडणं रणिदणेउरेणंघिणा
किदं अ मिअलंछणच्छविमुहीअ हेलोल्लसं ।
सिहासु सुअलासु वि त्थवअमंडणाडंबरं
द्दिदं अ गअणंगणं जणणिरिक्खणिज्जं क्खणं ॥४७॥

(अशोकतरुताडनं रणितनूपुरेणाङ्घ्रिणा
कृतञ्च मृगलाञ्छनच्छविमुख्या हेलोल्लासम् ।

शरं कामदेवं पार्श्वे कुर्वतोः कामदेवशरसाम्यं दधतोः अस्याः मृगाक्ष्याः नेत्रयोः घाटी दर्शनव्यापारविशेषः यत् तिलकद्रुमे निपतिता, तत् तस्मात् स मञ्जरीणां पुञ्जैः दन्तुराणि सांकुराणि शिरांसि यस्य एवं भूतः रोमाञ्चित इव सञ्जातरोमाञ्च इव स्थितः वर्तते ॥ ४६ ॥

अन्वयः—मृगलाञ्छनच्छविमुख्या रणितनूपूरेण अंघ्रिणा हेलोल्लासम् अशोक-तरुताडनम् कृतम् च, सकलासु अपि शिखासु स्तबकमण्डनाडम्बरं गगनाङ्गनं क्षणम् जननिरीक्षणीयम् स्थितम् च ।

व्याख्या—चन्द्रवत् कान्तिमन्मुखं धारयन्त्या अनया कर्पूरमञ्जर्या नूपुराणां ध्वनिमता चरणेन हेलोल्लासम् सविलासम् अशोकतरुः पादेन आहतः, सकलासु

विचक्षणा—यह अशोक का वृक्ष है ।

(कर्पूरमंजरी पैर मारने का अभिनय करती है)

राजा—चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त मुखवाली इस कर्पूरमंजरी ने नूपुर बजते हुये अपने चरण से विलास पूर्वक ज्यों ही अशोक वृक्ष पर पादाघात किया

टिप्पणी—रणितः नूपुरः यस्मिन् तेन रणितनूपुरेण=नूपुरों के शब्द से युक्त। अंघ्रिः= चरण । मृगस्य लांछनमस्ति यस्य स मृगलाञ्छनः, तस्य छविः यस्य तत् मृगलाञ्छनच्छवि, तादृशं मुखं यस्याः तया मृगलाञ्छनच्छविमुख्या=चन्द्रवदनया । स्तवकानां मण्डनेन

शिखासु सकलास्वपि स्तवकमण्डनाडम्बरं
स्थितञ्च गगनाङ्गनं जननिरीक्षणीयं क्षणम् ॥४७॥)

विदूषकः—भो वअस्स ! जं सअं ण किदं दोहदअदाणं देवीए, जाणेसि एत्थ किं कारणं ? (भो वयस्य ! यत् स्वयं न कृतं दोहदकदानं देव्या, जानासि तत्र किं कारणम् ?)

राजा—तुमं जाणेसि ? (त्वं जानासि ?)

विदूषकः—भणामि, जइ देवो ण कुप्पदि । (भणामि, यदि देवो न कुप्यति ।)

राजा—को एत्थ रोसावसरो ? भण उम्मुद्दिआए जीहाए । (कोऽत्र रोषावसरः ? भण उन्मुद्रितया जिह्वया ।)

विदूषकः—

इह जइ वि कामिणीणं सुंदेरं धरइ अवअवाणं सिरी ।
अहिदेवदे व्व णिवसइ तह वि क्खु तारुण्णए लच्छी ॥ ४८ ॥

सर्वास्वपि शिखासु स्तबकविकाससमुज्ज्वलं गगनाङ्गनं गगनाजिरं क्षणं क्षणेनैव जनानां निरीक्षणीयम् दर्शनीयम् स्थितं च सञ्जातञ्च । चकारद्वयेनात्र यौगपद्यं द्योत्यते ॥४७॥

कि क्षण मात्र में ही सब चोटियों पर गुच्छों के खिलने से चमकता हुआ आकाश सुन्दर हो गया ॥ ४७ ॥

विदूषक—मित्र ! महारानी ने स्वयं दोहद देने का कार्य नहीं किया, क्या इसका कारण जानते हो ?

राजा—क्या तुम जानते हो ?

विदूषक—कहूँ यदि श्रीमान् क्रोध न करें ।

राजा—इसमें क्रोध का क्या अवसर है, जबान खोलकर कहो ?

विदूषक—संसार में यद्यपि स्त्रियों के अंगो की शोभा में ही सौन्दर्य होता है,

---

आडम्बरः यस्य तत् स्तबकमण्डनाडम्बरम् = स्तबकविकाससमुज्ज्वलम् । जनानां निरीक्षणीयम् = जननिरीक्षणीयम् = सुन्दरम् । उन्मुद्रिता = खुली हुई स्वच्छन्द ॥ ४७ ॥

(इह यद्यपि कामिनीनां सौन्दर्यं धारयत्यवयवानां श्रीः ।
अधिदेवतेव निवसति तथाऽपि खलु तारुण्ये लक्ष्मीः ॥ ४८ ॥)

राजा—सुणिदो दे अहिप्पाओ। किं उण किं वि भणामो—
(श्रुतस्तेऽभिप्रायः। किं पुनः किमपि भणामः)—

बालाअ होंति कोदूहलेण एअमेअ चवलचित्ताओ ।
दरलसिदथणीसु पुणो णिवसइ मअरद्धअरहस्सं ॥ ४९ ॥

(बाला भवन्ति कौतूहलेनैवमेवं चपलचित्ताः ।
दरलसितस्तनीषु पुनर्निवसति मकरध्वजरहस्यम् ॥ ४९ ॥)

अन्वयः—इह यद्यपि कामिनीनाम् अयवानाम् श्रीः सौन्दर्यम् धारयति, तथापि तारुण्ये लक्ष्मीः अधिदेवता इव निवसति ।

सरलार्थः—इह संसारे यद्यपि कामिनीनाम् रमणीनाम् अवयवानाम् अङ्गानाम् श्रीः सौन्दर्यं धारयति, यद्यपि कामिनीनां सर्वेऽवयवाः सुन्दराः भवन्ति, तथापि तारुण्ये यौवने लक्ष्मीः सौन्दर्यम् अधिदेवतेव अधिष्ठात्री देवीव निवसति तिष्ठति । तारुण्ये खलु अद्भुतं सौन्दर्यमुत्पद्यते ॥ ४८ ॥

सरलार्थः—बालाः नवयुवत्योऽपि कौतूहलेन यौवनसुखोपभोगोत्सुकतया एवमेवं चपलचित्ताः तरलहृदयाः भवन्ति, यासां तु स्तनौ ईषदुन्मिषितौ तासु तु मन्मथस्य रहस्यं रतिसर्वस्वम् निवसति ॥ ४९ ॥

फिर भी युवावस्था में सौन्दर्य अधिष्ठात्री देवता की तरह रहता है, अर्थात् युवावस्था में विशेष सौन्दर्य दिखाई पड़ता है ॥ ४८ ॥

राजा—**तेरा अभिप्राय सुना। फिर भी कुछ कहता हूँ :—**

बालायें कुतूहल से इसी तरह चञ्चल चित्तवाली होती हैं। जिनके कुछ कुछ स्तन उभर आये हों, उनमें तो काम का रहस्य ही छिपा रहता है ॥ ४९ ॥

टिप्पणी—दरम् लसितौ स्तनौ यासां तासु = दरलसितस्तनीषु = ईषदुन्मिलतिस्तनीषु—कुछ कुछ उठे हुए स्तनों वाली ॥ ४९ ॥

विदूषकः—तरुणो वि रूअरेहारहस्सेण फुल्लंति, ण उण रइरहस्सं जाणंति। (तरवोऽपि रूपरेखारहस्येन विकसन्ति, न पुनः रतिरहस्यं जानन्ति।)

[नेपथ्ये]

वैतालिकः—सुहसंझा भोदु देवस्स (सुखसन्ध्या भवतु देवस्य)—

लोआणं लोअणेहिं सह कमलवणं अद्धणिद्दं कुणंतो
मुंचंतो तिक्खभावं सह अ सरभसं माणिणीमाणसेहिं।
मंजिट्ठारत्तसुत्तच्छविकिरणचओ चक्कवाएक्कमित्तो
जादो अत्थाचलत्थी सपदि दिणमणी पक्कणारंगपिंगो ॥५०॥

(लोकानां लोचनैः सह कमलवनमर्द्धनिद्रं कुर्वन्
मुञ्चंस्तीक्ष्णभावं सह च सरभसं मानिनीमानसैः।
मञ्जिष्ठारक्तसूत्रच्छविकिरणचयश्चक्रवाकैकमित्रं

अन्वयः—मञ्जिष्ठारक्तसूत्रच्छविकिरणचयः चक्रवाकैकमित्रम् पक्वनारङ्गपिङ्गः दिनमणिः लोकानाम् लोचनैः सह कमलवनम् अर्धनिद्रम् कुर्वन्, मानिनीमानसैः सह सरभसम् तीक्ष्णभावं च मुञ्चन्, सपदि अस्ताचलार्थी जातः।

व्याख्या—मञ्जिष्ठारागेण रक्तसूत्राणामिव कान्तिमन्तं किरणसमूहं धारयन्,

---

विदूषक—वृक्ष भी सौन्दर्य के प्रभाव से खिल उठते हैं, यद्यपि वे रतिरहस्य नहीं जानते हैं।

(नेपथ्य में)

वैतालिक—महाराज के लिये सन्ध्या सुखकर हो:—

मंजिष्ठा राग से रंगे हुये सूत्रों की तरह कान्तिवाली किरणों को धारण करने वाला, चक्रवाक पक्षियों का परम मित्र तथा पकी हुई नारंगी के समान लाल और पीला सूर्य लोगों की आंखों के साथ साथ कमल वन को निमीलित सा करता हुआ,

टिप्पणी—अर्धं निद्रा यस्य तत्-अर्धनिद्रम्=निमीलितप्रायम्=अधमिचा। मञ्जिष्ठया रक्तं मञ्जिष्ठारक्तम्-मञ्जिष्ठारक्तं च यत् सूत्रं=मञ्जिष्ठारक्तसूत्रं, तद्वत् छविः यस्य सः मञ्जिष्ठारक्तसूत्रच्छविः, तथाविधः किरणचयः यस्य=मञ्जिष्ठारक्तसूत्रच्छविकिरणचयः-लाल सूत्र की तरह कान्ति

जातोऽस्ताचलार्थी सपदि दिनमणिः पक्वनारङ्गपिङ्गः ॥५०॥)

राजा—भो वअस्स ! संणिहिदो संझासमओ वट्टदि । (भो वयस्य ! सन्निहितः सन्ध्यासमयो वर्त्तते ।)

विदूषकः—संकेअकालो कहिदो बंदीहिं । (सङ्केतकालः कथितो वन्दिभिः ।)

कर्पूरमञ्जरी—सहि विअक्खणे ! गमिस्सं दाव, विआलो संवुत्तो वट्टदि । (सखि विचक्षणे ! गमिष्यामि तावत् । विकालः संवृत्तो वर्त्तते ।)

विचक्षणा—एव्वं करीअदु । (एवं क्रियताम् ।)

[इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति द्वितीयजवनिकान्तरम्

चक्रवाकाणां मुख्यं मित्रम्, पक्वं नारङ्गमिव पीतरक्तः दिनमणिः सूर्यः लोकानां जनानां लोचनैः सह कमलवनम् अर्धनिद्रं मुकुलितं कुर्वन्, यथा सन्ध्यायां मानिन्यः प्रणयकोपं त्यजन्ति तथा स्वतीक्ष्णभावं परिहरन् सपदि क्षणादेव अस्ताचलार्थी अस्ताचलं जिगमिषुः जातः ॥ ५० ॥

मानिनियों के मन के साथ साथ अपने तेज को घटाता हुआ एक दम अस्ताचल की ओर जाने लगा है ॥ ५० ॥

राजा—मित्र ! सन्ध्या समय निकट आगया है ।

विदूषक—वन्दिगणों ने संकेत काल बता दिया है ।

कर्पूरमञ्जरी—सखि विचक्षणे ! मैं तो चलूँगी, शाम हो रही है ।

विचक्षणा—ऐसा ही करो ।

(घूम कर सब चले जाते हैं)

वाली किरणों से युक्त । दिनमणिः=सूर्य । पक्वं च तत् नारंगं=पक्वनारंगम् तद्वत् पिंगः= पक्वनारङ्गपिंगः=पकी हुई नारंगी के समान लाल और पीला । जिस तरह मानिनी स्त्रियाँ सन्ध्या होने पर अपने प्रेमियों से मान करना छोड़ देती हैं उस तरह अपनी तीव्रता को सूर्य भी छोड़ देता है ॥ ५० ॥

दूसरा जवनिकान्तर समाप्त

तृतीयं जवनिकान्तरम्

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—[तामनुसन्धाय[1]]—

दूरे किज्जदु चंपअस्स कलिआ कज्जं हरिद्दाअ किं ?
उत्तत्तेण अ कंचणेण गणणा का णाम जच्चेण वि।
लावण्णस्स णवुग्गदेंदुमहुरच्छाअस्स तिस्सा पुरो
पच्चग्गेहिं वि केसरस्स कुसुमक्केरेहिं किं कारणं ॥ १ ॥

(दूरे क्रियतां चम्पकस्य कलिका कार्यं हरिद्रायाः किम् ?
उत्तप्तेन च काञ्चनेन गणना का नाम जात्येनापि ?
लावण्यस्य नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य तस्याः पुरः

अन्वयः—चम्पकस्य कलिका दूरे क्रियताम्, हरिद्रायाः कार्यम् किम् ? नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य तस्याः लावण्यस्य पुरः जात्येन अपि उत्तप्तेन काञ्चनेन का नाम गणना ? प्रत्यग्रैः अपि केसरस्य कुसुमोत्करैः किम् कारणम् ? ।

व्याख्या—चम्पकस्य कलिका दूरे क्रियताम्, हरिद्रायाः कार्यम् प्रयोजनं किम्, न किमपीत्यर्थः। नवोद्गतस्य नवोदितस्य इन्दोः चन्द्रस्येव मधुरां मनोहारिणीं कान्ति धारयतः तस्याः कर्पूरमञ्जर्याः लावण्यस्य पुरः अग्रतः जात्येन उत्कृष्टेन उत्तप्तेन ज्वलता काञ्चनेन सुवर्णेनापि का नाम गणना को विचारः ? न कोऽपीत्यर्थः ।

(राजा और विदूषक रंगमंच पर आते हैं)

राजा—(उसको याद कर):—

चम्पा की कली को दूर रखो, हल्दी से भी क्या प्रयोजन ? नवीन चन्द्रमा की तरह मधुर कान्तिवाले कर्पूरमञ्जरी के लावण्य के सामने विशुद्ध और तपे हुये सोने की भी क्या गिनती ? नये केसर के फूलों से क्या फल ? अर्थात् कर्पूरमञ्जरी

---

१. अनुसन्धाय=स्मरण कर-अनु+सम्+√धा+य-ल्यबन्त।

टिप्पणी—हरिद्रा=हल्दी। जात्य=उत्तम। लावण्य=मोतियों की तरल छाया की तरह अंगों में चमकने वाली कान्ति। नवश्चासौ उद्गतः=नवोद्गतः, नवोद्गतश्चासौ इन्दुः=

प्रत्यग्रैरपि केसरस्य कुसुमोत्करैः किं कारणम् ? ॥ १ ॥)

अवि अ (अपि च)—

मरगअमणिजुट्ठा हारजट्ठि व्व तारा
भमरकवलिअद्धा मालईमालिए व्व ।
रहसवलिअकंठी तीअ दिट्ठी वरिट्ठा
सवणपहणिविट्ठा माणसं मे पविट्ठा ॥ २ ॥

(मरकतमणिजुष्टा हारयष्टिरिव तारा
भ्रमरकवलितार्द्धा मालतीमालिकेव ।

प्रत्यग्रैः अभिनवैः केसरस्य वकुलस्य कुसुमोत्करैः पुष्पसञ्चयैः किं कारणम् फलम् ? न किमपीत्यर्थः । कर्पूरमञ्जर्याः लावण्यं न कस्याप्युपमां क्षमेत । चम्पककलिका हरिद्रा तप्तकाञ्चनं केसरकुसुमञ्चापि न तदुपमानयोग्यानि ॥' 'मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा । प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते । इति लावण्यलक्षणम् ॥

अन्वयः—तस्याः रभसवलितकण्ठी वरिष्ठा दृष्टिः मरकतमणिजुष्टा तारा हारयष्टिः, इव, भ्रमरकवलितार्धा मालतीमालिका इव, श्रवणपथनिविष्टा मे मानसं प्रविष्टा ।

व्याख्या—रभसेन वेगेन हर्षेण वा दर्शकानां कण्ठं ध्यानं स्वाभिमुखमाकर्षन्ती

के सौन्दर्य की चम्पा, हरिद्रा, तपे हुये सोने तथा केसर के फूल इन किसी से भी उपमा नहीं बन सकती ॥ १ ॥

और भीः—

वेग से अथवा प्रसन्नता से दर्शकों के ध्यान को अपनी ओर खींचने वाली कर्पूरमञ्जरी की सुन्दर दृष्टि श्यामवर्ण की मरकत मणियों से युक्त उत्तम हार की

नवोद्गतेन्दुः, तस्येव मधुरा छाया यस्य तस्य नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य = नवोदितचन्द्रमधुरकान्तेः । प्रत्यग्र = नया । कुसुमोत्कर = फूलों का समूह ॥ १ ॥

टिप्पणी—मरकतमणिभिः जुष्टा = मरकतमणिजुष्टा = हरिन्मणियुक्ता । तारा = उत्तम । भ्रमरैः कवलितम् अर्धं यस्याः सा भ्रमरकवलितार्धा = भ्रमरग्रस्तार्धा = भौंरों से आधी घिरी हुई । रभसेन वलितः कण्ठो (दर्शकानामिति यावत्) यया सा रभसवलितकण्ठी = रभसाकृष्ट-

रभसवलितकण्ठी तस्या दृष्टिर्वरिष्ठा
श्रवणपथनिविष्टा मानसं मे प्रविष्टा ॥ २ ॥)

विदूषकः—भो बअस्स ! किं तुमं भज्जाजिदो विअ किंपि किंपि कुरुकुराअंतो चिट्ठसि ? । (भो वयस्य ! किं त्वं भार्याजित इव किमपि किमपि कुरुकुरायमाणस्तिष्ठसि ?)

राजा—बअस्स ! सिविणअं दिट्ठमणुसंधेमि । (वयस्य ! स्वप्नं दृष्टमनुसन्दधामि ।)

विदूषकः—ता कहेदु प्पिअबअस्सो (तत् कथयतु प्रियवयस्यः ?)

राजा—

जाणे पंकरुहाणणा सिविणए मं केलिसज्जागदं
कंदोट्टेण तडित्ति ताडिदुमणा हत्थंतरे संठिदा ।

तस्याः वरिष्ठा उत्कृष्टा दृष्टिः मरकतमणिभिः श्यामलैः हरित्मणिभिः जुष्टा युक्ता तारा उत्तमा हारयष्टिरिव, भ्रमरैः अर्धग्रसिता मालतीमालिका इव, श्रवणपथनिविष्टा आकर्णकृष्टा दीर्घायतेत्यर्थः मे मम मानसं हृदयं प्रविष्टा । कर्पूरमञ्जर्याः नयने मम हृदि सन्निविष्टे, अहं मनसा सततमेव तन्नयने ध्यायामि ॥ २ ॥

तरह, भ्रमरों से आधी घिरी हुई मालती पुष्पों की माला की तरह और उसके कानों तक खिंची हुइ मेरे मन में समा गई है ॥ २ ॥

विदूषक—मित्र ! पत्नी द्वारा जीते हुये पुरुष की तरह यह तुम क्या कुरकुराते हो ?

राजा—मित्र ! एक स्वप्न देखा था, उसे याद कर रहा हूँ ।

विदूषक—प्रियमित्र ! मुझे भी बतलाओ ?

राजा—मुझे ऐसा याद पड़ता है, कि कमल के समान मुख वाली वह कर्पूर-

---

ध्याना–एकाएक दर्शकों का अपनी ओर ध्यान खींचने वाली । वरिष्ठा=उत्कृष्टा–अतिशयेन उरुरिति वरिष्ठा–उरु शब्द से इष्ठन् प्रत्यय और वर् आदेश । श्रवणयोः पन्थाः=श्रवणपथः, तम् निविष्टा=श्रवणपथनिविष्टा=कर्णपर्यन्तमाकृष्टा ॥ २ ॥

टिप्पणी—भार्यया जितः=भार्याजितः=कान्तावशंवदः, स्त्रैणः । कुरुकुरायमाणः= कुरकुर करता हुआ–अनुकरणात्मक शब्द ।

ता कोडेण मए वि झत्ति धरिदा ठिल्लं वरिल्लंचले
तं मोत्तूण गदं अ तीअ सहसा णट्टा अ णिद्दा वि मे ॥३॥
(जाने पङ्करुहानना स्वप्ने मां केलिशय्यागतम्
इन्दीवरेण झटिति ताडितुमना हस्तान्तरे संस्थिता ।
तत् कौतूहलेन मयाऽपि झटिति धृता शिथिलं वस्त्राञ्चले
तन्मोचयित्वा गतं तथा च सहसा नष्टा च निद्राऽपि मे ॥३॥)

अन्वयः—जाने, पङ्करुहानना (सा) स्वप्ने केलिशय्यागतम् माम् इन्दीवरेण ताडितुमनाः झटिति हस्तान्तरे संस्थिता । तत् मया अपि कौतूहलेन झटिति वस्त्राञ्चले शिथिलं धृता, तया तत् मोचयित्वा सहसा गतम्, मे निद्रा अपि नष्टा च ।

व्याख्या—जाने स्मरामि, कमलानना सा कर्पूरमञ्जरी स्वप्ने केलिशय्यागतम् क्रीडातल्पशायिनम् माम् इन्दीवरेण नीलोत्पलेन नयनेनेति भावः। ताडितुमनाः प्रहर्तुकामा झटिति सहसा हस्तान्तरे संस्थिता संनिषण्णा। तत् तदा मयाऽपि कौतूहलेन उत्सुकतया झटिति वस्त्राञ्चले वसनप्रान्ते शिथिलं यथास्यात्तथा धृता गृहीता, तया तत् मम धारणम् मोचयित्वा सहसा गतं प्रस्थितम् च, मे मम निद्रा अपि नष्टा च। चकारद्वयं यौगपद्यद्योतनार्थम्, यदैव सा गता तदैव मे निद्राऽपि भग्ना॥ ३ ॥

मञ्जरी स्वप्न में मेरी विहारशय्या पर आई और नीलकमल जैसे अपने नेत्रों से प्रहारकरने की इच्छा से एकाएक मेरी भुजाओं के बीच बैठ गई। तब मैंने भी कुतूहल से एक दम अपने अञ्चल में धीरे से उसको पकड़ा, लेकिन वह छुड़ाकर भाग गई और मेरी निद्रा भी टूट गई ॥ ३ ॥

टिप्पणी—पङ्के रोहति=पङ्करुहः (कृदन्त क (अ) प्रत्यय)। पङ्करुहस्येव आननम् यस्याः सा पङ्करुहानना=कमलवदना। इन्दीवर=नीलकमल (नयन)। ताडितुं मनः यस्याः सा ताडितुमनाः। 'तं काममनसोरपि' इस सूत्र से मकार का लोप। मोचयित्वा=√मोचि+इ+त्वा–ण्यन्त मुच् धातु से त्वा प्रत्यय ॥ ३ ॥

विदूषकः—[स्वगतम्] भोदु एव्वं दाव। [प्रकाशम्] भो वअस्स! अज्ज मए वि सिविणं दिट्ठं। (भवतु एवं तावत् (प्रकाशम्) भो वयस्य ! अद्य मयाऽपि स्वप्नो दृष्टः।)

राजा—[सप्रत्याशम्] ता कहिज्जदु कीरिसं तं सिविणअं? (तत् कथ्यतां कीदृशः स स्वप्नः ?)

विदूषकः—अज्ज जाणे, सिविणए सुरसरिआसोत्ते सुत्तोम्हि, ता हरसिरसोवरि दिण्णलीलाचलणाए गंगाए पक्खालिदोम्हि तोएण। (अद्य जाने, स्वप्ने सुरसरितस्रोतसि सुप्तोऽस्मि; तद्धरशिरस उपरि दत्तलीलाचरणाया गङ्गायाः प्रक्षालितोऽस्मि तोयेन।)

राजा—तदो तदो? (ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो सरअसमअवरिसिणा जलहरेण जहिच्छं पीदोम्हि। (ततः शरत्समयवर्षिणा जलधरेण यथेच्छं[1] पीतोऽस्मि।)

राजा—अच्छरिअं !! अच्छरिअं !! तदो तदो ? (आश्चर्यमाश्चर्यम् !! ततस्ततः ?)

विदूषक—(अपने मनमें) होगा ऐसा। (प्रकाशमें) मित्र ! आज मैंने भी स्वप्न देखा है।

राजा—(प्रत्याशा के साथ) बताओ तो तुम्हारा स्वप्न कैसा है ?

विदूषक—आज ऐसा लगता है मानो स्वप्न में गंगा के प्रवाह में सो गया हूँ और फिर शिवजी के सिर पर लीला में चरण रखने वाली गंगा के जल से जैसे मुझे स्नान करा दिया गया है।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर शरत् ऋतु में बरसने वाले बादलों में खूब भीगा।

राजा—आश्चर्य है ! आश्चर्य है ! फिर क्या हुआ ?

---

१. इच्छामनतिक्रम्य यथेच्छम् (अव्ययीभाव) इच्छा के अनुसार।

विदूषकः—तदो सत्तिणक्खत्तगदे भअवइ मत्तंडे तम्मवण्णी-णईसंगदं समुद्दं गदो महामेहो; जाणे, अहं वि मेहगब्भट्ठिदो गच्छेमि । (ततः स्वातीनक्षत्रगते भगवति मार्त्तण्डे ताम्रपर्णीनदीसङ्गतं समुद्रं गतो महामेघः; जाने, अहमपि मेघगर्भस्थितो गच्छामि ।)

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो सो तहिं थूलजलबिंदूहिं वरिसिदुं पउत्तो । अहं अ रअणाअरसुत्तीहिं मुत्ताणामहेआहिं संपुडं समुग्घाडिअ जलबिंदूहिं समं पीदोम्हि; ताणं अ दसमासप्पमाणं मोत्ताहलं भविअ गब्भे ट्ठिदो । (ततोऽसौ तत्र स्थूलजलबिन्दुभिर्वर्षितुं प्रवृत्तः, अहञ्च रत्नाकरशुक्तिभिर्मुक्तानामधेयाभिः सम्पुटं समुद्घाट्य जल-बिन्दुभिः समं पीतोऽस्मि, तासाञ्च दशमाषप्रमाणं मुक्ताफलं भूत्वा गर्भे स्थितः ।)

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषक—तब भगवान् सूर्य के स्वाती नक्षत्र में पहुँचने पर महामेघ ताम्रपर्णी नदी से मिले हुये समुद्र पर गया, याद पड़ता है जैसे मैं भी मेघ के गर्भ में चला आ रहा था ।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर यह वहाँ पर बड़ी बड़ी बूँदों के साथ बरसने लगा, मुझे भी समुद्र में रहने वाली मुक्ता नाम की सीपियाँ आवरण तोड़ कर जल की बूँदों के साथ पी गईं । दस माष (पचास घुंघची) के बराबर आकार का मोती बनकर मैं उनके गर्भ में रहा ।

राजा—फिर, फिर ?

टिप्पणी—सम्पुट = आवरण । समुद्घाट्य = निर्भिद्य-तोड़ कर । समम्-साथ । माष = पांच घुंघुची के बराबर-'दशार्धगुञ्जं प्रवदन्ति माषम् ।' (लीलावती) ।

विदूषकः—

तदो चउस्सट्ठिसु सुत्तिसु ट्ठिदो
घणंबुबिंदूजिदवंसरोअणो।
सुवत्तुलं णित्तलमच्छमुज्जलं
कमेण पत्तो णवमुत्तिअत्तणं ॥ ४ ॥

(ततश्चतुःषष्टिषु शुक्तिषु स्थितो
घनाम्बुबिन्दुर्जितवंशरोचनः ।
सुवर्त्तुलं निस्तलमच्छमुज्ज्वलं
क्रमेण प्राप्तो नवमौक्तिकत्वम् ॥ ४ ॥)

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो सोहमत्ताणं ताणं सुत्तीणं गब्भगअं मुत्ताहलत्तणेण मण्णेमि । (ततः सोऽहमात्मानं तासां शुक्तीनां गर्भगतं मुक्ताफलत्वेन मन्ये ।)

अन्वयः—ततः चतुःषष्टिषु शुक्तिषु स्थितः घनाम्बुबिन्दुः जितवंशरोचनः (अहम्) सुवर्तुलम् निस्तलम् अच्छम् उज्ज्वलम् नवमौक्तिकत्वम् क्रमेण प्राप्तः ।

सरलार्थः—ततः चतुःषष्टिषु शुक्तिषु स्थितः घनाम्बुबिन्दुसमानः वंशरोचनादपि उत्कृष्टः अहम् सुवर्तुलं गोलाकारं निस्तलम् कान्तिमत् उज्ज्वलं नवमौक्तिकत्वं क्रमेण प्राप्तः नवमौक्तिकोऽभूवम् ॥ ४ ॥

विदूषक—**फिर ६४ सीपियों के अन्दर स्थित जल की बूँद के समान और वंशलोचन से भी उत्कृष्ट मैं गोल और चमकीले नये मोती में धीरे धीरे बदल गया ॥४॥**

राजा—**फिर, फिर ?**

विदूषक—**तब उन शुक्तियों के गर्भ में पड़ा हुआ मैं अपने को मोती समझने लगा।**

टिप्पणी—चतुःषष्टि=चौसठ। जितं वंशरोचनं येन सः जितवंशरोचनः=तिरस्कृत वंशरोचनः। सुवर्तुलम्=खूब गोल ॥ ४ ॥

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो परिणदे काले समुद्दाहिंतो कड्ढिदाओ ताओ सुत्तीओ फाडिदाओ अ । अहं चतुस्सट्ठिमुत्ताहलत्तणं गदो ट्ठिदो । किणिदो अ एक्केण सेट्ठिणा सुवण्णलक्खं देइअ । (ततः परिणते काले समुद्रात् कर्षितास्ताः शुक्तयः विदारिताश्च । अहं चतुःषष्टिमुक्ताफलत्वं गतः स्थितः । क्रीतश्चैकेन श्रेष्ठिना सुवर्णलक्षं दत्त्वा ।)

राजा—अहो ! विचित्तदा सिविणअस्स । तदो तदो ? (अहो ! विचित्रता स्वप्नस्य । ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो तेण आणिअ वेधआरएहिं वेधाविआइं मोत्तिआइं । मम वि ईसीसि वेअणा समुप्पण्णा । (ततस्तेनानीय वेधकारै[१]र्वेधितानि मौक्तिकानि । ममापीषद्वेदना समुत्पन्ना ।)

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो (ततः)—

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर समय बीतने पर वे सीपियाँ समुद्र से निकाल ली गई और फोड़ी गई । मैं चौसठ मोतियों के रूप में था । एक सेठ ने सुवर्णलक्ष देकर मुझे मोल ले लिया ।

राजा—अरे ! बड़ा विचित्र स्वप्न है । फिर क्या हुआ ?

विदूषक—तब उसने वेधकारों को बुलाकर मोतियों में छेद कराये । मुझे भी कुछ वेदना हुई ।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—तब फिर :—

टिप्पणी—कर्षिताः = निकाला । विदारिताः = फोड़ा गया ।

१. वेधकार = छेद करने वाला ।

तेणावि मुत्ताहलमंडलेण एक्केक्कदाए दसमासिएण।
एक्कावली गंठिकमेण गुत्था जा संठिदा कोटिसुवण्णमुल्ला ॥५॥

(तेनापि मुक्ताफलमण्डलेनैकैकतया दशमाषिकेण।
एकावली[1]ग्रन्थिक्रमेण गुम्फिता सा संस्थिता कोटिसुवर्णमूल्या ॥५॥)

राजा—तदो तदो ?

विदूषकः—तदो तं करंडिआइ कदुअ साअरदत्तो णाम वाणिओ गदो पंचालाधिपस्स सिरिवज्जाउहस्स णअरं कण्णउज्जं णाम; तहिं च सा विक्किणीदा कोडीए सुवण्णस्स। (ततस्तां करण्डिकायां[2] कृत्वा सागरदत्तो नाम वणिक् गतः पाञ्चालाधिपस्य श्रीवज्रायुधस्य नगरं कान्यकुब्जं नाम। तत्र च सा विक्रीता[3] कोट्या सुवर्णस्य।)

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो अ (ततश्च

सरलार्थः—तेन श्रेष्ठिना अपि मुक्ताफलमण्डलेन एकैकतया प्रत्येकशः दशमाषिकेण दशमाषमितेन एकावली एकसरो हारः ग्रन्थिक्रमेण ग्रन्थानुसारेण गुम्फितः। तस्य च कोटिसुवर्णमासीत् ॥ ५ ॥

उस सेठ ने भी दस दस माष के बराबर (पचास पचास घुंघची) मोतियों से एक एक लड़ वाला हार बनवाया, उसका मूल्य कोटि सुवर्ण था ॥ ५ ॥

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर उस हार को करण्डिका में रखकर सागरदत्त नाम का बनिया पाञ्चाल देश के राजा श्रीवज्रायुध के कान्यकुब्ज नगर में गया। उसने वहाँ उस हार को सुवर्ण की एक कोटि में बेच दिया।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिरः—

१. एकावली = एक लड़ वाला हार।
२. करण्डिका = एक पात्र का नाम। ३. विक्रीता = बेच दी

दट्टूण थोरत्थणतुंगिमाणं एक्कावलीए तह चंगिमाणं ।
सा तेण दिण्णा दइदाइ कंठे रज्जंति छेआ समसंगमम्मि ॥ ६ ॥
(दृष्ट्वा स्थूलस्तनतुङ्गिमानमेकावल्यास्तथा चङ्गिमानम् ।
सा तेन दत्ता दयितायाः कण्ठे रज्यन्ति च्छेकाः समसङ्गमे ॥६॥)

अवि अ (अपि च)—

णहवहलिदजोण्हाणिब्भरे रत्तिमज्झे
कुसुमसरपहारत्ताससंमीलिदाणं ।
णिहुवणपरिरंभे णिब्भरुत्तुंगपीण-
त्थणकलसणिवेसा पीडिदोहं विबुद्धो ॥ ७ ॥
(नभोवहलितज्योत्स्नानिर्भरे रात्रिमध्ये

अन्वयः—तेन स्थूलस्तनतुंगिमानम्, तथा एकावल्याः चङ्गिमानम् दृष्ट्वा सा दयितायाः कण्ठे दत्ता । छेकाः समसंगमे रज्यन्ति ।

व्याख्या—तेन पाञ्चालाधिपेन वज्रायुधेन स्वदयितायाः स्थूलयोः स्तनयोः पयोधरयोः तुंगिमानम् पीनत्वम्, तथा एकावल्याः हारस्य चङ्गिमानं सौन्दर्यं च दृष्ट्वा सा एकावली दयितायाः कण्ठे दत्ता । छेकाः विदग्धा समसंगमे रज्यन्ति प्रसन्नाः भवन्ति । स्तनयोरेकावलीसंगमः आनन्ददायक इत्यर्थः ॥ ६ ॥

व्याख्या—यदा नभसि आकाशे ज्योत्स्नानां चन्द्रिकाणां निर्भरः अतिशयः

पाञ्चाल देश के राजा वज्रायुध ने अपनी रानी के उठे हुये स्तनों के उभार तथा एकावली हार के सौन्दर्य को देखकर वह हार अपनी रानी के गले में पहिना दिया। विद्वान् बराबर का बराबर वाले के साथ संगम देख कर प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥

और भी:—

आकाश में जब खूब चांदनी खिली हुई थी, ऐसी मध्यरात्रि में कामदेव के

टिप्पणी—तुंगस्य भावः = तुंगिमा = ऊँचाई–तुंग शब्द से भावार्थक इमनिच् प्रत्यय। चंगिमा = सौन्दर्य। रज्यन्ति = प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥

टिप्पणी—ज्योत्स्नानां निर्भरः = ज्योत्स्नानिर्भरः–नभसि वहलितः ज्योत्स्नानिर्भरः

कुसुमशरप्रहारत्राससम्मिलितयोः ।
निधुवनपरिरम्भे निर्भरोत्तुङ्गपीन-
स्तनकलशनिवेशात्पीडितोऽहं विबुद्धः ॥ ७ ॥)

राजा—[किञ्चिद्विहस्य विचिन्त्य च]—

सिविणअमिअं असच्चं तं दिट्ठं मेणुसंधमाणस्स ।
पडिसिविणएण तस्स बि णिआरणं तुह अहिप्पाओ ॥८॥

(स्वप्नमिममसत्यं तत् दृष्टं ममानुसन्दधतः ।
प्रतिस्वप्नेन तस्यापि निवारणं तवाभिप्रायः ॥ ८ ॥)

प्रसृतः अभवत् तादृशे रात्रिमध्ये कुसुमशरस्य कामस्य प्रहारात् त्रासेन भयेन च सम्मिलितयोः संगतयोः तयोः राजदम्पत्योः निधुवनपरिरम्भे संभोगकालीनालिङ्गने निर्भरोत्तुंगयोः नितरामुन्नतयोः पीनयोः स्थूलयोः स्तनकलशयोः निवेशात् सम्पातात् पीडितः अहं विबुद्धः जागरितवान् । यदा रात्रौ राजा स्वदयितां रन्तुमारब्धः, संयोगकाले च तां प्रगाढमालिङ्गितवान् तदा तस्याः स्तनयोः सम्पातादहं पीडितोऽभवम् । अतः सपदि एव जागरितः ॥ ७ ॥

अन्वयः—तत् इमम् असत्यम् दृष्टं स्वप्नम् अनुसन्दधतः मम प्रतिस्वप्नेन तस्य अपि निवारणम् तव अभिप्रायः अस्तीति शेषः ।

सरलार्थः—मया असत्यमेव स्वप्नो दृष्टः, स्वप्रतिस्वप्न कथनेन त्वया तस्य निवारणं कृतमित्यर्थः ॥ ८ ॥

प्रहार और डर से मिले हुये उन राजदम्पती की जब सुरतक्रीडा प्रारम्भ हुई तब आलिंगन में घट के समान खूब उठे हुये स्तनों के बैठ जाने से मुझ पर दबाव पड़ा और मैं जाग गया ॥ ७ ॥

राजा—**(कुछ हंसकर और विचार कर)**:—

मैं इस झूठे स्वप्न का ध्यान कर रहा था । अपने प्रति स्वप्न को सुना कर तूने मुझे स्वप्न के याद करने से भी रोक दिया ॥ ८ ॥

यस्मिन् तस्मिन् नभोबहलितज्योत्स्नानिर्भरे=आकाशप्रसृतज्योत्स्नातिशये । कुसुमशरस्य प्रहारात् त्रासेन सम्मिलितयोः=कामदेवप्रहारभयसंगतयोः । निधुवनं सम्भोगः तस्मिन्

विदूषकः—भट्टो ठक्कुरो, क्खुहाकिलंतो बम्हणो, अविणीदहिअआ बालरंडा, विरहिदो अ माणुसो मणोरहमोदएहिं अत्ताणं विडंबेदि। अवि अ बअस्स ! पुच्छेमि, कस्स उण एसो प्पहाओ ? (भ्रष्टो राजा, क्षुधाक्रान्तो ब्राह्मणः, अविनीतहृदया बालरण्डा, विरहितश्च मानुषो मनोरथमोदकैरात्मानं विडम्बयति। अपि च वयस्य ! पृच्छामि, कस्य पुनरेष प्रभावः ?)

राजा—प्पेमस्स। (प्रेम्णः।)

विदूषकः—भो ! देवीगदे प्पणअप्परूढे वि प्पेमे किं त्ति कप्पूरमंजरी सव्वंगवित्थारिदलोअणो पिअंतो विअ अवलोएसि ? किं तदो वि परिहोअमाणगुणा देवी ? (भोः ! देवीगते प्रणयप्ररूढेऽपि प्रेमणि किमिति कर्पूरमञ्जरीं सर्वाङ्गविस्तारितलोचनः पिबन्निव अवलोकयसि ? किं ततोऽपि परिहीयमाणगुणा देवी ?)

विदूषक—उन्मत्त हुआ राजा, भूख से व्याकुल ब्राह्मण, पुरुषसंसर्ग को चाहने वाली धूर्त स्त्री और विरही मनुष्य मन के लड्डुओं से अपने को प्रसन्न रखता है। मित्र ! बताओ तो, यह किसका प्रभाव है ?

राजा—प्रेम का।

विदूषक—मित्र ! महारानी से इतना प्रेम होने पर भी कर्पूरमञ्जरी को इस तरह देखते हो जैसे कि सारे अंग में आँखें लगाकर उसे पी जाओगे। क्या महारानी के गुण कर्पूरमञ्जरी से कुछ कम हैं ?

परिरम्भः = निधुवनपरिरम्भः = सुरतालिङ्गनम्। निर्भरोत्तुङ्गयोः = अत्यन्तमुन्नतयोः। विबुद्धः = जागरितः ॥ ७ ॥

टिप्पणी—क्षुधया क्लान्तः = क्षुधाक्लान्तः-भूख से थका हुआ। अविनीतं हृदयं यस्याः सा अविनीतहृदया = पुरुषसंसर्गाभिलषितचित्ता-पुरुषसहवास चाहने वाली। विडम्बयति= धोखा देता है।

टिप्पणी—पिबन् = पीता हुआ- √ पा (पिब्)+अत्-शत्रन्त। परिहीयमाणाः

राजा—मा एव्वं भण (मैवं भण)—

कदावि संघडइ कस्स वि प्पेमगंठो
एवमेव तत्थ ण हु कारणमत्थि रूअं।
चंगत्तणं उण मग्गिज्जदि जं तहिं पि
ता दिज्जए पिसुणलोअमुहेसु मुद्दा ॥ ९ ॥

(कदाऽपि सङ्घटते कस्यापि प्रेमग्रन्थिः
एवमेव तत्र न खलु कारणमस्ति रूपम् ।
चङ्गत्वं पुनर्मृग्यते यत्तत्रापि
तद्दीयते पिशुनलोकमुखेषु मुद्रा ॥ ९ ॥)

अन्वयः—कदा अपि कस्य अपि प्रेमग्रन्थिः एवमेव सङ्घटते, तत्र रूपम् न खलु कारणम् अस्ति। तत्रापि यत् पुनः चङ्गत्वम् मृग्यते, तत् पिशुनलोक-मुखेषु मुद्रा दीयते।

सरलार्थः—कस्मिन्नपि काले कस्यापि प्रेमबन्धः कश्चित् प्रति एवमेव कारणं विना सङ्घटते, अस्मिन् प्रेमबन्धे सौन्दर्यं कारणं न भवति। यथोक्तं भवभूतिना उत्तररामचरिते—'व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुर्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते। विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्र-कान्तः॥' तत्रापि प्रेम्णः आन्तरहेतुकत्वेऽपि यत्पुनः सौन्दर्यं मृग्यते अन्विष्यते तत्

राजा—ऐसा मत कहो।

किसी भी समय किसी का किसी पर प्रेम यों ही हो जाता है, इस प्रेम-बन्धन में सौन्दर्य कारण नहीं होता। फिर भी प्रेम में सौन्दर्य को जो कारण बताया जाता है वह दुष्ट लोगों के मुंह को बन्द करने के लिये ही—दुष्ट लोग जिस किसी से भी प्रेम करने को बुरा न बतायें इस लिये सुन्दरता आदि गुणों का उल्लेख कर दिया जाता है ॥ ९ ॥

गुणाः यस्याः सा परिहीयमाणगुणाः कम गुण वाली-परि √हा+य+आन-परिपूर्वक हा धातु से कर्मवाच्य में आनच्, म् का आगम। चङ्गस्य भावः=चङ्गत्वम्=सौन्दर्य। मृग्यते= अन्विष्यते-खोजा जाता है। मुद्रा=पर्दा। आवरणपिशुन=एक दूसरे की चुगली खानेवाला ॥ ९ ॥

विदूषकः—भो ! किं उण एदं प्पेम प्पेमत्ति भणंति ? ।
(भोः ! किं पुनरेतत् प्रेम प्रेमेति भणन्ति ?)

राजा—अण्णोण्णमिलिदस्स मिहुणस्स मअरद्धअसासणे प्परूढं प्पणअग्गंठिं प्पेमेत्ति छइल्ला भणंति । (अन्योऽन्यमिलितस्य मिथुनस्य मकरध्वजशासने प्ररूढं[1] प्रणयग्रन्थिं प्रेमेति विदग्धा भणन्ति ।)

विदूषकः—कीदिसो सो ? (कीदृशः सः ?)

राजा—जस्सि विकप्पघडणाइकलंकमुक्को
अत्ताणअस्स सरलत्तणमेइ भावो ।
एक्कक्कअस्स प्पसरंतरसप्पवाहो
सिंगारवड्ढिअमणोभवदिण्णसारो ॥ १० ॥
(यस्मिन् विकल्पघटनादिकलङ्कमुक्तः
आत्मनः सरलत्वमेति भावः ।

पिशुनानां लोकानां मुखेषु मुद्रादानाय आवरणदानायैव भवति । पिशुनाः जनाः निन्दां मा कुर्युरिति तेषां मुखबन्धनाय सौन्दर्यादिगुणाः कीर्त्यन्ते ॥ ९ ॥

अन्वयः—यस्मिन् एकैकस्य आत्मनः भावः विकल्पघटनादिकलङ्कमुक्तः प्रसरद्रसप्रवाहः शृङ्गारवर्धितमनोभवदत्तसारः (सन्) सरलत्वम् एति ।

व्याख्या—यस्मिन् प्रेमणि सति एकैकस्य उभयस्य आत्मनः भावः आशयः

विदूषक—यह 'प्रेम-प्रेम' किसे कहा जाता है ?

राजा—एक दूसरे के पास बैठे हुये स्त्री पुरुषों का कामदेव की आज्ञा से उत्पन्न हुआ भाव प्रेम कहलाता है ।

विदूषक—वह भाव कैसा होता है ?

राजा—जिस भाव के उत्पन्न होने पर एक दूसरे के चित्त के विचारसंशय इत्यादि

१. प्ररूढ=उत्पन्न ।

टिप्पणी—विकल्पानां घटनादयः ये कलङ्काः तैः मुक्तः=विकल्पघटनादिकलङ्कमुक्तः=

एकैकस्य प्रसरद्रसप्रवाहः

श्रृङ्गारवर्द्धितमनोभवदत्तसारः ॥ १० ॥)

विदूषकः—कधं विश्र सो लक्खोअदि ? (कथमिव स लक्ष्यते ?)

राजा—जाणं सहावप्पसरंतसुलोलदिट्ठी-

पेरंतलुंठिअमणाणं परप्परेण ।

वड्ढंतमम्महविदीण्णरसप्पसारो

ताणं प्पआसइ लहुं विअ चित्तभावो ॥११॥

(ययोः स्वभावप्रसरत्सुलोलदृष्टि-

पर्यन्तलुण्ठितमनसोः परस्परेण ।

विकल्पानां घटनादिभिः कलङ्कः मुक्तः विरहितः, आनन्दस्रोतसः प्रवाहेण च युक्तः तथा श्रृङ्गारेण वर्धितः उल्लसन् यः कामः तेन उत्कर्षम् प्राप्तः सन् सरलत्वम् आर्जवमेति, सुखदुःखे समे भवतः स भावप्रेमेति कथ्यते ॥ १० ॥

अन्वयः—ययोः परस्परेण स्वभावप्रसरत्सुलोलदृष्टिपर्यन्तलुण्ठितमनसोः वर्धमानमन्मथवितीर्णरसप्रसारः, तयोः चित्तभावः लघुः इव प्रकाशते ।

व्याख्या—परस्परेण अन्योऽन्येन स्वभावतः प्रसरन्त्यः प्रचलन्त्यः सुलोलाः

भावों से रहित हो जाते हैं, जिसमें आनन्द का स्रोत सा बहता है और श्रृङ्गार से प्रवृद्ध कामदेव के द्वारा जिसमें उत्कर्ष आजाता है तथा सरलता आजाती है वह भावप्रेम कहलाता है ॥ १० ॥

विदूषक—वह भाव किस तरह दिखाई पड़ता है ?

राजा—आपस में स्वभाव से ही बड़ी और चञ्चल आंखों के कटाक्षों के प्यासे

संशयादिदोषविरहितः । प्रसरन् रसप्रवाहः यत्र सः प्रसरद्रसप्रवाहः=प्रवहदानन्दस्रोताः= बहते हुये आनन्द के प्रवाह से युक्त । श्रृङ्गारेण वर्द्धितः=श्रृङ्गारवर्धितः, स चासौ मनोभवः- श्रृङ्गारवर्धितमनोभवः, तेन दत्तः सारः यस्य स श्रृङ्गारवर्धितमनोभवदत्तसारः=श्रृङ्गार से बढ़े हुये काम ने जिसको उत्कर्ष प्रदान किया है ॥ १० ॥

टिप्पणी—स्वभावेन प्रसरन्त्यः सुलोलाश्च या दृष्टयः=स्वभावप्रसरत्सुलोलदृष्टयः,

वर्द्धमानमन्मथवितीर्णरसप्रसार-
स्तयोः प्रकाशते लघुरिव चित्तभावः ॥ ११ ॥)

अवि अ (अपि च)—

अंतो णिविट्ठमअणविब्भमडंबरं जं
तं भण्णए अ मअणमंडणमेत्थ प्पेम्मं ।
दुल्लक्खअं पि जं पअडेइ जणो जअम्मि
तं जाणिमो अ सुबहुलं मअणिंदजालं ॥१२॥

(अन्तर्निविष्टमदनविभ्रमडम्बरं यत्
तत् भण्यते च मदनमण्डनमत्र प्रेम ।

सुचञ्चलाः याः दृष्टयः तासां पर्यन्तेषु अपाङ्गावलोकनेषु लुण्ठितमनसोः सतृष्णयोः ययोः दम्पत्योः वर्धमानेन मन्मथेन रसप्रसारः उल्लासातिरेकः वितीर्णः उत्पन्नः दृश्यते, तयोः दम्पत्योः चित्तभावः द्रुत इव प्रकाशते प्रकटीभवति ॥ ११ ॥

अन्वयः—यत् अन्तर्निविष्टमदनविभ्रमडम्बरम्, तत् अत्र मदनमण्डनम् प्रेम भण्यते । जगति जनः दुर्लक्ष्यम् अपि यत् प्रकटयति तत् सुबहुलम् मदनेन्द्र-जालम् जानीमश्च ।

व्याख्या—अन्तर्निविष्टस्य हृदयंगतस्य मदनस्य यत् विभ्रमडम्बरम् प्रिय-

---

जिन स्त्री-पुरुषों में आनन्दातिरेक प्रवृद्ध कामदेव द्वारा उत्पन्न दिखाई पड़ता है, उन स्त्री-पुरुषों के मन का अभिप्राय बहता हुआ सा प्रकट होता है ॥ ११ ॥

और भी:—

हृदय को प्रभावित किये हुये कामदेव का जो विलसाडम्बर है वह ही इस

तासां पर्यन्तेषु लुण्ठितं मनः ययोः तयोः स्वभावप्रसरत्सुलोलदृष्टिपर्यन्तलुण्ठितमनसोः = चञ्चलापाङ्गावलोकनसतृष्णयोः=चञ्चल कटाक्षों द्वारा देखने के लिये लालायित। वर्धमानश्चासौ मन्मथः = वर्धमानमन्मथः, तेन वितीर्णः रसप्रसारः = वर्धमानमन्मथवितीर्णरसप्रसारः = प्रवृद्धकामदेवप्रदत्तोल्लासातिरेक:-बढ़े हुए कामदेव के द्वारा दिया हुआ आनन्दातिरेक। लघुरिव = बहता हुआ सा ॥ ११ ॥

टिप्पणी—अन्तर्निविष्टश्चासौ मदनः = अन्तर्निविष्टमदनः, तस्य विभ्रमडम्बरम् =

दुर्लक्ष्यमपि यत् प्रकटयति जनो जगति
तज्जानीमश्च सुबहुलं मदनेन्द्रजालम् ॥ १२ ॥)

विदूषकः—जइ चित्तगदं प्पेममणुराअमुप्पादेदि, ता किं कज्जदि मंडणाडंबरविडंबणाए ? (यदि चित्तगतं प्रेम अनुरागमुत्पादयति, तत् किं क्रियते मण्डनाडम्बरविडम्बनया ?)

राजा—बअस्स ! सच्चमिणं (वयस्य ! सत्यमिदम्)—

किं मेहलाबलअणेउरसेहरेहिं ?
किं चंगिमाअ ? किमु मंडणडंबरेहिं ?
तं अण्णमत्थि इह किंपि णिअंबिणीओ
जेणं लहंति सुहअत्तणमंजरीओ ॥ १३ ॥

जनवशीकरणहेतुभूतम् विलासाधिक्यम्, तत् अत्र संसारे मदनमण्डनम् कामभूषणं प्रेम भण्यते कथ्यते। जगति जनः दुर्लक्ष्यमपि लक्षयितुमशक्यमपि यत् प्रकटयति प्रकाशते तत् सुबहुलं सुमहत् मदनस्य इन्द्रजालं लोकप्रतारिणीं कपटविद्यां जानीमः मन्यामहे ॥ १२ ॥

संसार में प्रेम कहलाता है। संसार में लोग गुप्त बातों को भी इसके प्रभाव से प्रकट कर देते हैं, यह कामदेव की एक बड़ी जादूगरी है ॥ १२ ॥

विदूषक—अगर हृदय का प्रेम ही आसक्ति उत्पन्न करता है, तो अलंकारों की योजना में क्यों बेकार परिश्रम किया जाता है ?

राजा—मित्र ! यह सत्य है :—

अन्तर्निविष्टमदनविभ्रमडम्बरम्=हृदयगतमन्मथविलासाधिक्यम्। भण्यते=कहा जाता है। √भण्+य+ते। कर्मवा० वर्तमा०। दुःखेन लक्ष्यं=दुर्लक्ष्यम्=अत्यन्त गुप्त। सुबहुलम्=महत्-बड़ा। मदनस्य इन्द्रजालम्=मदनेन्द्रजालम्=कामस्य लोकप्रतारिणी कपटकरी विद्या। जानीमः=जानते है √ज्ञा+ना-मः=जानीमः-ज्ञा को जा आदेश, ना प्रत्यय उत्तमपुरुष बहुवचन ॥ १२ ॥

(किं मेखलावलयनूपुरशेखरैः ?
किं चङ्गिमत्वेन ? किमु मण्डनाडम्बरैः ?
तदन्यदस्तीह किमपि नितम्बिन्यो
येन लभन्ते सुभगत्वमञ्जरीः ॥ १३ ॥)

अवि अ (अपि च)—

किं गेअणिट्टविहिणा ? किमु वारुणीए ?
धूवेण किं अगुरुणा ? किमु कुंकुमेण ?
मिट्ठत्तणे महिद्लम्मि ण किं वि अण्णं
एक्वोअ अत्थि सरिसं उण माणुसस्स ? ॥१४॥

(किं गेयनृत्यविधिना ? किमु वारुण्या ?

अन्वयः—मेखलावलयनूपुरशेखरैः किम्, चङ्गिमत्वेन किम्, मण्डनाडम्बरैः किमु, येन नितम्बिन्यः सुभगत्वमञ्जरीः लभन्ते, इह तत् अन्यत् किमपि अस्ति ।

सरलार्थः—मेखलावलयनूपुरशेखरैः किमपि फलं न, सौन्दर्यमपि न किमपि प्रयोजनं साधयति, मण्डनाडम्बरैः अन्यैः प्रसाधनैः अपि न किमपि कार्यं सिध्यति । येन कारणेन कामिन्यः सौभाग्यकलाः लभन्ते प्राप्नुवन्ति, तदत्र संसारे किमपि अन्यदेवास्ते, तारामैत्री चक्षूराग एव कामिनीषु सौन्दर्यसृष्टिं करोति ॥ १३ ॥

सरलार्थः—गानेन नृत्येन च न किमपि सिध्यति, वारुण्या मदिरया चापि

करधनी, कंगन, पायजेब और सिर के आभूषण से कुछ नहीं होता है। सौन्दर्य भी कहीं कहीं व्यर्थ रहता है। बाह्य श्रृङ्गार भी व्यर्थ है। संसार में यह तो कोई और ही चीज है जिससे स्त्रियाँ आकर्षक लगती हैं ॥ १३ ॥

और भी :—

गाने और नाचने से कुछ नहीं होता है, मदिरा भी बेकार है, अगुरु का

टिप्पणी—मण्डनानाम् आडम्बरः=मण्डनाडम्बरस्तस्य विडम्बनया=प्रसाधनप्रयासेन। मेखला=करधनी। वलय=कङ्कन। नूपुर=पायजेब। चंगिमत्वम्=सौन्दर्य। प्रशस्तौ नितम्बौ स्तः यासां ताः नितम्बिन्यः-प्राशस्त्य में इन् प्रत्ययः। सुभगत्वमञ्जरीः= सौभाग्यकलाः ॥ १३ ॥

टिप्पणी—गेयम् च नृत्यं च गेयनृत्ये तयोः विधिना=गेयनृत्यविधिना=नाचने गाने

धूपेन किमगुरुणा ? किमु कुङ्कुमेन ।

मधुरत्वे महीतले न किमप्यन्यत्

रुचेरस्ति सदृशं पुनर्मानुषस्य ॥ १४ ॥)

अवि अ (अपि च)—

जा चक्कवट्टिघरिणी जणगेहिणी वा

पेम्मम्मि ताण ण तिलं वि विसेसलाभो ।

जाणे सिरीअ जइ किज्जदि को वि भावो

माणिक्कभूसणणिअसणकुंकुमेहिं ॥ १५ ॥

(या चक्रवर्त्तिगृहिणी जनगेहिनी वा

प्रेम्णि तयोर्न तिलमात्रमपि विशेषलाभः ।

न किमपि प्रयोजनम् । अगुरोः धूपोऽपि निरर्थकः । कुङ्कुमराग अपि निष्फल एव । मानुषस्य रुचेः सदृशं किमपि वस्तु मधुरत्वे पृथिव्यां न तिष्ठति । यत्र मनुष्यः अनुरक्तो भवति तदेव तस्मै रोचते ॥ १४ ॥

अन्वयः—या चक्रवर्तिगृहिणी, (या) वा जनगेहिनी, तयोः प्रेम्णि तिलमात्रमपि विशेषलाभः न (अस्ति) । यदि श्रिया कोऽपि भावः क्रियते, (तदा) माणिक्यभूषणनिवसनकुंकुमैः (स भवति) इति जाने ।

सरलार्थः—या चक्रवर्तिनः राज्ञः गृहिणी महिषी, या वा सामान्यजनपत्नी,

---

सुगन्धित धुआँ भी निरर्थक है, कुङ्कुमराग से भी कुछ लाभ नहीं । मनुष्य की रुचि के समान पृथ्वी पर कोई भी वस्तु मधुर नहीं है ॥ १४ ॥

और भी:—

चाहे चक्रवर्ती राजा की रानी हो, या साधारण पुरुष की स्त्री हो, इन दोनों के प्रेम में तिलभर भी भेद नहीं होता है । अगर सौन्दर्य शोभा से कोई भाव होता है

से । वारुणी = मदिरा । अगुरु = एक गन्धयुक्त लकड़ी ॥ १४ ॥

टिप्पणी—माणिक्यभूषणं निवसनं कुंकुमश्च तैः माणिक्यभूषणनिवसनकुङ्कुमैः । जन

जाने श्रिया यदि क्रियते कोऽपि भावी
माणिक्यभूषणनिवसनकुङ्कुमैः ॥ १५ ॥)

अवि अ (अपि च)—

किं लोअणेहिं तरलेहिं ? किमाणणेण
चंदोवमेण ? थणएहिं किमुण्णएहिं ?
तं कि पि अण्णमिह भूवलए णिमित्तं
जेणांगणाअ हिअआउ ण ओसरंति ॥ १६ ॥
(किं लोचनैस्तरलैः ? किमाननेन
चन्द्रोपमेन ? स्तनैः किमुन्नतैः ?
तत्किमप्यन्यदिह भूवलये निमित्तं
येनाङ्गना हृदयान्नापसरन्ति ॥ १६ ॥)

तयोः प्रेम्णि अणुमात्रमपि प्रभेदो न भवति। यदि सौन्दर्यशोभया कोऽपि भावः प्रणयः क्रियते तदा स माणिक्यभूषणेन निवसनेन कुंकुमं न च भवति इति जाने मन्ये ॥१५॥

अन्वयः—तरलैः लोचनैः किम्, चन्द्रोपमेन आननेन किम् ? उन्नतैः स्तनैः किम् ? इह भूवलये तत् किमपि अन्यत् निमित्तम्, येन अङ्गनाः हृदयात् न अपसरन्ति।

सरलार्थः—चञ्चलैः नेत्रैः किं प्रयोजनम् ? चन्द्रसदृशेन मुखेनापि किम् ?

तो वह मानसिक, आभूषण, सुन्दर वस्त्र और कुङ्कुम से होता है—ऐसा मैं समझता हूँ ॥ १५ ॥

और भीः—

चञ्चल नेत्रों से क्या ? चन्द्रमा जैसे मुख से भी कोई लाभ नहीं। उन्नत उरोजों से भी क्या प्रयोजन। इस संसार में कोई और ही कारण है जिससे स्त्रियाँ पुरुष के हृदयों को अपने वश में कर लेती हैं ॥ १६ ॥

गेहिनी = साधारण पुरुष की स्त्री। तिलमात्रम् = लेशमात्र भी। चक्रवर्तिगृहिणी = चक्रवर्ती राजा की रानी ॥ १५ ॥

टिप्पणी—तरल = चञ्चल। चन्द्रः अस्ति उपमा यस्य तेन चन्द्रोपमेन = शशिसदृशेन। अपसरन्ति = हटती हैं, अप √सृ + अ + अन्ति ॥ १६ ॥

विदूषकः—एव्वं णेदं, किं उण अण्णं पि मे कधेसु, जं, कुमारत्तणे माणुसस्स अमणोज्जमेतस्सिं वि तरुणत्तणे चंगत्तणं वड्ढदि। (एवमेतत्, किं पुनरन्यदपि मे कथय, यत् कुमारत्वे मानुषस्यामनोज्ञम्, एतस्मिन्नपि तारुण्ये चङ्गत्वं वर्द्धते?)

राजा—

णूणं दुवे इह पजावइणो जअम्मि
जे देहणिम्मबणजोव्बणदाणदक्खा।
एक्को घडेदि पढमं कुमरीणअंगं
उक्कारिऊण पअडेइ उणो दुदीओ॥ १७॥

(नूनं द्वाविह प्रजापती जगति
यौ देहनिर्माणयौवनदानदक्षौ।

उच्चैः स्तनैरपि न कोऽपि गुणः। अस्मिन् भूमण्डले किमप्यन्यदेव कारणं येन नार्यः नराणां हृदयात् न निर्गच्छन्ति। पुरुषाणां हृदयानि वशीकुर्वन्ति॥ १६॥

अन्वयः—इह जगति द्वौ प्रजापती, यौ देहनिर्माणयौवनदानदक्षौ (स्तः)। एकः कुमारीणाम् अंगम् प्रथमं घटयति, द्वितीयः पुनः उत्कीर्य्य प्रकटयति।

सरलार्थः—अस्मिन् संसारे द्वौ विधातारौ स्तः, यौ देहरचनायां यौवनदाने च प्रवीणौ स्तः, अनयोः एकः ब्रह्मा प्रथमं कुमारीणां केवलं शरीरमेव रचयति, पुनः

विदूषक—**यह तो ऐसा है ही, कुछ और भी मुझे बताओ। यह क्या बात है कि जो (मनुष्य) कुमारावस्था में सुन्दर नहीं लगता, वह युवावस्था में सुन्दर हो जाता है?**

राजा—**इस संसार में दो प्रजापति हैं, जो शरीर बनाने में और यौवन देने में चतुर हैं। इनमें ब्रह्मा तो केवल कुमारियों का शरीर ही बनाता है किन्तु**

टिप्पणी—तरुणस्य भावः = तारुण्यम्–युवावस्था–तरुण शब्द से भावार्थक ष्यञ् प्रत्यय।

टिप्पणी—घटयति = बनाता है घट् चेष्टायाम् (भ्वादि आत्मने०) से ण्यन्त में लट्

एको घटयति प्रथमं कुमारीणामङ्गम्

उत्कीर्य्य प्रकटयति पुनर्द्वितीयः ॥ १७ ॥)

तेण अ (तेन च)—

रणिदवलअकंचीणेउरावासलच्छी

मरगदमणिमाला गोरिआ हारजट्ठी ।

हिअअहरणमंतं जोव्वणं कामिणीणं

जअदि मअणकंडं छट्ठअं वड्ढअं अ ॥ १८ ॥

(रणितवलयकाञ्चीनूपुरावासलक्ष्मी-

मरकतमणिमाला गौरिका हारयष्टिः ।

द्वितीयः कामः अंगानि उन्मील्य प्रकाशयति । ब्रह्मा तु केवलं शरीरं रचयत्येव, कामस्तु शरीरे सौन्दर्यसृष्टिं करोति । ब्रह्मापेक्षया कामः निपुणतर इति भावः ॥१७॥

अन्वयः—रणितवलयकाञ्ची नूपुरावासलक्ष्मीः (तिष्ठतु), मरकतमणिमाला गौरिका हारयष्टिः (तिष्ठतु), षष्ठकः वर्धकः च मदनकाण्डः कामिनीनां हृदयहरण-मन्त्रम् यौवनं जयति ।

व्याख्या—रणितानां शिञ्जितानां वलयानां कंकणानां काञ्चीनाम् रशनानाम् नूपुराणां च आवासेन धारणेन या लक्ष्मीः शोभा सा तिष्ठतु तावत्, न तस्याः काप्यावश्यकता । एवमेव मरकतमणीनां माला, गौरिका काञ्चनी हारयष्टिर्वा तिष्ठतु । षष्ठः वर्धकः प्रबलतरः च मदनशरः इव इदं हृदयवशीकरणमन्त्रम्

शरीर का विकास तो कामदेव के द्वारा ही होता है ॥ १७ ॥

और उससे :—

बजते हुये कङ्कण, करधनी और पायजेबों के पहिनने से उत्पन्न होने वाली शोभा तो कुछ भी नहीं है, मरकतमणियों की माला तथा सोने का हार भी रहने दो । हृदय को वश में करने वाला तथा कामदेव के छठे और प्रबल बाण के समान

लकार । उत्कीर्य्य = खिलाकर, उन्मील्य–उत् √कृ + य–ल्यबन्त । कृ की ऋ को इर् आदेश ।

टिप्पणी—रणित = बजता हुआ । आवासः धारण करना । गौरिका = सोने का । मदन

हृदयहरणमत्रं यौवनं कामिनीनां
जयति मदनकाण्डः षष्ठको वर्द्धकश्च ॥ १८ ॥)

तहा अ (तथा च)—

अंगं लावण्णपुण्णं स्सवणपरिसरे लोअणा हारतारा
वच्छं थोरत्थणिल्लं तिबलिवलइदं मुट्ठिगेण्हं अ मज्झं ।
चक्काआरो णिदंबो तरुणिमसमए किं णु अण्णेण कज्जं ?
पंचेहिं ज्जेव्व बाला मअणजअमहावैजअंतीअ होंति ॥ १९ ॥

(अङ्गं लावण्यपूर्णं श्रवणपरिसरे लोचने हारतारे
वक्षः स्थूलस्तनं त्रिवलिवलयितं मुष्टिग्राह्यञ्च मध्यम् ।

कामिनीनां यौवनं जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । यद्यपि मदनस्य अन्येऽपि पञ्चशराः सन्ति, तथापि यौवनरूपोऽयं षष्ठः शरः प्रबलतरः, सर्वंजगच्च वशीकरोति ॥ १८ ॥

अन्वयः—तरुणिमसमये लावण्यपूर्णम् अंगम्, हारतारे श्रवणपरिसरे लोचने, स्थूलस्तनम् वक्षः, त्रिवलिवलयितं मुष्टिग्राह्यम् च मध्यम्, चक्राकारः नितम्बः, (एभिः) पञ्चभिः एव बालाः मदनजयमहावैजयन्त्यः भवन्ति, अन्येन किं न कार्यम्?

सरलार्थः—युवावस्थायाम् कामिनीनाम् अंगम् लावण्येन पूर्णं भवति, आकर्षके कर्णपर्यन्तमायते च नयने भवतः, वक्षसि पीनौ पयोधरौ च समागच्छतः, कटिप्रदेशश्च त्रिवलिभिः त्रिसृभिः रेखाभिः वलयितं वेष्टितं मुष्टिमेयञ्च सञ्जायते, नितम्बौ

कामिनियों का यह यौवन ही सर्वोत्कृष्ट है ॥ १८ ॥

वैसे भीः—

युवावस्था में सुन्दरियों का शरीर लावण्य से भरपूर हो जाता है, आँखें भी आकर्षक और बड़ी लगने लगती हैं, वक्षःस्थल पर स्तन खूब उभर आते हैं, कमर पतली हो जाती है तथा उस पर त्रिवलियाँ पड़ जाती हैं, नितम्बभाग खूब सुडौल और गोल हो जाता है। इन पांच अङ्गों से ही बालायें कामदेव के संसार

काण्ड = काम का बाण । षण्णां पूरणः = षष्ठः, स्वार्थ में क प्रत्यय-षष्ठक = छठा । वर्धकः = प्रबल ॥ १८ ॥

टिप्पणी—लावण्येन पूर्णम् = लावण्यपूर्णम् = लावण्यपूर्णम् = कान्तियुक्तम् । हारा तारा ययोः ते हारतारे = उत्कृष्टकनीनिके, आकर्षके । श्रवणपरिसरे = कान तक खींचे हुये ।

चक्राकारो नितम्बस्तरुणिमसमये किं त्वन्येन कार्यम् ?
पञ्चभिरेव बाला मदनजयमहावैजयन्त्यो भवन्ति ॥ १६ ॥)

[नेपथ्ये]

सहि कुरंगिए ! इमिणा सिसिरोबआरेण णलिणिव्व कामं किलिस्सामि (सखि कुरङ्गिके ! अनेन शिशिरोपचारेण नलिनीव कामं क्लाम्यामि)—

विस व्व बिसकंदली बिसहर व्व हारच्छडा
बअस्समिव अत्तणो किरइ तालविंताणिलो ।
तहा अ करणिग्गदं जलइ जंतधाराजलं
ण चंदणमहोमहं हरइ देहदाहं अ मे ॥ २० ॥
(विषमिव बिसकन्दली विषधर इव हारच्छटा
वयस्यमिवात्मनः किरति तालवृन्तानिलः ।

च मण्डलाकारौ सुवर्तुलौ परिणमतः, एभिः पञ्चभिः एव कामिन्यः मदनस्य जगद्विजये महावैजयन्त्यः महापताकाः भवन्ति, अन्येन यौवनादन्येन किमपि प्रयोजनं नेत्यर्थः ।

अन्वयः—विसकन्दली विषमिव, हारच्छटा विषधर इव । तालवृन्तानिलः

विजय में पताका का काम करती हैं अर्थात् सबसे आगे रहती हैं। किसी और की आवश्यकता ही क्या है ॥ १९ ॥

(नेपथ्य में)

सखि ! कुरंगिके ! इस शिशिरोपचार से कमलिनी की तरह अत्यन्त उकता गई हूं। कमल का नाल विष की तरह मालूम पड़ता है, हार सांपों की तरह लगते हैं।

स्थूलौ स्तनौ यस्मिन् तत् स्थूलस्तनम् = उठे हुए स्तनों वाला। मुष्टिना ग्राह्यम् = मुष्टिग्राह्यम् = मुट्ठी के बराबर। त्रिवलिवलयितम् = तीन रेखाओं से युक्त। चक्रस्येव आकारो यस्य सः चक्राकारः = गोल, सुडौल। मदनस्य मदनकर्तृकस्य जये महावैजयन्त्यः = मदनजयमहापताकाः ॥ १९ ॥

टिप्पणी—शिशिरोपचारः = ठण्ढक पहुंचाने का उपाय। कामम् = अत्यन्त। क्लाम्यामि- √क्लम् + य + मि-(दिवादि-श्यन्। लट् लकार) उकताती हूँ।

टिप्पणी—बिसकन्दली = कमल का नाल। तालवृन्तानिलः = पंखे की हवा। किरति=

तथा च करनिर्गतं ज्वलति यन्त्रधाराजलं
न चन्दनमहौषधं हरति देहदाहं च मे ॥ २० ॥)

विदूषकः—**सुदं प्पिअवअस्सेण ? भरिआ कण्णा पीऊसगंडूसेहिं; ता किं अज्जवि उपेक्खीअदि घणघम्मेण किलिमंती मुणालिआ ? गाढकड्ढणदुस्सहेण सलिलेण सिंचिज्जंती केलिकुंकुमत्थली ? छम्मासिअमोत्तिआणं झडित्ति फुडती एक्काबलिआ ? गंठिबण्णकेदारिआ लंठिज्जती गंधहारिणेण ? ता सच्चं दे सिबिणअं संपण्णं। एहि, प्पविसम्ह। उट्ठिज्जदु मअरद्धअपदाआ। प्पअट्टदु कंठकुहरम्मि पंचमहुंकाराणां रिंछोली। थक्कंतु बाप्फप्पबाहा। मंथरिज्जंतु णीसासप्पसरा। लहदु लाबण्णं उणो णबभावं। ता एहि, खिडक्किआदुआरेण प्पविसम्ह।** (श्रुतं प्रियवयस्येन ? भृतौ कर्णौ पीयूषगण्डूषैः; तत् किमद्यापि उपेक्ष्यते घनघर्मेण

आत्मनः वयस्यमिव किरति। तथा करनिर्गतम् यन्त्रधाराजलम् ज्वलति। चन्दनमहौषधं च मे देहदाहम् हरति।

सरलार्थः—मृणाललता विषमिव मे प्रतीयते, हारच्छटा हारावली सर्प इव मे प्रतिभाति। तालवृन्तेन व्यजनेन अभिव्यक्तः अनिलः आत्मनः स्वरूपं वयस्यम् सखायम् अग्निमिव किरति वर्षति। तथा युष्माकं करेभ्यः निःसृतनं यन्त्रधाराजलं तपति। चन्दनलेपश्च मे शरीरसन्तापं न हरति न शमयति। विभिन्नाः शीतोपचाराः विरुद्धमेव प्रभावमुत्पादयन्ति ॥ २० ॥

पंखों की हवा भी अपने मित्र अग्नि को ही फैलाती है। यन्त्रधाराओं का जल भी तप रहा है। चन्दन का लेप भी शरीर के ताप दूर नहीं करता है ॥ २० ॥

विदूषक—**क्या प्रिय मित्र ने सुना ? कान जैसे अमृत रस से भर गये हों।**

विखेरता है— √कॄ+अ+ति। ऋ को इर् हो गया, तुदादि-लट् लकार। चन्दनमेव महौषधम्=चन्दनमहौषधम् ॥ २० ॥

टिप्पणी—पीयूषस्य गण्डूषाः, तैः पीयूषगण्डूषैः=अमृत के रस से। भृतौ=भर गये।

क्लाम्यन्ती मृणालिका ? गाढकथितदुःसहेन सलिलेन सिच्यमाना केलिकुङ्कुमस्थली ? षाण्मासिकमौक्तिकानां झटिति स्फुटन्ती एकावली ? ग्रन्थिपर्ण—केदारिका लुण्ठ्यमाना गन्धहरिणेन ? तत् सत्यं ते स्वप्नं सम्पन्नम् । एहि, प्रविशावः । उत्थाप्यतां मकरध्वजपताका । प्रवर्त्ततां कण्ठकुहरे पञ्चमहूङ्काराणां रचना । स्तोकीक्रियन्तां बाष्पप्रवाहाः । मन्थरीक्रियन्तां निःश्वासप्रसराः । लभतां लावण्यं पुनर्नवभावम् । तदेहि, खिडक्किकाद्वारेण प्रविशावः ।)

[इति प्रविशतः]

[ततः प्रविशति नायिका कुरङ्गिका च]

तीव्र धूप से मुरझाती हुई मृणालिका की क्या अब भी उपेक्षा की जायगी ? खूब गरम और न सहने योग्य जल से खींची जाती हुई यह क्रीडाभूमि कब तक उपेक्षित रहेगी ? उत्कृष्ट मोतियों को एक दम गिराता हुआ यह हार कब तक उपेक्षित रहेगा ? ग्रन्थिपर्णों की यह क्यारी कस्तूरीमृत से बर्बाद होती हुई कब तक देखी जायगी ? तुम्हारा स्वप्न तो सच्चा ही हो गया। आओ, चलें। कामदेव के झण्डे को उठायें। कोयल की पुकार शुरू होने दो। इसके आंसुओं को रोकें। इसका चित्त शान्त करें। लावण्य फिर से नया हो। आओ, खिड़की के द्वार से अन्दर घुसें।

(अन्दर जाते हैं)

(तब नायिका और कुरङ्गिका रंगमंच पर आती हैं)

उपेक्ष्यते=उपेक्षा की जाती है—कर्मवाच्य लट् लकार। क्लाम्यन्ती=मुरझाती हुई √क्लम् + य + अत् (शत्रन्त–स्त्रीलिंग)। सिच्यमानाः सीची जाती हुई √सिच् + य + आन— शानच् प्रत्यय म् का आगम–कर्मवाच्य। केलिकुङ्कुमस्थली=क्रीडा करने की भूमि। षाण्मासिकमौक्तिक=छः महीने में तैयार हुए मोती, अर्थात् उत्कृष्ट मोती। ग्रन्थिपर्ण-केदारिका=एक प्रकार के सुगन्धित पत्तों की क्यारी। लुण्ठ्यमाना=लुटती हुई। उत्थाप्यताम्=उठानी चाहिये उद् √स्थापि य + ताम्–ण्यन्त कर्मवाच्य से लोट् लकार। स्तोकीक्रियन्ताम्=कम करने चाहिये। √स्तोकीकृ च्विप्रत्ययान्त से कर्मवाच्य में लोट् लकार प्रथम पुरुष का बहुवचन। मन्थरीक्रियन्ताम्=धीमी करो– √मन्थरीकृ से कर्मवाच्य में लोट् लकार, प्रथम पुरुष का बहुवचन। खिडक्किका=खिड़की।

नायिका—[ससाध्वसं स्वगतम्] अम्मो ! किं एसो सहसा गअणंगणादो अवदीण्णो पुण्णिमाहरिणंको ? किं वा तुट्टेण णीलकंठेण णिअदेहं लंभिदो मणोहओ ? किं वा हिअअस्स दुज्जणो णअणाणं सज्जणो जणो मं संभावेदि ? [प्रकाशम्] सहि कुरंगिए ! इंदजालं विअ पेक्खामि । (अहो ! किमेष सहसा गगनाङ्गनादवतीर्णः पूर्णिमाहरिणाङ्कः ? किं वा तुष्टेन नीलकण्ठेन निजदेहं लम्भितो मनोभवः ? किं वा हृदयस्य दुर्जनो नयनानां सुज्जनो जनो मां सम्भावयति ? [प्रकाशम्] सखि कुरङ्गिके ! इन्द्रजालमिव पश्यामि ।)

विदूषकः—[राजानं हस्ते गृहीत्वा] भोदि ! सच्चं इंदजालं संपण्णं । (भवति ! सत्यमिन्द्रजालं सम्पन्नम् !)

[नायिका लज्जते]

कुरङ्गिका—सहि ! कप्पूरमंजरि ! अब्भुट्ठाणेण संभावेहि भट्टारअं । (सखि कर्पूरमञ्जरि ! अभ्युत्थानेन सम्भावय भट्टारकम् ।)

नायिका—(घबराहट के साथ अपने मन में) अरे ! यह एकाएक आसमान से पूर्णिमा का चन्द्रमा कैसे उतर आया ? क्या शिवजी ने प्रसन्न होकर कामदेव को उसका शरीर दे दिया ? क्या मेरे हृदय को चुराने वाला और आंखों को तृप्त करने वाला कोई मुझे प्रसन्न कर रहा है ? (जोर से) सखि कुरङ्गिके ! मैं तो जादू सा देखती हूँ ।

विदूषक—(राजा का हाथ पकड़ कर) वस्तुतः इन्द्रजाल ही हो गया ।

(नायिका शर्माती है)

कुरङ्गिका—सखी कर्पूरमञ्जरी ! उठकर महाराज का स्वागत करो ?

टिप्पणी—साध्वसम् = भय, घबराहट । अवतीर्णः = उतरा-अव + √तृ + त = क्त-प्रत्यय-त को न आदेश-ऋ को ईर् = तीर्ण । पूर्णिमाहरिणाकः = पूर्णमा का चन्द्रमा । नीलकण्ठः = शिव जी । लम्भितः = प्राप्त कराई । इन्द्रजालम् = जादू । हृदयस्य दुर्जनः = हृदय को चुराने वाला ।

१. सम्भावय = आदर करो-सम् √भावि से लोट लकार, मध्यमपुरुष एकवचन ।

[नायिका उत्थातुमिच्छति]

राज—[हस्तेन गृहीत्वा]—

उठ्ठिऊण थणभारभंगुरं मा मिश्रंकमुहि ! भंज मज्झश्रं ।
तुज्झ ईरिसणिबेसदंसणे लोश्रणाणं मश्रणो प्पसीददु ॥२१॥

(उत्थाय स्तनभारभङ्गुरं मा मृगाङ्कमुखि ! भञ्जय मध्यम् ।
तवेदृशनिवेशदर्शनाल्लोचनयोर्मदनः प्रसीदतु ॥ २१ ॥)

अवि अ (अपि च)—

जिस्सा पुरो ण हरिदा दलिश्रा हलिद्दा
रोसाणिश्रं ण कणकं ण श्र चंपआइं ।
ताइं सुवण्णकुसुमेहिं बिलोश्रणाइं
श्रच्चेमि जेहिं हरिणक्खि ! तुमंसि दिट्ठा ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे मृगाङ्कमुखि ! उत्थाय स्तनभारभंगुरं मध्यम् मा भञ्जय । तव ईदृशनिवेशदर्शनात् (मम) लोचनयोः मदनः प्रसीदतु ।

सरलार्थः—हे चन्द्रानने ! उत्थानेन स्तनयोः भारेण भंगप्रवणं कटिदेशम् मा भग्नं कुरु । त्वाम् ईदृश्यामवस्थायां दृष्ट्वा मम नेत्रे प्रसादमनुभवतः ॥ २१ ॥

(नायिका उठना चाहती है)

राजा—**(हाथ पकड़ कर):—**

अयि चन्द्रमुखी ? मेरे स्वागत के लिये उठ कर स्तनों के भार से झुकी हुई अपनी कमर को मत तोड़ो । तुमको इस अवस्था में देख कर ही मेरे नेत्र प्रसन्न हो रहे हैं ॥ २१ ॥

और भी:—

---

२. उत्थातुम्–उठने को–उद् √स्था + तुम् = उत्थातुम्–तुमुन् प्रत्यय ।

टिप्पणी—स्तनयोः भारः = स्तनभारः, तेन भङ्गुरम् = स्तनभारभङ्गुरम् = स्तनभार-भुग्नम् । मृगस्य अङ्कः अस्ति यस्मिन् स मृगाङ्कश्चन्द्रः, तस्य इव मुखं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ मृगाङ्कमुखिः ! चन्द्रमुखि ! मदनः = इच्छा । प्रसीदतु = पूरी हो ॥ २१ ॥

(यस्याः पुरो न हरिता दलिता हरिद्रा
उज्ज्वलीकृतं न कनकं न च चम्पकानि ।
ते सुवर्णकुसुमैर्विलोचने
अर्चयामि याभ्यां हरिणाक्षि ! त्वमसि दृष्टा ॥२२॥)

विदूषकः—गब्भघरवासेण सेअसलिलसित्तगत्ता संभूदा तत्थ भोदी कप्पूरमंजरी; ता इमं सिचअंचलेण बीजइस्सं दाव । [तथा कुर्वन्] । हा ! हा ! कधं वरिल्लपवणेण णिब्बणो प्पदीवो । [विचिन्त्य स्वगतम्] । भोदु, लीलोज्जाणं ज्जेव्व गच्छम्ह । [प्रकाशम्] । भो अंधआरणच्चिदं बट्टदि, ता णिक्कमम्ह सुरंगामुहेण ज्जेव्व प्पमदउज्जाणं दाव । (गर्भगृहवासेन

अन्वयः—हे हरिणाक्षि ! यस्याः पुरः दलिता हरिद्रा न हरिता, कनकम् न उज्ज्वलीकृतम्, चम्पकानि च न, सा त्वं याभ्यां दृष्टा असि, ते विलोचने सुवर्णकुसुमैः अर्चयामि ।

सरलार्थः—हे मृगनयने ! यस्याः तव अग्रतः पिष्टा हरिद्रा अपि न हरिद्रात्वेन गणनीया, सुवर्णमपि च न उज्ज्वलं प्रतिभाति, चम्पकपुष्पाणि च परिहीनानि दृश्यन्ते, स त्वं मया याभ्यां मल्लोचनाभ्यां दृष्टा असि, ते मदीये लोचने अहं सुवर्णकुसुमैः पूजयामि । लब्धं मम नेत्राभ्याम् साफल्यमिति भावः ॥ २२ ॥

अयि हरिनी से नयनोंवाली ! तेरे सामने पिसी हुई हल्दी भी कुछ नहीं है, साफ किया हुआ सोना भी तेरे सौन्दर्य के सामने तुच्छ है, चम्पा के फूल भी तेरी तुलना नहीं कर सकते । मेरी जिन आंखों ने तुझ को देखा है, उनकी मैं सुवर्ण के फूलों से पूजा करूंगा ॥ २२ ॥

विदूषक—**अन्तर्गृह में रहने से कर्पूरमञ्जरी के सारे शरीर पर पसीना आ**

टिप्पणी—दलिता = पिसी हुई । हरिद्रा = हल्दी । अर्चयामि = पूजा करता हूं, √अर्च पूजायाम् (चुरादि) । हरिणाक्षि = हिरन जैसे नेत्रों वाली, हरिणस्येव अक्षिणी यस्याः तत्सम्बुद्धौ हरिणाक्षि = मृगनयने ॥ २२ ॥

टिप्पणी—गर्भगृहम् = घर के अन्दर का भाग । स्वेदस्य सलिलेन सिक्तं गात्रं यस्याः

स्वेदसलिलसिक्तगात्रा सम्भूता तत्रभवती कर्पूरमञ्जरी; तदिमां सिचयाञ्चलेन वीजयिष्यामि तावत्। [तथा कुर्वन्] हा ! हा ! कथं वस्त्राञ्चलपवनेन निर्वाणः प्रदीपः। [विचिन्त्य स्वगतम्] भवतु, लीलोद्यानमेव गच्छामः। [प्रकाशम्] भोः ! अन्धकारनृत्यं वर्त्तते, तन्निष्क्रमामः सुरङ्गामुखेनैव प्रमदोद्यानं तावत्।)

[सर्वे निष्क्रमणं नाटयन्ति]

राजा—[कर्पूरमञ्जरीं करे धृत्वा]—

मज्झ हत्थट्ठिदपाणिपल्लवा ईस संचरणबंधुरा भव।
जं चिराअ कलहंसमंडली भोदु केलिगमणम्मि दुब्भगा ॥२३॥

(मम हस्तस्थितपाणिपल्लवा ईषत्सञ्चरणबन्धुरा भव।
यच्चिराय कलहंसमण्डली भवतु केलिगमने दुर्भगा॥ २३ ॥)

अन्वयः—मम हस्तस्थितपाणिपल्लवा ईषत्सञ्चरणबन्धुरा भव। यत् कलहंसमण्डली चिराय केलिगमने दुर्भगा भवतु।

सरलार्थः—मया तव करकिसलयः गृहीतोऽस्ति, त्वम् मन्दं मन्दं चलनाय

रहा है; वस्त्र के छोर से इसकी हवा कर दूँ (हवा करते हुए) अरे ! अरे ! वस्त्र के छोर की हवा से दीपक बुझ गया। (विचार कर–अपने मन में) चलो सैर करने बाग में चलें। (जोर से) बड़ा अन्धेरा है। सुरंग के दरवाजे से ही बाग की ओर चलें।

(सब निकलने का अभिनय करते हैं)

राजा—(**कर्पूरमञ्जरी का हाथ पकड़ कर**):—

मैंने अपने हाथ से तेरा कोमल हाथ पकड़ लिया है, तू धीरे २ चलने के लिये

सा स्वेदसलिलसिक्तगात्रा=पसीने से भीगे शरीर वाली। सिचयाञ्चलेन=वस्त्र के छोर से। वीजयिष्यामि=हवा करूंगा। निर्वाणः=बुझ गया, निर् √वा+त=निर्वाण—क्तप्रत्यय-त को न आदेश (निर्वाणोऽवाते)। अन्धकारनृत्यम्=अत्यन्त अंधेरा। सुरङ्गामुखेन=सुरंग के रास्ते से।

टिप्पणी—पाणिरेव पल्लवः=पाणिपल्लवः, हस्ते स्थितः पाणिपल्लवः यस्याः सा हस्त-

[स्पर्शसुखमभिनीय]

जे णवस्स तिउसस्स कंटआ जे कदंबमउलस्स केसरा।
अज्ज तुज्झ करफंससंगिहिं ते हुअंति मह अंगहिं णिज्जिदा॥
(ये नवस्य त्रपुषस्य कण्टका ये कदम्बमुकुलस्य केसराः
अद्य तव करस्पर्शसङ्गिभिस्ते भवन्ति ममाङ्गैर्निर्जिताः ॥२४॥)

[नेपथ्ये]

वैतालिकः—सुहणिबंधणो होदु देवस्स चंदुज्जोओ।
(सुखनिबन्धनो भवतु देवस्य चन्द्रोद्द्योतः)—

प्रयासं कुरु। तव मन्दगतिरेतादृशी भवेत् यत्तां दृष्ट्वा कलहंसानामपि मन्दगतिं जना नाद्रियेरन् ॥ २३ ॥

अन्वयः—ये नवस्य त्रपुषस्य कण्टकाः, ये कदम्बमुकुलस्य केसराः, ते अद्य तव करस्पर्शसंगिभिः मम अंगैः निर्जिता भवन्ति।

सरलार्थः—ये नवस्य त्रपुषाख्यफलविशेषस्य कण्टकाः, ये च कदम्बमुकुलस्य किञ्जल्काः भवन्ति, ते अद्य तव करस्पर्शं लब्ध्वा सञ्जातरोमाञ्चैः मम अङ्गैः निर्जिताः सन्ति, तव करस्पर्शेन मम अतीव रोमहर्षो जात इति भावः ॥ २४ ॥

प्रयत्न कर, ताकि हंसों की चाल भी तेरी चाल के समान अप्रिय हो जाय ॥ २३ ॥

(स्पर्शजनित सुख का अभिनय कर)

त्रपुष नाम के फल में जो कांटे होते हैं, अथवा कदम्ब के फूल में जो केसर होती हैं, ये सब तेरे हाथ का स्पर्श पाकर उत्पन्न हुये रोमाञ्च वाले मेरे अंगों के सामने कुछ भी नहीं हैं ॥ २४ ॥

(नेपथ्य में)

वैतालिक—महाराज के लिये चन्द्रोदय सुखकर हो।

स्थितपाणिपल्लवा = करनिहितकरकिसलया। ईषत्संचरणाय बन्धुरा = ईषत्संचरणबन्धुरा = मन्दं मन्दं चलनाय उत्थापितगात्रा। केलिगमने = मस्त चाल। दुर्भगा = अप्रिय ॥ २३ ॥

१. त्रपुस = एक फूल का नाम।   २. केसरः = किञ्जल्क।

३. सुखस्य निबन्धनः = सुखनिबन्धनः = सुखहेतुः। ४. चन्द्रोद्योतः = चन्द्रमा का प्रकाश।

भूगोले तिमिराणुबंधमलिणे भूमीरुहेव्व ट्ठिदे
संजादा णवभुज्जपिंजरमुही जोण्हाअ पुव्वा दिसा ।
मुंचतो मुचुकुंदकेसरसिरीसोहाणुआरे करे,
चंदो पेक्ख कलक्कमेण अ गदो सम्पुण्णबिंबत्तणं ॥२५॥
(भूगोले तिमिरानुबन्धमलिने भूमिरुह इव स्थिते
सञ्जाता नवभूर्जपिञ्जरमुखी ज्योत्स्नया पूर्वा दिशा ।
मुञ्चन्मुचुकुन्दकेसरश्रीशोभानुकारान् करान्
चन्द्रः पश्य कलाक्रमेण च गतः सम्पूर्णविम्बत्वम् ॥ २५ ॥)

अन्वयः—तिमिरानुबन्धमलिने भूगोले भूमिरुहे इव स्थिते पूर्वा दिशा ज्योत्स्नया नवभूर्जपिञ्जरमुखी सञ्जाता। मुचुकुन्दकेसरश्रीशोभानुकारान् करान् मुञ्चन् चन्द्रः कलाक्रमेण सम्पूर्णविम्बत्वम् गतः, पश्य ।

व्याख्या—तिमिराणामन्धकाराणामनुबन्धेन सततसञ्चारेण भूगोले भूमण्डले भूमिरुहे वृक्ष इव स्थिते नीलीभूते सति पूर्वा दिशा ज्योत्स्नया चन्द्रिकया नवभूर्जपत्रमिव पिंगलमुखी कपिशवर्णा सञ्जाता। मुचुकुन्दाख्यस्य कुसुमस्य ये केसराः किञ्जल्काः तेषां या श्रीः तत्सदृशीं शोभां धारयतः किरणान् मुञ्चन् अभिक्षिपन् चन्द्रः कलाक्रमेण सम्पूर्णमण्डलत्वं गतः प्राप्तः। शनैः शनैः चन्द्रः पूर्णतामुपगतः। त्वं तम् पश्येति भावः ॥ २५ ॥

अन्धकार के लगातार बढ़ने से भूमण्डल के मलिन और वृक्ष की तरह नीले मालूम पड़ने पर पूर्व दिशा चांदनी से नए भोजपत्र के समान पीली हो गई है। मुचुकुन्द फूल की केसर की शोभा के समान शोभा वाली किरणों को बरसाता हुआ चन्द्रमा, देखो किस तरह धीरे २ अपनी कलाओं से पूर्ण हो गया है ॥ २५ ॥

टिप्पणी—तिमिरस्य अनुबन्धेन मलिने=तिमिरानुबन्धमलिने=अन्धकारस्य सततसंचारेणावृते। भूमिरुहः=वृक्ष। नवभूर्जस्य इव पिञ्जरं मुखम् यस्याः सा नवभूर्जपिञ्जरमुखी=नवभूर्जपत्रपिंगलवर्णा। मुचुकुन्दस्य केसराः मुचुकुन्दकेसराः तेषां या श्रीः तस्याः शोभाम् अनुकुर्वन्ति-तान्=मुचुकुन्दकेसरश्रीशोभानुकारान्=मुचुकुन्दकिञ्जल्कसमृद्धिशोभायुक्तान्। मुचुकुन्द=एक प्रकार का फूल। मुञ्चन्=छोड़ता हुआ- √मुच्+अत्=

अवि अ (अपि च)—

अकुंकुममचंदणं दहदिहावहूमंडणं
अकंकणमकुंडलं भुअणमंडलीभूसणं ।
असोसणममोहणं मअरलंछणस्साउहं
मिअंककिरणावली णहत लम्मि पुंजिज्जइ ॥ २६ ॥

(अकुङ्कुममचन्दनं दशदिशावधूमण्डनं
अकङ्कणमकुण्डलं भुवनमण्डलीभूषणम् ।
अशोषणममोहनं मकरलाञ्छनस्यायुधं
मृगाङ्ककिरणावली नभस्तले पुञ्जीभवति ॥ २६ ॥)

सरलार्थः—अन्धकारस्य बाहुल्येन भूमण्डलं नीलीभूतमासीत्, चन्द्रिकया प्राची दिशा सपदि एव भूर्जपत्रमिव उज्ज्वलाऽभवत् । चन्द्रः अभितः स्वकिरणान् वर्षति, शनैः शनैः कलानां वृद्धया पूर्णश्च सञ्जात इति त्वं चन्द्रं पश्येति भावः ॥२५॥

अन्वयः—अकुङ्कुमम् अचन्दनम् दशदिशावधूमण्डनम् अकङ्कणम् अकुण्डलम् भुवनमण्डलीभूषणम् अशोषणम् अमोहनम् मकरलाञ्छनस्य आयुधम् मृगाङ्ककिरणावली नभस्तले पुञ्जीभवति ॥

सरलार्थः—कुङ्कुमरहितम्, चन्दनविहीनम्, दशानां दिगङ्गनानाम् आभूषणम्, कङ्कणरहितम्, कुण्डलवर्जितम्, संसारस्य अलङ्करणम्, अशोषणम्, मोहस्य अजनकम्, कामदेवस्यास्त्रभूतम् च इयं चन्द्ररश्मिमाला आकाशे राशीभवति ॥२६॥

और भी:—

कुङ्कुम से रहित, चन्दनविहीन, दसों दिशाओं को सजाने वाली, कङ्कणरहित, बिना कुण्डल की, संसार की शोभा, लोगों को तृप्त करने वाली तथा मोह न करने वाली और कामदेव की अस्त्रभूत ये चन्द्ररश्मियाँ आकाश में इकट्ठी हो रही हैं ॥

शत्रन्त । सम्पूर्णः बिम्बः यस्य स सम्पूर्णबिम्बः, तस्य भावस्तम् = सम्पूर्णबिम्बत्वम् = संपूर्णमण्डलत्वम् । कलाक्रमेण = कलाओं के क्रम से ॥ २५ ॥

टिप्पणी—नास्ति कुङ्कुमं गन्धद्रव्यविशेषः यस्मिन् तत् = अकुङ्कुमम् = कुङ्कुमरहितम् । दशानां दिशावधूनां मण्डनम् = दशदिशावधूमण्डनम् = दशदिगङ्गनाभूषणम् । भुवनमण्डल्याः

विदूषकः—भो ! कणअचडेण वण्णिदा चंदुज्जो अलच्छी; ता संपदं माणिक्कचंडस्सावसरो। (भोः ! कनकचण्डेन वर्णिता चन्द्रोद्योतलक्ष्मीः; तत् साम्प्रतं माणिक्यचण्डस्यावसरः ।)

[नेपथ्ये]

द्वितीयो वैतालिकः—

दज्झंतागुरुधूववट्टिकलिआ दीअंतदीओज्जला
लंबिज्जंतविचित्तमोत्तिअलदा मुंचंतपारावदा ।
सज्जिज्जंतमणोज्जकेलिसअणा जप्पंतदूईसआ
सज्जुच्छंगवलंतमाणिणिजणा वट्टंति लीलाघरा ॥२७॥

(दह्यमानागुरुधूपवर्त्तिकलिका दीयमानदीपोज्ज्वला
लम्ब्यमानविचित्रमौक्तिकलता मुच्यमानपारावताः ।

अन्वयः—लीलागृहाः दह्यमानागुरुधूपवर्तिकलिकाः दीपमानदीपोज्ज्वलाः लम्ब्यमानविचित्रमौक्तिकलताः मुच्यमानपारावताः सज्जीक्रियमाणमनोज्ञकेलिशयनाः जल्पद्दूतीशताः शय्योत्संगवलन्मानिनीजनाः वर्तन्ते ॥ २७ ॥

सरलार्थः—क्रीडामन्दिरेषु अगुरुधूपानां वर्तयः कलिकारूपेण सौगन्ध्यसञ्चारार्थम् दह्यमानाः सन्ति, क्रीडामन्दिराणि प्रज्वाल्यमानैः दीपैः प्रकाशितानि सन्ति,

---

विदूषक—**कनकचण्ड ने चांदनी का वर्णन कर दिया, अब माणिक्यचण्ड की बारी है।**

(नेपथ्य में)

द्वितीय वैतालिक—**लीलागृहों में अगरधूप की बत्तियाँ कलियों की तरह जल रही हैं, दीप्यमान दीपकों से लीलागृहों में प्रकाश हो रहा है, सुन्दर मौक्तिक**

भूषणम्=भुवनमण्डलीभूषणम्=जगतीतलालङ्करणम्। मकरः अस्ति लाञ्छनं यस्य स तस्य मकरलाञ्छनस्य=कामदेवस्य । मृगांकस्य किरणानाम् आवली=मृगाङ्ककिरणावली=चन्द्ररश्मिनिचयः। पुञ्जीभवति=सञ्चीयते (च्विप्रत्ययान्त) ॥ २६ ॥

टिप्पणी—कनकचण्डः=प्रथम वैतालिक का नाम। चंन्द्रोद्योतलक्ष्मीः=चन्द्रमा के प्रकाश की शोभा। माणिक्यचण्डः=द्वितीय वैतालिक का नाम।

टिप्पणी—अगुरुधूपानाम् वर्तयः=अगुरुधूपवर्तयः। दह्यमानाः अगुरुधूपवर्तयः एव

सज्जीक्रियमाणमनोज्ञकेलिशयना जल्पद्दूतीशताः
शय्योत्सङ्गवलन्मानिनीजना वर्त्तन्ते लीलागृहाः ॥ २७ ॥)

अवि अ (अपि च)—

देंता कप्पूरपूरच्छुरणमिव दिसासुंदरीणं मुहेसु
रत्तक्खं जोण्हं किरंतो भुअणजणमणोणंदणं चंदणं व्व ।
जिण्णं कंदप्पकंदं त्तिहुअणकलणाकंदलिल्लं कुणंतो
जादा एणंकपादा सअलजलहरोम्मुक्कधाराणुआरा ॥२८॥

तेषु रम्याः मौक्तिकलताः शोभार्थम् लम्ब्यमानाः दृश्यन्ते, पारावताश्च स्वावासात् मुच्यमानाः सन्ति, क्रीडामन्दिरेषु मनोहराणि पर्यंकानि पुष्परचनादिभिः सज्जीकृतानि सन्ति, दूतीनां समूहाश्च इतस्ततः जल्पन्तः वर्तन्ते, मानिनीजनश्च लीलागृहेषु शय्याया अन्तिके तिष्ठन्नास्ते ॥ २७ ॥

लताएँ सजावट के लिए लटकी हुई हैं, अपने स्थानों से कबूतर छोड़ दिए गए हैं, सुन्दर शय्याएँ सजा दी गई हैं, संकड़ों दूतियाँ इधर उधर बात कर रही हैं, मानिनी स्त्रियाँ शय्याओं के पास बैठी हुई हैं ॥ २७ ॥

और भी :—

जल से भरे हुये मेघों से उन्मुक्त धाराओं जैसी चन्द्रमा की किरणें दिशारूपी

कालिकाः येषु ते दह्यमानागुरुधूपवर्तिकलिकाः = जलती हुई अगुरुधूप की बत्तियाँ ही है कलियाँ जिन में । दीयमानैः दीपैः उज्ज्वलाः = दीयमानदीपोज्ज्वलाः = प्रज्वाल्यमानदीपप्रकाशिताः । लम्ब्यमानाः विचित्राः मौक्तिकलताः येषु ते लम्ब्यमानविचित्रमौक्तिकलताः = आन्दोल्यमानरमणीयमुक्ताप्रलम्बाः । सजावट के लिए लटकायी गयीं है मोतियों की लड़े जिन में । मुच्यमानाः पारावताः येषु ते मुच्यमानपारावताः = अपने आवास से छोड़ दिए गए है कबूतर जहाँ पर (सुरत क्रीडाओं के उद्दीपक होने के कारण) । सज्जीक्रियमाणानि मनोज्ञानि केलिशयनानि येषु ते सज्जीक्रियमाणमनोज्ञकेलिशयनाः = मनोहरपर्यंकयुक्ताः । जल्पन्ति दूतीनां शतानि येषु ते जल्पद्दूतीशताः = सैकड़ों दूतियाँ जहाँ पर बातचीत कर रही हैं । शय्यायाः उत्सङ्गे वलन् मानिनीजनः येषु ते शय्योत्सङ्गवलन्मानिनीजनाः = पर्यंकप्रान्ततिष्ठन्मानिनीजनाः । शय्या के पास बैठी हैं मानिनी स्त्रियाँ जहाँ पर । लीलागृहाः = क्रीडामन्दिराणि । विश्राम करने के कमरे । ऊपर आए हुए सब पद 'लीलागृहाः' के विशेषण हैं ॥ २७ ॥

(ददतः कर्पूरपूरच्छुरणमिव दिशासुन्दरीणां मुखेषु
श्लक्ष्णां ज्योत्स्नां किरन्तो भुवनजनमनोनन्दनं चन्दनमिव ।
जीर्णं कन्दर्पकन्दं त्रिभुवनकलनाकन्दलितं कुर्वन्तो
जाता एणाङ्कपादाः सजलजलधरोन्मुक्तधारानुकाराः ॥ २८ ॥)

विदूषकः—दिसबहुत्तंसो णहसरहंसो ।
णिहुवणकंदो प्पसरइ चंदो ॥ २९ ॥

अन्वयः—सजलजलधरोन्मुक्तधारानुकाराः एणाङ्कपादाः दिशासुन्दरीणाम् मुखेषु कर्पूरपूरच्छुरणमिव ददतः, भुवनजनमनोनन्दनं चन्दनमिव श्लक्ष्णां ज्योत्स्नाम् किरन्तः, जीर्णम् कन्दर्पकन्दम् त्रिभुवनकलनाकन्दलितम् कुर्वन्तः जाताः ।

व्याख्या—जलेन सहिताः सजलाः, सजलजलधरैः मेघैः उन्मुक्तानां धाराणां सदृशाः चन्द्रकिरणाः दिगङ्गनानाम् मुखेपु कर्पूरचूर्णस्य लेपनं कुर्वन्त इव दृश्यन्ते सर्वाः दिशः साम्प्रतम् धवलाः सञ्जाताः । चन्द्रकिरणाः सर्वस्य लोकस्य मनसः आह्लादकम् चन्दनमिव चिक्कणां चन्द्रिकां किरन्ति (वर्षन्ति) । जीर्णम् तिरस्कृतं नातिप्रवृद्धम् कामं त्रिभुवनस्य व्यापनेन कन्दलितं कुर्वन्तः वर्धयन्तः चन्द्ररश्मयः दृश्यन्ते ॥ २८ ॥

सुन्दरियों के मुख पर कपूर के चूर्ण का लेप सा देती हुई दिखाई देती हैं, (अर्थात् सारी दिशाएँ कपूर की तरह उज्ज्वल हो रही हैं)। सारे संसार के मन को प्रसन्न करने वाले चन्दन की तरह स्वच्छ और चिक्कण चांदनी फैला रही हैं, शान्त कामदेव को तीनों लोकों में फैला कर ये चन्द्र किरणें काम का उद्दीपन कर रही हैं॥२८॥

विदूषक—**दिशारूपी स्त्रियों का आभूषण, आकाशरूपी सरोवर में हंस की तरह**

टिप्पणी—जलेन सहिताः सजलाः, सजलाश्च ये जलधराः, सजलजलधराः,तैः उन्मुक्ताः याः धाराः ताः अनुकुर्वन्ति, ते सजलजलधरोन्मुक्तधारानुकाराः=सजलमेघाभिवृष्टधारा-सदृशाः-जल से भरे हुए मेघों से उन्मुक्त धारा की तरह । एणाङ्कस्य मृगाङ्कस्य पादाः= एणाङ्कपादाः =चन्द्ररश्मयः । कर्पूरस्य पूरैः छुरणम्=कर्पूरचूर्णलेपनम् । ददतः = देती हुई- √दा+अत् शत्रन्त । श्लक्ष्ण = चिकना । किरन्तः=वर्षन्तः- √कॄ+अ+अत्-शत्रन्त । त्रिभुवनस्य कलनया कन्दलितम्=त्रिभुवनकलनाकन्दलितम्-त्रिभुवनव्यापनेन प्रवृद्धम् । जीर्णम्=तिरस्कृतम्, नष्टप्रभावम् ॥ २८ ॥

(दिग्वधूत्तंसो नभःसरोहंसः ।
निधुवनकन्दः प्रसरति चन्द्रः ॥ २६ ॥)

कुरङ्गिका—

ससहररइदगव्वो माणिणिमाणघरट्टो ।
णवचंपअकोदंडो मअणो जअइ प्पअंडो ॥ ३० ॥

(शशधररचितगर्वो मानिनीमानघरट्टः ।
नवचम्पककोदण्डो मदनो जयति प्रचण्डः ॥ ३० ॥)

[कर्पूरमञ्जरीं प्रति]—**प्पिअसहि ! तुए किदं चंदवण्णणं महाराअस्स पुरदो पढिस्सं ।** (प्रियसखि ! त्वया कृतं चन्द्रवर्णनं महाराजस्य पुरतः पठिष्यामि ।)

सरलार्थः—दिगङ्गनानाम् आभूषणम् , नभःसरसि हंस इव दृश्यमानः सुरतस्य उद्दीपकः चन्द्रः उदयते ॥ २९ ॥

सरलार्थः—चन्द्रेण यस्य गर्व उत्पादितोऽस्ति, यश्च मानिनीनां मानं मर्दयति, नवचम्पकपुष्पमेव च यस्य धनुरस्ति स उद्धतः मदनः जयति सर्वोत्कर्षेण विराजते ॥

विहार करने वाला तथा शृङ्गार रस का उद्दीपक यह चन्द्रमा उदय हो रहा है ॥२९॥

कुरङ्गिका—**चन्द्रमा ने जिसको गर्वीला बना दिया है, जो मानिनी स्त्रियों के मान को चूर करने वाला है तथा चम्पा का नया फूल ही जिसका धनुष है ऐसा कामदेव बड़ी प्रचण्डता से संसार को जीत रहा है ॥ ३० ॥**

(कर्पूरमञ्जरी से) प्रियसखि ! तुम्हारे द्वारा किया हुआ चन्द्रवर्णन महाराज के सामने पढ़ूंगी ।

टिप्पणी—दिगेव वधूः = दिग्वधूः, तस्याः उत्तंसः = दिग्वधूत्तंसः = दिगङ्गनाकर्णभूषणम्। नभ एव सरः, तस्य हंसः = नभःसरोहंसः = आकाशहंसः-आकाशरूपी सरोवर में हस के समान। निधुवनस्य कन्दः = निधुवनकन्दः = सम्भोगोद्दीपकः । प्रसरति = उदयति, उदय होता है ॥ २९ ॥

टिप्पणी—शशधरेण रचितः गर्वः यस्य सः शशधररचितगर्वः = चन्द्रोत्पादिताभिमानः। मानिनीनां मानस्य घरट्टः = मानिनीमानघरट्टः = मानवती स्त्रियों के मान को

[कर्पूरमञ्जरी लज्जते । कुरङ्गिका पठति]

मंडले ससहरस्स गोरए दंतपंजरविलासचोरए ।

भादि लंछणमिओ फुरंतओ केलिकोइलतुलं धरंतओ ॥ ३१ ॥

(मण्डले शशधरस्य गौरे दन्तपञ्जरविलासचौरे ।

भाति लाञ्छनमृगः स्फुरन् केलिकोकिलतुलां धारयन् ॥३१॥)

राजा—अहो ! कप्पूरमंजरीए अहिणवत्थदंसणं, रमणीओ सद्दो, उत्तिविचित्तदा, रसणिस्संदो अ । (अहो ! कर्पूरमञ्जर्य्या अभिनवार्थदर्शनं, रमणीयः शब्दः, उक्तिविचित्रता, रसनिष्यन्दश्च ।)

[तां प्रति]

मा कहिं पि वअणेण बिब्भमो होउ इत्ति तुह णूणमिंदुणा ।

लंछणच्छलमसीबिसेसओ प्पेक्ख बिम्बफलए णिए किदो ॥३२॥

अन्वयः—गौरे दन्तपञ्जरविलासचौरे शशधरस्य मण्डले स्फुरन् लाञ्छम-मृगः केलिकोकिलतुलां धारयन् भाति ।

सरलार्थः—गौरवर्णे हस्तिदन्तनिर्मितात्पञ्जरादपि उत्कृष्टे चन्द्रमसः मण्डले स्फुरन् अयं कलङ्करूपो मृगः क्रीडापिक इव शोभते ॥ ३१ ॥

(कर्पूरमञ्जरी शर्माती है । कुरङ्गिका पढ़ती है ।):—

उज्ज्वल तथा हाथीदांत के बने पिंजड़े से भी अधिक सुन्दर चन्द्रमा के मण्डल में घूमता हुआ यह कलङ्क मृग कोयल के खिलौने की तरह शोभायमान है ॥ ३१ ॥

राजा—**आश्चर्य है, कर्पूरमञ्जरी ने नई बात कही है, शब्द भी सुन्दर हैं, उक्ति भी विचित्र है, रस भी खूब झलकता है । (कर्पूरमञ्जरी से)—**

तेरे मुख को देख कर लोग चन्द्रमा न समझ बैठें इसलिये निश्चय ही चन्द्रमा

नष्ट करने वाला । घरट्टः = चक्की, पीसने का यन्त्रविशेष । नवं चम्पकमेव कोदण्डः यस्य सः = नवचम्पककोदण्टः = नवचम्पकधनुः ॥ ३० ॥

टिप्पणी—दन्तपञ्जरस्य विलासं चोरयतीति तस्मिन् दन्तपञ्जरविलासचौरे = हाथी-दांत के बने पिंजड़े से भी अधिक सुन्दर । धारयन् = धारण करता हुआ- √धारि + अ + अत्-शत्रन्त ॥ ३१ ॥

(मा कथमपि वदनेन विभ्रमो भवत्विति तव नूनमिन्दुना ।
लाञ्छनच्छलमसीविशेषकः पश्य बिम्बफलके निजे कृतः ॥ ३२ ॥)

किं अ (किञ्च)—

पंडुरेण जइ रज्जए मुहं कोमलांगि ! खडिआरसेण दे ।
दिज्जए उण कपोलकज्जलं ता लहेदि ससिणो विडंबणं ॥ ३३ ॥

(पाण्डुरेण यदि रज्यते मुखं कोमलाङ्गि ! खटिकारसेन ते ।
दीयते पुनः कपोलकज्जलं तदा लभते शशिनो विडम्बनम् ॥ ३३ ॥)

अन्वयः—नूनम्, तव वदनेन कथमपि विभ्रमः मा भवतु इति इन्दुना निजे बिम्बफलके लाञ्छनच्छलमसीविशेषकः कृतः, पश्य ।

सरलार्थः—तव मुखं दृष्ट्वा चन्द्रोऽयमिति भ्रान्तिः लोकस्य मा भवतु इति हेतोः चन्द्रेण स्वबिम्बे कलङ्कव्याजेन मसीविशेषकः कृतोऽस्ति इति मन्ये। तव मुखं निष्कलंकम्, चन्द्रस्तु सकलङ्क इति व्यतिरेकोऽत्र ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे कोमलाङ्गि । यदि पाण्डुरेण खटिकारसेन ते मुखम् रज्यते, पुनः कपोलकज्जलम् दीयते तदा शशिनो विडम्बनम् लभते ।

सरलार्थः—अपि सुकुमारशरीरे यदि धवलेन खटिकाद्रवेण ते मुखं रज्येत लिप्येत वा, पुनः कपोलयोः कज्जलं दीयेत तदा ते मुखं चन्द्रमसः अनुकरणम् प्राप्नोत् । तव मुखं शशिना सममिति भावः ॥ ३३ ॥

ने अपने मण्डल में कलङ्क के बहाने यह धब्बा लगा लिया है, तू देख ? ॥ ३२ ॥

और भीः—

अयि कोमल शरीर वाली ! यदि सफेद खड़िया का रस तुम्हारे मुंह पर लगाया जाय और गालों पर काला चिह्न बना दिया जाय, तो तुम्हारा मुख चन्द्रमा की समता करने लगेगा ॥ ३३ ॥

टिप्पणी—नूनम् = निश्चय कर के । लाञ्छनस्य छलेन मसीविशेषकः = लाञ्छनछल-मसीविशेषकः ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—पाण्डुर = धवल । खटिका = खड़िया । विडम्बनम = अनुकरणम् । √रञ्ज् रागे-रज्यते-कर्मवाच्य लट्, प्रथम पुरुष एकवचन । ॥ ३३ ॥

[चन्द्रमुद्दिश्य]

मुक्कसंक ! हरिणंक ! किं तुमं सुन्दरीपरिसरेण हिंडसि ? ।
गोरगण्डपरिपण्डुरत्तणं प्पेच्छ दिण्णममुणा मुहे ण दे ? ॥ ३४ ॥

(मुक्तशङ्क ! हरिणाङ्क ! किं त्वं सुन्दरीपरिसरेण हिण्डसे ? ।
गौरगण्डपरिपाण्डुरत्वं पश्य दत्तममुना मुखे न ते ? ॥ ३४ ॥)

[नेपथ्ये महान् कलकलः । सर्वे आकर्णयन्ति]

राजा—किं उण एस कोलाहलो ? । (किं पुनरेष कोलाहलः ?)

कर्पूरमञ्जरी—[ससाध्वसम्] प्पिअसहि ! एदमवगमिअ आअच्छ । (प्रियसखि ! एतदवगम्य आगच्छ ।)

[कुरङ्गिका निष्क्रम्य प्रविशति]

विदूषकः—देवीए प्पिअवअस्सस्स वंचणा किदेत्ति तक्केमि । (देव्या प्रियवयस्यस्य वञ्चना कृतेति तर्कयामि ।)

सरलार्थः—हे निर्लज्ज ! चन्द्र ! येन सुन्दरीमुखेन ते गौरयोः कपोलयोः परिपाण्डुरत्वं दत्तम्, तादृशसुन्दरीपरिसरे त्वं कुतो न परिभ्रमसि । अतः त्वं निर्लज्ज

(चन्द्रमा को देख कर):—

हे निर्लज्ज चन्द्रमा ! जिस सुन्दरी के मुख ने तेरे गोरे २ गालों पर सफेदी दी है उस सुन्दरी के पास तू क्यों नहीं घूमता ?—तू बड़ा निर्लज्ज है ॥ ३४ ॥

(नेपथ्य में बड़ा शोर होता है । सब सुनते हैं ।)

राजा—यह कोलाहल क्यों हो रहा है ?

कर्पूरमञ्जरी—(घबराहट के साथ) प्रियसखि ! यह जान कर आओ ।

(कुरङ्गिका बाहर जाकर लौट आती है)

विदूषक—महारानी ने प्रियमित्र को धोखा दिया—ऐसा समझता हूँ ।

टिप्पणी—मुक्ता शङ्का येन सः, तत्सम्बुद्धौ हे मुक्तशङ्क = निःशङ्क । हिंडसे=घूमता है । गौरयोः गण्डयोः परिपाण्डुरत्वम् = गौरगण्डपरिपाण्डुरत्वम् = गौरकपोलधवलत्वम् ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—साध्वसेन सह = ससाध्वसम् = घबराहट के साथ । अवगम्य = जानकर— अव √गम् + य–ल्यबन्त । १. वञ्चना = धोखा । तर्कयामि = सोचता हूँ ।

कुरङ्गिका—प्पिअसहि ! भट्टारअस्स वञ्चणं कदुअ तुए सह सङ्गमं जाणिअ आअच्छदि देवी; तेण कुज्ज-वामणकिरात-वरिस-वर-सोविदल्लाणं एस कोलाहलो । (प्रियसखि ! भट्टारकस्य वञ्चना कृत्वा त्वया सह सङ्गमं ज्ञात्वा आगच्छति देवी, तेन कुब्ज-वामन-किरात-वर्षवर-सौविदल्लानामेष कोलाहलः ।)

कर्पूरमञ्जरी—[सभयम्] ता मं प्पेसदु महाराओ, जेणाहमिमिणा सुरङ्गामुहेण ज्जेव्व प्पविसिअ रक्खाघरअं गच्छेमि, जह देवी महाराएण सह सङ्गमं ण जाणादि । (तन् मां प्रेषयतु महाराजः; येनाहमनेन सुरुङ्गामुखेनैव प्रविश्य रक्षागृहकं गच्छामि, यथा देवी महाराजेन सह सङ्गमं न जानाति ।)

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति तृतीयजवनिकान्तरम्

इति प्रतीयते । एतादृशं वस्तु त्वया यतः प्राप्तं तत्र ते भक्तिर्नास्ति ॥ ३४ ॥

कुरङ्गिका—प्रियसखि ! धोखा देकर तुझ से महाराज के मिलने का समाचार पाकर महारानी आ रही हैं, इसलिए कुब्ज-वामन-किरात-वर्षवर और सौविदल्लों का यह कोलाहल है ।

कर्पूरमञ्जरी—(डर के साथ) महाराज मुझे आज्ञा दें, ता कि मैं इस सुरङ्ग से ही निकल कर रक्षागृह में चली जाऊँ और महारानी को भी आप से मिलने का वृत्तान्त ज्ञात न हो । (सब का प्रस्थान)

टिप्पणी—वर्षवरः = अन्तःपुर का नौकर । सौविदल्ल = कञ्चुकिन् = अन्तःपुर का सेवक । प्रविश्य = घुसकर—प्र √विश् + य = ल्यबन्त ।

तिसरी यवनिका समाप्त ।

चतुर्थं जवनिकान्तरम्

[ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च]

राजा—अहो ! गाढअरो गिम्हो, पवणो अ प्पचण्डो, ता कधं णु सहिदव्वो; जदो—(अहो ! गाढतरो ग्रीष्मः, पवनश्च प्रचण्डः, तत् कथं नु सोढव्यः; यतः)—

इह कुसुमसरेक्कगोअराणं इदमुभअं वि सुदुस्सहं त्ति मणे ।
जरठरइकरालिदो अ कालो तह अ जणेण पिएण विप्पलम्भो ॥
(इह कुसुमशरैकगोचराणामिदमुभयमपि सुदुःसहमिति मन्ये ।
जरठरविकरालितश्च कालस्तया च जनेन प्रियेण विप्रलम्भः ॥ १ ॥)

अन्वयः—इह कुसुमशरैकगोचराणाम् जरठरविकरालितः कालः तथा प्रियेण जनेन विप्रलम्भः इदमुभयमपि सुदुःसहम् इति मन्ये ।

व्याख्या—इह संसारे कुसुमशरस्य कामदेवस्य एकगोचराणाम् एकमात्र-विषयाणाम् काममोहितानाम् जरठेन प्रचण्डेन रविणा सूर्येण करालितः कालः ग्रीष्मर्तुः, तथा प्रियेण इष्टेन जनेन विप्रलम्भः विरहश्च इदमुभयमपि सुदुःसहम् दुःखेन सोढुमशक्यमिति सम्भावयामि ॥ १ ॥

(राजा और विदूषक रंगमंच पर आते हैं)

राजा—अरे ! बड़ी गर्मी है, हवा भी गर्म है, कैसे रहा जाय; क्योंकिः—

इस संसार में कामार्तों के लिए ग्रीष्म ऋतु तथा प्रियजन से वियोग ये दोनों बड़े ही कष्ट देने वाले हैं—ऐसा मैं समझता हूँ ॥ १ ॥

टिप्पणी—अयमनयोः अतिशयेन गाढः = गाढतरः—गाढ शब्द से तर प्रत्यय। सोढुं योग्यः = सोढव्यः-सह् धातु से तव्य प्रत्यय ।

टिप्पणी—कुसुमानि एव सन्ति शराः यस्य स कुसुमशरः, तस्य एकगोचराणाम् = कुसुमशरैकगोचराणाम् = कामपीडितानाम्-कामदेव से सताए हुए । जरठेन रविणा करालितः = जरठरविकरालितः = प्रचण्डसूर्यकवलितः । विप्रलम्भः = वियोगः ॥ १ ॥

विदूषकः—

एक्के दाव मम्मह बाहणिज्जा अण्णे दाव सोसणिज्जा।
अम्हारिसो उण जणो ण कामस्स बाहणिज्जो ण तावस्स सोसणिज्जो ॥२॥
(एके तावत् मदनस्य बाधनीयाः अन्ये तावत् शोषणीयाः ।
अस्मादृशः पुनर्जनो न कामस्य [1]बाधनीयो न तापस्य शोषणीयः ॥२॥)

[नेपथ्ये]

ता किं ण क्खु दे मूलुप्पाडिअचूडिआविअलं सीसं करिस्से ? ।
(तत् किं न खलु ते मूलोत्पाटितचूलिकाविकलं शीर्षं करिष्ये ? ।)

राजा—[विहस्य] बअस्स ! लीलावणसच्छन्दचारिणा केलिसुएण किं भणिदं ? (वयस्य ! [2]लीलावनस्वच्छन्दचारिणा केलिशुकेन किं भणितम् ?)

सरलार्थः—केचन जनाः कामस्य पीडनीयाः भवन्ति, अन्ये जनाः निदाघतापेन शोषणीयाः भवन्ति। अस्मादृशः जनः न कामस्य बाधनीयः, न वा शोषणीय इत्यर्थः ॥ २ ॥

विदूषक—कुछ लोगों को तो काम सताता है, कुछ लोग गर्मी से दुःख पाते हैं। हम जैसे को तो न काम ही सताता है न गर्मी ही दुःख देती है ॥ २ ॥

(नेपथ्य में)

जड़ सहित चोटी उखाड़ कर तेरे सिर को विरूप क्यों न कर दूं ?
राजा—(हंसकर) मित्र ! लीला वन में स्वच्छन्द घूमने वाले तोते ने क्या कहा ?

---

१. बाधनीयाः = पीडनीयाः- √बाध् धातु से अनीय प्रत्यय ।

टिप्पणी—मूलात् उत्पाटिता = मूलोत्पाटिता । मूलोत्पाटिता चासौ चूलिका तया विकलम् = मूलोत्पाटितचूलिकाविकलम् = समूलोन्मूलितकेशनिचयविकलम्-जड़सहित बालों के उखाड़ने से विरूप । शीर्षम् = सिर ।

२. लीलावने स्वच्छन्दं चरति, तेन लीलावनस्वच्छन्दचारिणा = क्रीडाकाननस्वच्छन्दविहारिणा । लीलावन में स्वच्छन्द विहार करनेवाला ।

विदूषकः—[सक्रोधम्] आ दासीए उत्त ! सूलाअरण-जोग्गोसि । (आः दास्याः पुत्र ! शूलाकरणयोग्योऽसि[1] ।)

[नेपथ्ये]

सव्वं तुम्हारिसाहिंतो सम्भाविज्जदि, जइ मे ण होंति पक्खावलीओ । (सर्वं युष्मादृशेभ्यः सम्भाव्यते, यदि मे न भवन्ति पक्षावल्यः[2] ।)

राजा—[विलोक्य] कहं उड्डीणो ज्जेव्व । (कथमुड्डीन[3] एव ।)

[विदूषकं प्रति]

णिसातलिणबित्थरा तह दिणेसु बड्ढत्तणं
ससी लहदि खण्डणं तह अ चण्डबिम्बो रई ।
णिदाहदिअसेसु बिप्फुरदि जस्स एव्वं कमो
कहं ण स बिही तदो खुरसिहाइं खण्डिज्जदि ? ॥३॥

(निशाऽस्तलीनविस्तरा तथा दिनेषु वृद्धत्वं
शशी लभते खण्डनं तथा च चण्डबिम्बो रविः ।

अन्वयः—निशा अस्तलीनविस्तरा, तथा दिनेषु वृद्धत्वम्, शशी खण्डनं

विदूषक—(क्रोध के साथ) अरे दासी के पुत्र ! फांसी देने के योग्य है ।

(नेपथ्य में)

तुम सब कुछ कर सकते हो, अगर मेरे पंख न हों ।

राजा—(देखकर) क्या उड़ ही गया ।

(विदूषक से)

रात्रि छोटी होती है, दिन बड़े होते हैं, चन्द्रमा घटता जाता है, सूर्य अत्यन्त

---

१. शूलाकरणयोग्यः = मारे जाने के योग्य ।

२. पक्षावल्यः = पंखों की पंक्तियाँ ।

३. उड्डीनः = उड़ गया । उत् पूर्वक √डी धातु से क्त प्रत्यय त को न आदेश ।

टिप्पणी—अस्तं लीनः = अस्तलीनः, अस्तलीनः विस्तरः यस्याः सा अस्तलीनविस्तरा=

निदाघदिवसेषु विस्फुरति यस्यैवं क्रमः
कथं न स विधिस्ततः क्षुरशिखाभिः खण्ड्यते ? ॥ ३ ॥

किं अ, णिउणं सेवणिज्जो जइ सुहसंगमो भोदि । जदो–
(किञ्च, निपुणं सेवनीयो यदि शुभसङ्गमो भवति । यतः)—

मज्झण्णे सिरिखण्डपङ्कलणा आ संभमादासुअं
लोलामज्जणमा-प्पदोमसमअं साअं सुरा सीअला ।
गिम्हे पच्छिमजामिणीणिहुवणं जं किं पि पञ्चेसुणो
एदे पञ्च सिलीमुहा विजइणो सेसा सरा जज्जरा ॥ ४ ॥

लभते, तथा रविः च चण्डविम्वः, निदाघदिवसेषु यस्य एवं क्रमः विस्फुरति, सः विधिः ततः क्षुरशिखाभिः कथं न खण्ड्यते ।

सरलार्थः—रात्रिः अल्पकालीना सञ्जाता, दिनानि तु दीर्घाणि भवन्ति, चन्द्रमाः ह्रासं लभते, स्वल्पकालमेव च गगने तिष्ठति, सूर्यश्च दीर्घकालं तपति । यस्य विधेः ग्रीष्मदिनेषु एतादृशः नियमः प्रसरति स क्षुरधाराभिः कथं न छिद्यते । अवश्यमेव स छेत्तव्य इति भावः ॥ ३ ॥

प्रचण्ड होता जाता है । गर्मी के दिनों में जिस विधि का ऐसा नियम रहता है उसे क्यों न छुरी से काट दिया जाय ॥ ३ ॥

अगर अपना प्रिय पास में हो, तो इस समय का सदुपयोग करना चाहिए । क्योंकिः—

ग्रीष्म ऋतु में दोपहर को चन्दन का लेप करना चाहिए । शाम तक गीले वस्त्र पहिनने चाहिए । रात्रि के प्रारम्भ होने पर खूब जलक्रीडा करनी चाहिए । फिर

लघुः । खण्डनम् = ह्रासम् । चण्डः बिम्बो यस्य स चण्डबिम्बः तीव्रसन्तापः । निदाघदिवसेषु = ग्रीष्मदिनेषु । क्षुरस्य शिखाभिः = क्षुरशिखाभिः = क्षुरधाराभिः । खण्डयते = छिद्यते- काटा जाता है ॥ ३ ॥

टिप्पणी—निपुणम् = अच्छी तरह । सेवितुं योग्यः = सेवनीयः- √सेव् + अनीय = सेवनीय = उपभोग करने के योग्य ।

(मध्याह्ने श्रीखण्डपङ्ककलना आसन्ध्यमार्द्रांशुकं
लीलामज्जनमा–प्रदोषसमयं सायं सुरा शीतला ।
ग्रीष्मे पश्चिमयामिनीनिधुवनं यत् किमपि पञ्चेषोः
एते पञ्च शिलीमुखा विजयिनः शेषाः शरा जर्जराः ॥ ४ ॥)

विदूषकः—मा एव्वं भण। (मा एवं भण)—
पण्डुच्छविच्छुरिदणाअलदादलाणं
साहारतेल्लपरिपेसलपोफलाणं ।

अन्वयः—ग्रीष्मे मध्याह्ने श्रीखण्डपङ्ककलना, आसन्ध्यम् आर्द्रांशुकम्, आप्रदोषसमयम् लीलामज्जनम्, सायं शीतला सुरा, यत् किमपि पश्चिमयामिनी निधुवनम् पञ्चेषोः एते पञ्च शिलीमुखाः विजयिनः शेषाः शराः जर्जराः ।

व्याख्या—ग्रीष्मे निदाघे मध्याह्नकाले श्रीखण्डपङ्कस्य चन्दनरसस्य कलना चर्चा कर्तव्या । अंगेषु चन्दनलेपो विधेयः । आसन्ध्यम् सन्ध्याकालपर्यन्तम् आर्द्रांशुकम् जलसिक्तवसनम् परिधानीयम् । आप्रदोषसमयम् प्रदोषसमयपर्यन्तम् लीलामज्जनम् जलक्रीडा कर्तव्या । सायङ्काले च शीतला सुरा पेया । यत् किमप्यनिर्वचनीयम् अलौकिकानन्ददायकम् निधुवनम् सुरतं पश्चिमयामिन्यां रात्रिशेषे उपभोक्तव्यम् । पञ्चेषोः कामदेवस्य एते पञ्च बाणाः विजयिनः परमोत्कर्षशालिनः सन्ति । अन्ये शरास्तु जर्जराः जीर्णाः निष्फलाः, न तेषां कोऽपि प्रभाव इत्यर्थः ॥ ४ ॥

शीतल मदिरा पीनी चाहिए । रात्रि के पश्चिम भाग में सुरत का आनन्द लेना चाहिए । कामदेव के ये पांच बाण बड़े तेज हैं और तो सब पुराने हो गए ॥ ४ ॥

विदूषक—ऐसा मत कहोः—

मित्र ! पान की बेल के पीले रंग के पत्तों से युक्त, आम, तेल और कोमल

टिप्पणी—श्रीखण्डस्य पङ्कः=श्रीखण्डपङ्कः, तस्य कलना = श्रीखण्डपङ्ककलना = चन्दनरसलेपः । सन्ध्यायाः आ = आसन्ध्यम् (अव्ययीभाव) = सन्ध्यापर्यन्तम् । प्रदोषसमयात् आ = आप्रदोषसमयम् (अव्ययीभाव) लीलामज्जनम् = जलक्रीडा । पश्चिमयामिन्यां निधुवनम् = पश्चिमयामिनीनिधुवनम् = रात्रिशेषे सुरतम् । पञ्च इषवः सन्ति यस्य तस्य पञ्चेषोः = कामदेवस्य । विजयिनः = उत्कृष्टाः । जर्जराः = क्षीणाः-पुराने ॥ ४ ॥

कप्पूरपंसुपरिबासिदचंदणाणं
भद्दं णिदाहदिअसाणं बअस्स ! भोदु ॥ ५ ॥
(पाण्डुच्छविच्छुरितनागलतादलानां
सहकारतैलपरिपेशलपूगफलानाम् ।
कर्पूरपांशुपरिवासितचन्दनानां
भद्रं निदाघदिवसानां वयस्य ! भवतु ॥ ५ ॥)

राजा—एदं उण एत्थ रमणिज्जं । (इदं पुनरत्र रमणीयम्)
सपञ्चमतरङ्गिणो स्सवणसीअला वेणुणो
समं सिसिरबारिणा बअणसोअला बारुणी ।

अन्वयः—वयस्य ! पाण्डुच्छविच्छुरितनागलतादलानाम् सहकारतैलपरिपेशलपूगफलानाम् कर्पूरपांशुपरिवासितचन्दनानाम् निदाघदिवसानाम् भद्रम् भवतु ।

व्याख्या—मित्र ! एते निदाघदिवसाः चिरं तिष्ठन्तु, येषु नागलतानां दलाः पाण्डुभिः छविभिः प्रभाभिः छुरिताः व्याप्ताः दृश्यन्ते, सहकाराः आम्राः, तैलानि परिपेशलानि सुकोमलानि पूगफलानि च येषु प्रचुराः उत्पद्यन्ते, येषु च कर्पूरपांशुभिः कर्पूररजोभिः परिवासितानि चन्दनानि समृद्धानि भवन्ति । एतादृशस्य ग्रीष्मसमयस्य कल्याणं भवतु । चिरं तिष्ठतु ग्रीष्मर्तुरिति भावः ॥ ५ ॥

पूगफलों (सुपारियों) वाले तथा कपूर की सुगन्ध से युक्त चन्दन जिन में खूब पाया जाता है ऐसे गर्मी के दिनों का कल्याण हो—अर्थात् यह ग्रीष्म ऋतु चिर काल तक बनी रहे ॥ ५ ॥

राजा—इस ऋतु में यह सुन्दरता है ।

रागमय, पञ्चमस्वर के साथ तथा कानों को मधुर लगने वाला वंशीरव, शीतल

टिप्पणी—पाण्डुभिः छविभिः छुरिताः नागलतानाम् दलाः येषु तेषाम् = पाण्डुच्छविच्छुरितनागलतादलानाम् = पाण्डुप्रभाव्याप्ततांबूलीपर्णानाम् । सहकाराः तैलानि परिपेशलानि पूगफलानि च येषु तेषाम् सहकारतैलपरिपेशलपूगफलानाम् = आम्रतैल सुकोमलगुवाकफलानाम् । कर्पूरपांशुभिः परिवासितानि चन्दनानि येषु तेषाम् = कर्पूरपांशुपरिवासितचन्दनानाम् = कर्पूररेणुसुवासितचन्दनानाम् । निदाघदिवसानाम् = ग्रीष्मदिनानाम् । भद्रम् = कल्याणम् ॥ ५ ॥

सचन्दणघणत्थणी सअणसीअला कामिणी
णिदाहदिअसोसहं सहजसीअलं कस्सवि ॥ ६ ॥
(सपञ्चमतरङ्गिणः श्रवणशीतला वेणवः
समं शिशिरवारिणा वदनशीतला वारुणी ।
स चन्दनघनस्तनी शयनशीतला कामिनी
निदाघदिवसौषधं सहजशीतल कस्यापि ॥ ६ ॥)

अवि अ (अपि च)—

अन्वयः—सपञ्चमतरङ्गिणः श्रवणशीतलाः वेणवः, शिशिरवारिणा समम् वदनशीतला वारुणी, सचन्दनघनस्तनी शयनशीतला कामिनी, 'एतत् त्रयम्' कस्यापि सहजशीतलम् निदाघदिवसौषधम् 'अस्ति' ।

सरलार्थः—पञ्चमस्वरयुक्तानि रागवन्ति श्रुतिमधुराणि वंशीवाद्यानि, नीहार-जलेन सह मुखशीतलकरी मदिरा, चन्दनचर्चितकठोरकुचवती शय्यासुखदायिनी कामिनी एतत् त्रयम् स्वभावशीतलम् वस्तु कस्यापि भाग्यवत एव ग्रीष्मोपचाररूपेण उपलब्धं भवतीत्यर्थः ॥ ६ ॥

जल के साथ मुख को ठण्डा करने वाली शराब, चन्दन लगे हुए तथा कठोर स्तनों वाली और शय्या में सुख देने वाली कामिनी ये तीन स्वभाव से ही शीतल चीजें किसी भाग्यवान् को ही ग्रीष्म ऋतु में उपचार रूप से मिलती हैं ॥ ६ ॥

और भी:—

टिप्पणी—पञ्चमेन सहिताः सपञ्चमाः, सपञ्चमाश्च तरङ्गिणश्च सपञ्चमतरङ्गिणः = पञ्चमस्वरयुक्ताः, रागवन्तश्च । श्रवणयोः शीतलाः = श्रवणशीतलाः = कर्णमधुराः । वेणवः = वंशीरवाः । शिशिरवारिणा समम्–समम् के योग में तृतीया । वदनाय शीतला = वदनशीतला = मुखशीतलकरी । वारुणी = सुरा । चन्दनेन सहितौ = सचन्दनौ, सचन्दनौ घनौ च स्तनौ यस्याःसाः सचन्दनघनस्तनी = चन्दनचर्चितकठोरस्तनी । शयने शीतला = शयनशीतला = शय्यायां सुखवर्धिका । निदाघदिवसानाम् औषधम् = निदाघदिवसौषधम् = ग्रीष्मोपचारः ॥ ६ ॥

लीलुत्तंसो सिरीसं सिहिणपरिसरे सिन्दुवाराणं हारो
अङ्गे आद्दं वरिल्लं रमणपणइणी मेहला उप्पलेहिं।
दोसुं दोकंदलीसुं णवबिसवलआ कामबेज्जो मणोज्जो
तावातङ्कक्खमाणं महुसमए गदे एस बेसोऽबलाणं ॥ ७ ॥

(लीलोत्तंसः शिरीषं स्तनपरिसरे सिन्दुवाराणां हारः
अङ्गे आर्द्रं वस्त्रं रमणप्रणयिनो मेखलोत्पलैः।
द्वयोर्दोः कन्दल्योर्नवविसवलया कामवैद्यो मनोज्ञः
तापातङ्कक्षमाणां मधुसमये गते एष वेशोऽबलानाम् ॥ ७ ॥)

अन्वयः—मधुसमये गते लीलोत्तंसः शिरीषम्, स्तनपरिसरे सिन्दुवाराणाम् हारः, अङ्गे आर्द्रं वस्त्रम्, उत्पलैः रमणऽणीयनी मेखला, द्वयोः दोः कन्दल्योः नवविस-वल्या, तापातङ्कक्षमाणाम् अबलानाम् एष मनोज्ञः वेशः कामवैद्यः।

सरलार्थः—वसन्तकाले समाप्ते सति लीलया कर्णयोः शिरीषधारणम्, वक्षः-स्थले सिन्दुवारपुष्पाणाम् हारस्य धारणम्, अङ्गे जलसिक्तं वस्त्रम्, जघनयोः रत्न-युक्ता काञ्ची, द्वयोः भुजलतयोः नवानां मृणालतन्तूनां कंकणानि—एतादृश एव मनोहरः वेशः ग्रीष्मतापपीडितानाम् अबलानाम् कामावेशशान्तिं करोति ॥ ७ ॥

कानों में शिरीष का फूल लगाना, वक्षःस्थल पर सिन्दुवार के फूलों का हार धारण करना, शरीर पर गीले वस्त्र रखना, रत्नजड़ी हुई करधनी पहिरना तथा लता जैसी दोनों भुजाओं में नवीन मृणाल तन्तुओं के कङ्कण पहिनना—इस तरह का सुन्दर वेश ग्रीष्म ऋतु में गर्मी के कष्ट को सहन करने वाली अबलाओं के कामावेश को शान्ति पहुँचाता है ॥ ७ ॥

टिप्पणी—शिरीषम्=सिरस का फूल। उत्तंसः=कानों का एक आभूषण। स्तन-परिसरे=स्तनों पर। रमणयोः प्रणयिनी=रमणप्रणयिनी=जङ्घाओं से प्रीति करनेवाली। दोः कन्दल्योः=भुजलताओं पर। नवानां विसानां वलयाः=नवविसवलयाः=सरसमृणाल-तन्तुकङ्कणानि। तापस्य आतंकं क्षमन्ते इति तेषां तापातङ्कक्षमाणां=तापक्लेशसहानाम्। कामवैद्यः=कामशान्तिकरः। मधुसमयः=वसन्तसमयः ॥ ७ ॥

विदूषकः—अहं उण भणामि। (अहं पुनर्भणामि)—

मज्झण्हसलक्खघणचन्दणपङ्किलाणं
सात्रं णिसेविदणिरंतरमज्जणाणं।
सज्जासु बीअणजवारिकणुक्खिदाणं
दासत्तणं कुणइ पञ्चसरोऽबलाणं॥ ८॥

(मध्याह्नश्लक्ष्णघनचन्दनपङ्किलानां
सायं निषेवितनिरन्तरमज्जनानाम्।
शय्यासु व्यजनजवारिकणोक्षितानां
दासत्वं करोति पञ्चशरोऽबलानाम्॥ ८॥)

अन्वयः—पञ्चशरः मध्याह्नश्लक्ष्णघनचन्दनपङ्किलानाम्, सायम् निषेवितनिरन्तरमज्जनानाम्, शय्यासु व्यजनजवारिकणोक्षितानाम् अबलानाम् दासत्वम् करोति।

सरलार्थः—कामदेवः मध्याह्ने चिक्कणैः सान्द्रैश्च चन्दनैः यासामङ्गानि अनुलिप्तानि सन्ति, सायं च याः निरन्तरं जलावगाहनं कुर्वन्ति, शय्यासु च याः व्यजनमुक्तैः वारिकणैः सिक्ताः भवन्ति तासां कामिनीनां सेवां करोति॥ ८॥

विदूषक—मैं तो यह कहता हूँ:—

दोपहर में जो चिकना और गाढ़ा चन्दन लगाती हैं, सायंकाल जो लगातार नहाती रहती हैं, शय्याओं पर पंखे से निकले हुए जल के कणों से जिनके शरीर भीगे रहते हैं—ऐसी स्त्रियों का कामदेव दास बना रहता है॥ ८॥

टिप्पणी—श्लक्ष्णानि घनानि च चन्दनानि श्लक्ष्णघन-चन्दनानि, मध्याह्ने श्लक्ष्णघन-चन्दनैः पङ्किलाः, तासां मध्याह्नश्लक्ष्णघनचन्दनपङ्किलानाम् = मध्याह्नचिक्कणसान्द्रचन्दनानुलिप्तानाम्—दोपहर को चिकने और गाढ़े चन्दन से लिप्त। निषेवितं निरन्तरं मज्जनम् याभिः तासाम् = निषेवितनिरन्तरमज्जनानाम् = कृतनित्यजलावगाहनानाम्—लगातार जल में खेलती हुई। व्यजनाज्जाताः = व्यजनजाः, तादृशाः ये वारिकणाः तैः उक्षितानाम् = व्यजनजवारिकणोक्षितानाम् = व्यजनोत्पन्नजलबिन्दुसिक्तानाम् = व्यजन से उत्पन्न जल के कणों से सिक्त। पञ्चशरः = कामदेव॥ ८॥

राजा—[स्मरणमभिनीय१]—

पच्चङ्गं णवरूअभङ्गिघडणारम्मे जणे सङ्गमो

जाणं ताणं खणं व्व झत्ति दिअहा वट्टन्ति दीहा अपि ।

जाणं ते अ मणम्मि देंति ण रइं चित्तस्स सन्दाविणो

ताणं जांति जगम्मि दीहरतमा मासोवमा वासरा ॥ ९ ॥

(प्रत्यङ्ग नवरूपभङ्गिघटनारम्ये जने सङ्गमो

येषां तेषां क्षणमिव झटिति दिवसा वर्त्तन्ते दीर्घा अपि ।

येषां ते च मनसि ददति न रतिं चित्तस्य सन्तापिनः

तेषां यान्ति जगति दीर्घतमा मासोपमा वासराः ॥ ९ ॥)

अन्वयः—येषाम् प्रत्यङ्गम् नवरूपभंगिघटनारम्ये जने सङ्गमः (भवति) तेषाम् दीर्घाः अपि दिवसाः झटिति क्षणमिव वर्तन्ते । ते च येषाम् मनसि रतिम् न ददति, जगति तेषाम् चित्तस्य सन्तापिनः वासराः मासोपमा यान्ति ।

सरलार्थः—येषाम् जनानाम् सर्वांगसुन्दरेण प्रियेण सह सहवासः भवति, तेषाम् दीर्घाः अपि दिवसाः शीघ्रम् क्षणमिव गच्छन्ति । प्रियजनाः येषाम् चित्ते सङ्गमानन्दं न ददति, तेषां मनसः दुःखदायिनः दिवसाः संसारे माससदृशाः अतिविस्तृताश्च जायन्ते ॥ ९ ॥

राजा—(**स्मृति का अभिनय कर**):—

जिन लोगों का अंगप्रत्यंग के सौन्दर्य से युक्त अपने प्रियजन के साथ संगम हो जाता है, उनके लम्बे-लम्बे दिन शीघ्र ही क्षणों की तरह बीत जाते हैं और प्रियजन जिनके चित्तों को अपने मिलने का आनन्द नहीं देते, संसार में उनके चित्त को दुःख पहुँचाने वाले दिन महीनों के बराबर अत्यन्त लम्बे हो जाते हैं ॥ ९ ॥

---

१. अभिनीय = अभिनय कर-अभि √नी + य-ल्यबन्त ।

टिप्पणी—अङ्गमङ्गं प्रति = प्रत्यङ्गम् (अव्ययीभाव) हर अंग में । नवानाम् रूपभंगीनाम् घटनया रम्ये = नवरूपभंगिघटनारम्ये = अभिनवसौन्दर्यरचनामनोहरे-अपूर्व सौन्दर्य छटाओं की रचना से सुन्दर । रतिम = सङ्गमानन्दम्-मिलने का आनन्द । सन्तापिनः =

राजा—[विदूषकं प्रति] **वअस्स ! अत्थि तग्गदा कावि वत्ता ?** ।
(वयस्य ! अस्ति तद्गता काऽपि वार्त्ता ?)

विदूषकः—**अत्थि, सुणादु प्पिअवअस्सो, कधेमि सुहासिदं दे । जदो प्पहुदि कप्पूरमञ्जरी रक्खाभवणादो सुरङ्गादुआरे देवीए दिट्ठा, तदो प्पहुदि तं सुरङ्गादुआरं देवीए बहलसिला-मञ्चएण णीरन्धं कदुअ पिहिदं । अणङ्गसेणा कलिंगसेणा काम-सेणा बसन्तसेणा बिब्भमसेणेत्ति पञ्च सेणाणामधेआओ चामर-धारिणीओ फारप्फुरक्किदकरवालहत्थपाइक्कसहस्सेण सह कारा-मन्दिरस्स रक्खाणिमित्तं पुब्बदिसि णिउत्ताओ** । (अस्ति, शृणोतु प्रियवयस्यः, कथयामि सुभाषितं ते । यतः प्रभृति कर्पूरमञ्जरी रक्षाभवनात् सुरङ्गाद्वारे देव्या दृष्टा, ततः प्रभृति तत् सुरङ्गाद्वारं देव्या बहुलशिलासञ्चयेन नीरन्ध्रं कृत्वा पिहितम् । अनङ्गसेना कलिङ्गसेना कामसेना वसन्तसेना विभ्रमसेनेति पञ्च सेनानामधेयाश्चामरधारिण्यः स्फारस्फुरत्करवालहस्तपदातिसहस्रेण सह कारामन्दिरस्य रक्षानिमित्तं पूर्वदिशि नियुक्ताः ।)

राजा—(**विदूषक से**) **मित्र ! कुछ उसका भी हाल मालूम है ?**

विदूषक—**हाँ, है, मित्र सुनो ? तुम्हारे लिए शुभ समाचार सुनाता हूँ । जब से महारानी ने कर्पूरमञ्जरी को रक्षाभवन से सुरंगाद्वार पर जाती हुई देखा, तब से उस सुरंगा के दरवाजे को बहुत पत्थरों से नीरन्ध्र करके ढक दिया है और अनंगसेना, कलिंगसेना, कामसेना, वसन्तसेना तथा, विभ्रमसेना नाम वाली पाँच चंवर डुलाने वालियों को अत्यन्त चमकती हुई तलवार हाथ में लिए हजार पैदल**

दुःखदायिनः । मासैः उपमा अस्ति येषां ते मासोपमाः = माससदृशाः । अतिशयेन दीर्घाः = दीर्घतमाः = अत्यायताः । यान्ति = बीतते हैं √या धातु से प्रथम पु० बहु० लट्लकार ॥ ९ ॥

टिप्पणी—सुभाषितम् = शुभ समाचार । शिलाना सञ्चयः = शिलासञ्चयः, बहुलश्चासौ शिलासंचयः, तेन = बहुलशिला-सचयेन = प्रभूतशिलासमूहेन । रन्ध्रेभ्यः निर्गतम् (रहि-

अणङ्गलेहा चित्तलेहा चन्दलेहा मिअङ्कलेहा विब्भमलेहेत्ति लेहाणामधेआओ पञ्च सेरन्धीओ पुंखिदसिलीमुहणुहत्थेण णिविड़णिबद्धतूणीरदुद्धरेण धाणुक्कसहस्सण समं दक्खिणाए दिसाए णिवेसिदाओ। (अनङ्गलेखा चित्रलेखा चन्द्रलेखा मृगांकलेखा विभ्रमलेखेति लेखानामधेयाः पञ्च सैरिन्ध्यः पुङ्खितशिलीमुखधनुर्हस्तेन निबिडनिबद्धतूणीरदुर्द्धरेण धानुष्कसहस्रेण समं दक्षिणस्यां दिशि निवेशिताः।)

कुन्दमाला चन्दणमाला कुवलअमाला कञ्चणमाला बउल-माला मङ्गलमाला माणिक्कमालेत्ति सत्त मालेत्तिणामधेआओ णवणिसिदकुंतहत्थपाइक्कसहस्सेण समं तम्बूलकरंकवाहिणीओ

सिपाहियों के साथ कारागार की रक्षा के लिए पूर्वदिशा में नियुक्त कर दिया है॥

अनंगलेखा, चित्रलेखा, चन्द्रलेखा, मृगाङ्कलेखा और विभ्रमलेखा—इन लेखा नाम वाली पाँच सैरिन्ध्रियों को बाण चढ़े हुए धनुष को हाथ में लिए हुए और खूब बंधे हुए तरकस से सज्जित हजार धनुर्धारियों के साथ दक्षिण में नियुक्त कर दिया है।

कुन्दमाला, चन्दनमाला, कुवलयमाला, काञ्चनमाला, वकुलमाला, मङ्गलमाला

तम्) नीरन्ध्रम्=छिद्ररहितम्। पिहितम्=आच्छादितम्—ढक दिया। स्फारम् अत्यन्तम् स्फुरन् करवालः हस्ते यस्य तत् स्फारस्फुरत्करवालहस्तम्, तादृशं पदातिसहस्रम् तेन स्फारस्फुरत्करवालहस्तपदातिसहस्रेण=अतिदीप्यमानखड्गहस्तपादचारिसैन्यसमूहेन। कारा-मन्दिरम्=बन्दीगृह।

टिप्पणी—सैरिन्ध्री=ऐसी स्त्री जो दूसरे के घर रहे, स्वतन्त्र हो और केश झाड़ना गूथना आदि शिल्पकार्य करती हो। पुंखितः संहितः शिलीमुखः यस्मिन् तत् पुंखितशिली-मुखम्, तादृशं धनुः हस्ते यस्य तेन पुंखितशिलीमुखधनुर्हस्तेन=संहितबाणधनुर्हस्तेन। निविड निबद्धः तूणीरस्तेन दुर्द्धरेण=निविडनिबद्धतूणीरदुर्द्धरेण=दृढनिबद्धतूणीरदुरासदेन। धानुष्कानाम् सहस्रं तेन धानुष्कसहस्रेण=हजार धनुर्धारियों के द्वारा।

पच्छिमाए दिसाए णिवसिदाओ। (कुन्दमाला चन्दनमाला कुवलयमाला काञ्चनमाला बकुलमाला मङ्गलमाला माणिक्यमालेति सप्त मालेतिनामधेया नवनिशितकुन्तहस्तपदातिसहस्रेण समं ताम्बूलकरङ्कवाहिन्यः पश्चिमायां दिशि निवेशिताः।)

अणङ्गकेली पुक्खरकेली कन्दप्पकेली सुन्दरकेली कन्दोट्टकेलीत्ति पञ्च केलीत्तिणामधेआओ मज्जणकारिणीओ फलअखग्गकम्पविदुरिल्लेण पाइक्कसहस्सेण समं उत्तरदिसाए आणत्ताओ। (अनङ्गकेलिः पुष्करकेलिः कन्दर्पकेलिः सुन्दरकेलिः उत्पलकेलिरिति पञ्च केलीतिनामधेया मज्जनकारिण्यः फलकखड्गकम्पभीषणेन पदातिसहस्रेण सममुत्तरदिशि प्राज्ञप्ताः।)

ताणं वि उण उवरि मदिरावदी केलिवदी कल्लोलवदी

और माणिक्यमाला—इन सात माला नाम वाली पानदान उठाने वालियों को नए तेज किए हुए भाले हाथ में लिए हुए हजार पैदल सिपाहियों के साथ पश्चिम में नियुक्त कर दिया है।

अनंगकेलि, पुष्करकेलि, कन्दर्पकेलि, सुन्दरकेलि, उत्पलकेलि—इन पाँच केलि नाम वाली स्नान कराने वालियों को ढाल और तलवार लिए हजार पैदल सिपाहियों के साथ उत्तर दिशा में नियुक्त कर दिया है।

उनके भी ऊपर मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरंगवती और अनंगवती—इन

टिप्पणी—नवाश्च निशिताश्च कुन्ताः = नवनिशितकुन्ताः। नवनिशितकुन्ताः हस्तेषु येषां तत् नवनिशितकुन्तहस्तम्, तादृशं पदातिसहस्रम् तेन नवनिशितकुन्तहस्तपदातिसहस्रेण = नवतीक्ष्णकुन्तहस्तपदातिसमूहेन—नए और तेज भाले हाथ में लिए हुए हजार पैदल सिपाहियों के द्वारा। ताम्बूलानां करंकम् वहन्तीति याः ताः ताम्बूलकरंकवाहिन्यः = पानदान को उठानेवाली स्त्रियां। ताम्बूलकरंकः = पानदान।

टिप्पणी—मज्जनं कारयन्ति इति याः ता मज्जनकारिण्यः = स्नापयित्र्यः—स्नान कराने वाली स्त्रियां। फलकस्य खड्गस्य च कम्पेन भीषणं तेन फलकखड्गकम्पभीषणेन=फलकखड्गसञ्चालनभयंकरेण। फलकम् = ढाल।

तरंगवदी अणंगवदीत्ति पंच वदीत्तिणामधेआओ परिचारिआ-कुमारीओ कणअवेत्तदंडहत्थाओ सुहासिअपाढिआओ बंदीणाम-धेआओ सेणाए अज्झक्खीकिदाओत्ति। (तासामपि पुनरुपरि मदिरावती केलिवती कल्लोलवती तरङ्गवती अनङ्गवतीति पञ्च वतीनि-नामधेयाः परिचारिकाकुमार्यः कनकवेत्रदण्डहस्ताः सुभाषितपाठिका वन्दीनामधेयाः सेनाया अध्यक्षीकृता इति ।)

राजा—अहो ! देवीए सामग्गो अंतेउरोचिदा। (अहो ! देव्याः सामग्री अन्तःपुरोचिता ।)

विदूषकः—भो वअस्स ! एसा देवीए सारंगिआ णाम सही किंपि णिवेदिदुं पेसिदा। (वयस्य ! एषा देव्या सारङ्गिकानाम सखी किमपि निवेदितुं प्रेषिता ।)

वती नाम वाली पांच कुमारी परिचारिकाओं को जो कि हाथ में सोने के डण्डे लिए हुई हैं और सुभाषित पढ़ती रहती हैं—सेना का अध्यक्ष बना दिया है।

राजा—अरे ! देवी की परिचर्या का सामान अन्तःपुर के उपयुक्त ही है।

विदूषक—मित्र ! (देखो) महारानी ने इस सारंगिका नाम की सखी को कुछ कहने के लिए भेजी है।

टिप्पणी—परिचरन्तीति याः परिचारिकाः, तासां कुमार्यः=परिचारिकाकुमार्यः=सेविकाकन्यकाः । कनकस्य वेत्रदण्डः हस्ते यासां ताः=कनकवेत्रदण्डहस्ताः=सुवर्णवेत्र-दण्डपाणयः। सुभाषितानि पठन्तीति याः ताः सुभाषितपाठिकाः=स्तुतिपाठिकाः। अध्यक्षी-कृताः=अनध्यक्षाः अध्यक्षाः कृताः इति अध्यक्षीकृताः (च्विप्रत्ययान्त) अध्यक्ष बना दिया गया है।

टिप्पणी—सामग्री=परिचर्या का सामान । अन्तःपुरस्य उचिता=अन्तःपुरो-चिता=अवरोधसदृशी-अन्तःपुर (रनिवास) के अनुकूल।

टिप्पणी—निवेदितुम्=कहने को, निपूर्वक √वेदि (चुरादि) से तुम् । प्रेषिता=भेजी, √प्रेष्+इ+त। (क्तप्रत्ययान्त)।

[ततः प्रविशति सारङ्गिका]

सारङ्गिका—जअदु जअदु भट्टा । देव ! देवी विण्णवेदि—'अज्ज चतुत्थदिअहे भविअवडसाइत्तीमहूसवोवकरणाइं केलिविमाणप्पसादमारुहिअ प्पेक्खिदव्वाइं' त्ति । (जयतु जयतु भर्त्ता ! देव ! देवी विज्ञापयति—'अद्य चतुर्थदिवसे भाविवटसाविस्त्रीमहोत्सवोपकरणानि केलिविमानप्रासादमारुह्य प्रेक्षितव्यानि' इति ।)

राजा—जं देवी आणवेदि । (यत् देवी आज्ञापयति ।)

[चेटी निष्क्रान्ता । उभौ प्रासादाधिरोहणं नाटयतः]

[ततः प्रविशति चर्चरी]

विदूषकः—

मोत्ताहलिल्लाहरणुच्चआओ लास्सावसाणे चलिअंसुआओ ।
सिंचंति अण्णोण्णमिमीअ पेक्ख जंताजलेहिं मणिभाजणेहिं ॥१०॥

(मुक्ताफलाभरणोच्चया लास्यावसाने चलितांशुकाः ।

अन्वयः—मुक्ताफलाभरणोच्चयाः चलितांशुकाः इमाः लास्यावसाने यन्त्रजलैः मणिभाजनैः अन्योऽन्यम् सिञ्चन्ति, पश्य ।

(तब सारंगिका आती है)

सारंगिका—महाराज की जय हो । महाराज ! महारानी कहती हैं कि आज चौथे दिन होने वाले वटसावित्री के महोत्सव की शोभा को महाराज केलिविमानप्रासाद पर चढ़ कर देखें ।

राजा—जो महारानी की आज्ञा ।

(चेटी बाहर जाती है । दोनों महल पर चढ़ने का अभिनय करते हैं)

(तब चर्चरी-नर्तकियां आती हैं)

विदूषक—मोतियों के आभूषण धारण किए हुए तथा जिनके वस्त्र हवा में उड़

टिप्पणी—चर्चरी = एक प्रकार का गाना गाने और नाचने वालों की मण्डली ।

टिप्पणी—मुक्ताफलानि आभरणोच्चयाः यासां ताः मुक्ताफलाभरणोच्चयाः = मौक्तिक-

सिञ्चन्त्यन्योऽन्यमिमाः पश्य यन्त्रजलैर्मणिभाजनैः ॥ १० ॥)

इदो अ (इतश्च)—

परिब्भमन्तीअ विचित्तबन्धं इमाइ दोसोलह णच्चणोओ ।
खेलन्ति तालाणुगदपदाओ तुहांगणे दीसइ दण्डरासो ॥ ११ ॥

(परिभ्रमन्त्यो विचित्रबन्धमिमा द्विषोडश नर्त्तक्यः ।
खेलन्ति तालानुगतपदास्तवाङ्गने दृश्यते दण्डरासः ॥११॥)

सरलार्थः—मौक्तिकहारादिभिः विभूषिताः, प्रचलद्वसनाः इमाः नट्यः नृत्यसमाप्तौ यत्रनिर्गतजलैः मणिमयपात्रैः परस्परं सिञ्चन्ति, त्वं पश्येदं दृश्यमिति भावः ॥ १० ॥

अन्वयः—इमाः द्विषोडश नर्तक्यः विचित्रबन्धम् परिभ्रमन्त्यः तालानुगतपदाः खेलन्ति, तव अङ्गने दण्डरासः दृश्यते ।

सरलार्थः—इमाः द्वात्रिंशत् नर्तक्यः विचित्रेण बन्धेन चरणविक्षेपं तालानुकूलं च कृत्वा परिभ्रमन्ति । अतः तव चत्वरे दण्डकारेण स्थित्वा शृङ्खलाबन्धवत् क्रीडनविशेषः दृश्यते ॥ ११ ॥

रहे हैं ऐसी ये नर्तकियाँ नृत्य समाप्त होने पर यन्त्र से निकले जल से युक्त माणिक्य पात्रों से एक दूसरे को भिगो रही हैं ॥ १० ॥

इधर तो :—

ये बत्तीस नर्तकियाँ विचित्र बन्ध बना कर घूम रही हैं, इनके पैर भी ताल के मुताबिक पड़ रहे हैं । इसलिए तुम्हारे आंगन में दण्डरास सा दिखलाई पड़ रहा है ॥ ११ ॥

हारादिभिरलङ्कृताः । मोतियों के आभूषणों से सजी हुई । उच्चयः = सञ्चय । लास्यम् = कोमलनृत्यम् । चलितानि अंशुकानि यासां ताः = चिलतांशुकाः = उड़ते हुए वस्त्रों वाली । मणिभाजनैः = मणियों के बर्तनों से । सिञ्चन्ति = भिगोती हैं, √सिच् क्षरणे-(तुदादि लट् लकार-प्रथम पु० बहुव०) ॥ १० ॥

टिप्पणी—द्विषोडशः = द्वात्रिंशत्-बत्तीस। तालेन अनुगतः पदः यासां ताः = तालानुगतपदाः = लयानुकूलचरणविक्षेपाः-ताल के अनुकूल जिनके पैर पड़ते हैं । दण्डरासः = दण्डाकारेण स्थित्वा शृखलाबन्धवत् क्रीडनविशेषः-दण्ड के आकार से खड़े होकर शृखला बन्ध की तरह खेल ॥ ११ ॥

समांससीस्सा समबाहुहत्था रेहाविसुद्धा अपरा अ देंति।
पंत्तीहिं दोहिं लअतालबंधं परप्परं साहिमुहा हुवंति ॥ १२ ॥
(समांसशीर्षाः समबाहुहस्ता रेखाविशुद्धा अपराश्च ददति ।
पङ्क्तिभ्यां द्वाभ्यां लयतालबन्धं परस्परं साभिमुखा भवन्ति ॥१२॥)
मोत्तूण अण्णा मणिवारआइं जंत्तेहिं धारासलिलं खिवन्ति ।
पडंति ताओ अ पिआणमंगे मणोहुओ वारुणबाणकप्पा ॥१३॥
(मुक्त्वा अन्या मणिवारणानि यन्त्रैर्धारासलिलं क्षिपन्ति ।
पतन्ति ताश्च प्रियाणामङ्गे मनोभुवो वारुणबाणकल्पाः ॥ १३ ॥)

अन्वयः—अपराः समांसशीर्षाः समबाहुहस्ताः रेखाविशुद्धाः द्वाभ्याम् पङ्क्तिभ्यां लयतालबन्धम् ददति, परस्परम् साभिमुखाः भवन्ति ।

सरलार्थः—अपराः नर्तक्यः स्कन्धौ शिरांसि च समानि कृत्वा, बाहू करावपि च समौ विधाय रेखामात्रमपि स्खलिताः न भूत्वा द्वाभ्यां पङ्क्तिभ्यां लयस्य तालस्य च बन्धम् ददति, परस्परं साम्मुख्येन तिष्ठन्ति च ॥ १२ ॥

अन्वयः—अन्याः मणिवारणानि मुक्त्वा यन्त्रैः धारासलिलं क्षिपन्ति । ताः च प्रियाणामङ्गे मनोभुवः वारुणबाणकल्पाः पतन्ति ।

सरलार्थः—अन्याः नर्तक्यः रत्नखचितकवचानि त्यक्त्वा यन्त्रैः धारासलिलं

कुछ नर्तकियाँ कन्धे और सिर बराबर किए हुए तथा भुजाएँ और हाथों को भी एक सी स्थिति में रखे हुए और जरा भी गलती न करते हुए दो पंक्तियों में लय और ताल के मेल के साथ चलती हैं और एक दूसरे के सामने आती हैं ॥१२॥

कुछ नर्तकियाँ रत्न जड़े हुए कवच उतार कर यन्त्रों से पानी की धारें

टिप्पणी—समम् अंसशीर्षम् यासां ताः = समांसशीर्षाः = तुल्यस्कन्धशिरसः = बराबर कन्धे और सिर वाली । समम् बाहुहस्तम् यासां ताः समबाहुहस्ताः = तुल्यबाहुकराः । रेखया विशुद्धाः = रेखाविशुद्धाः = अणुमात्रमपि न स्खलिताः । रेखा तक का विचार करती हुई । लयस्य तालस्य च बन्धो यत्र तत् यथा तथा लयतालबन्धम् = लय और ताल के बन्ध के साथ ॥ १२ ॥

टिप्पणी—मणीनां वारणानि = मणिवारणानि = रत्नखचितकवचानि-रत्नों से जड़े हुए

इमा मसीकज्जलकालकाआ तिक्खच्छचावा अ बिलासिणीओ ।
पुलिंदरूवेण जणस्स हासं समोरपिच्छाहरणा कुणंति ॥ १४ ॥
(इमा मसीकज्जलश्यामकायास्तीक्ष्णाक्षिचापाश्च विलासिन्यः ।
पुलिन्दरूपेण जनस्य हासं समयूरपिच्छाभरणाः कुर्वन्ति ॥ १४ ॥)
हत्थे महामंसबलीधराओ हुंकारफेक्काररवा रउद्दा ।
णिसाअरीणं पडिसीस्सएहि अण्णा स्ससाणाभिणअं कुणंति ॥

मुञ्चन्ति । ताः सलिलधाराश्च तासां कान्तानाम् अंगे कामदेवस्य वारुणास्त्रसदृशा भूत्वा पतन्ति ॥ १३ ॥

अन्वयः—मसीकज्जलश्यामकायाः तीक्ष्णाक्षिचापाः समयूरपिच्छाभरणाः इमा विलासिन्यः पुलिन्दरूपेण जनस्य हासं कुर्वन्ति ।

सरलार्थः—मसीवत् कज्जलवच्च श्यामशरीराः, चापमिव तीक्ष्णे नेत्रे धारयन्त्यः तथा मयूरपिच्छानामाभरणेन शोभिताः इमाः कामिन्यः व्याधरूपेण जन हसयन्ति ॥ १४ ॥

छोड़ती हैं। पानी की वे धारें उनके प्रेमियों के शरीर पर कामदेव के वारुण बाण की तरह पड़ती हैं ॥ १३ ॥

स्याही और काजल की तरह कृष्ण शरीर वाली, धनुष की तरह तिरछी नजरें वाली और मोर के पंखों के आभूषणों से युक्त ये विलासिनी स्त्रियाँ शिकारी के रूप से लोगों को हंसाती हैं ॥ १४ ॥

कुछ स्त्रियाँ हाथ में नरमांस को ही उपहाररूप से धारण किए हुए और

कवच । मुक्त्वा = छोड़ कर– √मुच् + त्वा । वारुणवाणकल्पाः = वारुणास्त्रसदृशाः । मनोभुवः = कामदेव का ॥ १३ ॥

टिप्पणी—मसीवत् कज्जलवच्च श्यामाः कायाः यासां ताः = मसीकज्जलश्यामकायाः = कृष्णवर्णाः–स्याही और काजल की तरह काले शरीर वाली । तीक्ष्णे अक्षिणी चाप इव यासां ताः तीक्ष्णाक्षिचापाः = तीक्ष्णनेत्रकार्मुकाः–धनुष के समान तिरछे नेत्र वाली । मयूरपिच्छानाम् आभरणानि = मयूरपिच्छाभरणानि, तैः सहिताः = समयूरपिच्छाभरणाः = मयूरपिच्छविभूषिताः–मोर के पंखों से सजी हुई । पुलिन्दः = शिकारी ॥ १४ ॥

(हस्ते महामांसबलिधारिण्यो हुङ्कारफेत्काररवा रौद्राः ।
निशाचरीणां प्रतिशीर्षकैरन्याः श्मशानाभिनयं कुर्वन्ति ॥ १५ ॥)

काबि बारिदकरालहुडुक्कारम्ममद्दलरएण मिअच्छी ।
भूलदाहिं परिबाटिअलाहिं चेटिकम्मकरणम्मि प्पउत्ता ॥ १६ ॥
(काऽपि वादितकरालहुडुक्का रम्यमर्दलरवेण मृगाक्षी ।
भ्रूलताभ्यां परिपाटीचलाभ्यां चेटीकर्मकरणे प्रवृत्ता ॥ १६ ॥)

सरलार्थः—अन्याः नार्यः हस्ते नरमांसमेव उपहाररूपेण धारयन्त्यः, हुंकाररूपेण च श्रृगालध्वनिं कुर्वन्त्यः अत एव भीषणाः सत्यः राक्षसीनां प्रतिरूपैः श्मशानस्य प्रदर्शनव्यापारं कुर्वन्ति ॥ १५ ॥

अन्वयः—काऽपि मृगाक्षी रम्यमर्दलरवेण वादितकरालहुडुक्का परिपाटीचलाभ्याम् भ्रूलताभ्याम् चेटीकर्मकरणे प्रवृत्ता ।

सरलार्थः—कापि मृगनयनी नर्तकी मधुरेण मर्दलाख्यवादित्रस्य शब्देन द्वारविष्कम्भं भीषणं वादयन्ती परिपाटी चलाभ्याम् भ्रूलताभ्यां सहचरीणां कर्मकरणे प्रवृत्ता दृश्यते ॥ १६ ॥

हुंकाररूप से सियारों का सा शब्द करती हुई तथा रौद्ररूप बना कर राक्षसियों के चेहरे लगा कर श्मशान का अभिनय करती हैं ॥ १५ ॥

कोई हरिणी जैसे नेत्रों वाली नर्तकी मर्दल बाजे के मधुर शब्द से द्वारवि को जोर-जोर से बजाती हुई अपनी चञ्चल भौंहों से चेटीकर्म करने में लगी हुई है ॥

टिप्पणी—महामांसमेव बलिं धारयन्तीति महामांसबलिधारिण्यः = नरमांसोपहारयुक्ताः-मनुष्य के मांस को ही उपहाररूप में लिए हुए । हुंकाराः एव फेत्काररवाः यासां ताः हुंकारफेत्काररवाः = हुंकारश्रृगालध्वनियुक्ताः । प्रतिशीर्षकम् = चेहरा ॥ १५ ॥

टिप्पणी—मृगस्य इव अक्षिणी यस्याः सा मृगाक्षी = हरिणनयना । मर्दलः = एक प्रकार का ढोल । वादितं करालं हुडुक्कम् यया सा वादितकरालहुडुक्का = नादितभीषणद्वारविष्कम्भा = गुंजा दिया है भीषणरूप से द्वार विष्कम्भ को जिसने । हुडुक्कम् = एक प्रकार का बाजा ॥ १६ ॥

किंकिणीकिदरणज्झणसद्दा कंठगीदलअजंतिदताला।
जोगिणीवलअणच्चणकेलिं तालणेउररवं विरअंति॥ १७॥

(किङ्किणीकृतरणज्झणशब्दाः कण्ठगीतलययन्त्रितताला:।
योगिनीवलयनर्त्तनकेलि तालनूपुररवं विरचयन्ति॥ १७॥)

कोदुहलवसचंचलवेसा वेणुवादणपरा अवराओ।
कालवेसबसहासिदलोआ ओसरंति पणमंति हसंति॥ १८॥

(कौतूहलवशचञ्चलवेषा वेणुवादनपरा अपरा:।
कालवेशवषहासितलोका अपसरन्ति प्रणमन्ति हसन्ति॥ १८॥)

सरलार्थः—काश्चन स्निग्धः किङ्किणीभिः रणज्झणशब्दं कुर्वन्त्यः, कण्ठेषु गीतस्य लेपन तालं च नियमयन्त्यः परिव्राजिकानां वलयरूपेण नृत्यन्त्यथ तालपूर्वकं नूपुराणां इवं कुर्वन्त्यः विचरन्ति॥ १७॥

सरलार्थः—काश्चन कामिन्यः कौतूहलस्य वशेन चञ्चलं वेशं विधाय, वेणुवादने च तत्पराः भूत्वा, मलिनवेशेन जनान् हसयन्त्यः अपसरन्ति प्रणयन्ति हसन्ति च॥ १८॥

कुछ स्त्रियाँ क्षुद्रघण्टिकाओं से रणज्झण शब्द करती हुई, अपने कण्ठों के गीत के लय से ताल को जमाती हुई, परिव्राजिकाओं के वलय को बना कर नाचती हुई ताल से अपने नूपुरों को बजाती हैं॥ १७॥

कुछ स्त्रियाँ कुतूहलवश चंचल वेश बना कर, वीणा बजाती हुई और मलिन वेश से लोगों को हंसाती हुई पीछे हटती हैं, प्रणाम करती हैं और हंसती हैं॥ १८॥

टिप्पणी—किङ्किणीभिः कृतः रणज्झणशब्दः याभिः ताः = किंकिणीकृतरणज्झण-शब्दाः = क्षुद्रघण्टिकाकृतरणज्झणशब्दाः। कण्ठेषु गीतस्य लयेन यन्त्रितः तालः याभिः ताः = कण्ठगीतलययन्त्रितताला: = कण्ठगीतलयनियमितताला:। योगिनीनां वलयेन यत् नर्तनम् तदेव केलिः क्रीडा तम् = योगिनीवलयनर्तनकेलिम् = परिव्राजिकावलयनर्तन-क्रीडाम्॥ १७॥

टिप्पणी—कौतूहलस्य वशेन चञ्चलः वेशः यासां ताः = कौतूहलवशचञ्चलवेशाः। वेणोः-वादने पराः = वेणुवादनपराः = वंशीवादनतत्पराः। कालवेशस्य वशेन हासिताः लोकाः याभिः ताः = कालवेशवशहासितलोकाः = मलिनवेशवशहासितजनाः॥ १८॥

[प्रविश्य]

सारङ्गिका—[पुरोऽवलोक्य] एसो महाराओ उणो मरगअकुंजं ज्जेव्व गदो, कदलीघरं अ अणुप्पइट्ठो; ता अग्गदो गदुअ देवीविण्णविअं विण्णवेमि। [उपसृत्य] जअदु जअदु देवो। देवी एदं विण्णवेदि जधा 'संझासमए जूअं मए परिणेदव्वा'। (एष महाराजः पुनर्मरकतकुञ्जमेव गतः, कदलीगृहञ्च अनुप्रविष्टः; तदग्रतो गत्वा देवीविज्ञापितं विज्ञापयामि। (उपसृत्य) जयतु जयतु देवः। देवी इदं विज्ञापयति यथा 'सन्ध्यासमये यूयं मया परिणेतव्याः')

विदूषकः—भो! किं एदं अकालकोहंडपडणं ?। (भोः ! किमेतदकालकूष्माण्डपतनम् ?)

राजा—सारंगिए! सव्वं वित्थरेण कधेहि। (सारङ्गिके ! सर्वं विस्तरेण कथय)

(रंगमञ्च पर आकर)

सारंगिका—(सामने देखकर) महाराज तो मरकत कुञ्ज में चले गए। कदलीगृह में भी घुस गए। इसलिए आगे बढ़ कर महारानी का संदेश कहूँगी। (पास जाकर) महाराज की जय हो। महारानी कहती हैं कि आज शाम को मैं तुम्हारा विवाह कराऊँगी।

विदूषक—अरे! कुसमय में ही यह कूष्माण्ड कैसे गिर पड़ा ?

राजा—सारंगिके! सब विस्तार से कहो।

टिप्पणी—अवलोक्य = देखकर-अव √लोकि + य-ल्यबन्त-इकार का लोप। परिणेतव्याः = विवाह किया जाना चाहिए।

टिप्पणी—अकाले कूष्माण्डस्य पतनम् = अकालकूष्माण्डपतनम् = कुसमय पर कोई अप्रासंगिक बात होना।

सारङ्गिका—एदं विण्णवीअदि, अणंतरातिक्कंतचउद्दसीदिअहे देवीए पोम्मराअमणिमई गोरी कदुअ भैरवाणंदेण प्पडिट्ठाविदा, सअं अ दिक्खा गहिदा। तदो ताए विण्णत्तो जोगीस्सरो गुरुदक्खिणाणिमित्तं। भणिदं अ तेण, जइ अवस्सं गुरुदक्खिणा दादव्वा, ता एसा दीअदु महाराअस्स। तदो देवीए विण्णत्तं, जं आदिसदि भअवं। उणो वि उल्लविदं तेण, अत्थि एत्थ लाटदेसे चंडसेणो णाम राजा, तस्स दुहिदा घणसारमंजरी णाम, सा देवण्णेहिं आदिट्ठा, एसा चक्कवट्टिघरिणी भविस्सदि त्ति; तदो महाराअस्स परिणेदव्वा, तेण गुरुदक्खिणा दिण्णा भोदि, भट्टा वि चक्कवट्टी किदो भोदि। तदो देवीए विहसिअ भणिअं, जं आदिसदि भअवं। अहं च विण्णाविदुं पेसिदा गुरुस्स गुरुदक्खिणाणिमित्तं। (इदं विज्ञाप्यते, अनन्तरातिक्रान्ताचतुर्दशीदिवसे देव्या पद्मरागमणिमयी गौरी कृत्वा भैरवानन्देन प्रतिष्ठापिता, स्वयञ्च दीक्षा गृहीता। ततस्तया विज्ञप्तो योगीश्वरो गुरुदक्षिणानिमित्तम्। भणितञ्च तेन, यद्यवश्यं गुरुदक्षिणा दातव्या, तदेषा दीयतां महाराजस्य। ततो देव्या विज्ञप्तं, यदादिशति भगवान्। पुनरपि उल्लपितं तेन, अस्ति अत्र लाटदेशे चण्डसेनो नाम राजा, तस्य

सारंगिका—ऐसा कहा जाता है कि पिछली चतुर्दशी के दिन महारानी ने पद्मरागमणि की गौरी की प्रतिमा बनवा कर भैरवानन्द से उसकी प्राणप्रतिष्ठा करवाई और भैरवानन्द को गुरु बना कर उनसे इष्टमन्त्र ग्रहण किया। फिर महारानी ने उनसे गुरुदक्षिणा लेने के लिए कहा। भैरवानन्द ने कहा कि अगर गुरुदक्षिणा

टिप्पणी—अनन्तरम् अतिक्रान्ता=अनन्तरातिक्रान्ता-सा चासौ या चतुर्दशी तद्दिवसे=अनन्तरातिक्रान्तचतुर्दशीदिवसे=अव्यवहितविगतचतुर्दशीदिने। पद्मरागमणिभिः निर्मिता=पद्मरागमणिमयी। प्रतिष्ठापिता=मूर्तौ प्राणप्रतिष्ठा कारिता। उल्लपितम्=
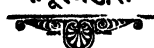
दुहिता घनसारमञ्जरी नाम, सा दैवज्ञैरादिष्टा, एषा चक्रवर्त्तिगृहिणी भविष्यतीति; ततो महाराजेन परिणेतव्या, तेन गुरुदक्षिणा दत्ता भवति, भर्त्ताऽपि चक्रवर्त्ती कृतो भवति। ततो देव्या विहस्य भणितं, यत् आदिशति भगवान्। अहञ्च विज्ञापयितुं प्रेषिता गुरोर्गुरुदक्षिणा-निमित्तम्।)

विदूषकः—[विहस्य] एदं तं संविधाणअं सीस्से सप्पो, देसंतरे वेज्जो। इह अज्ज विवाहो, लाटदेसे घणसारमंजरी। (एतत्तत् संविधानकं शीर्षे सर्पः, देशान्तरे वैद्यः। इहाद्य विवाहो, लाटदेशे घनसारमञ्जरी।)

राजा—किं ते भैरवाणंदस्स प्पहाओ ण प्पच्चक्खो ?। [तां प्रति] कहिं संपदं भैरवाणंदो ? (किन्ते भैरवानन्दस्य प्रभावो न प्रत्यक्षः ?। [तां प्रति] कुत्र साम्प्रतं भैरवानन्दः ?)

देना ही चाहती हो तो यह महाराज के लिए दो। तब महारानी ने कहा—जो आपकी आज्ञा। फिर भैरवानन्द ने कहा—लाटदेश में चण्डसेन नाम का राजा है, उसकी घनसारमंजरी नाम की पुत्री है। उसके संबन्ध में ज्योतिषियों ने कहा है कि वह चक्रवर्ती राजा की रानी बनेगी। इसलिए महाराज से इसका विवाह कर देना चाहिए। यही गुरुदक्षिणा पर्याप्त होगी, महाराज भी तुम्हारे द्वारा चक्रवर्ती हो जायँगे। तब महारानी ने हँस कर कहा—जैसी आपकी आज्ञा और मुझे आपके पास गुरुदक्षिणा के निमित्त भेजा है।

विदूषक—(हँस कर) यह कैसा काम—सिर पर सांप, वैद्य दूसरे देश में। आज यहाँ विवाह और घनसारमञ्जरी लाटदेश में ?

राजा—क्या तुम्हें भैरवानन्द जी की शक्ति का पता नहीं है? (सारंगिका से) इस समय भैरवानन्द कहाँ हैं?

उक्तम्—कहा। लाटदेशः=नर्मदा के पश्चिम का देश, इसमें सम्भवतः भड़ौच, बरौदा, अहमदाबाद और खेरा भी प्रायः शामिल थे।

सारङ्गिका—देवीकारिदप्पमदुज्जाणस्स मज्झट्ठिदवडतरुमूले चामुंडाअदणे भैरवाणंदो देवी अ आअमिस्सदि; ता अज्ज दक्खिणाविहिदो कोदुहलवरो विवाहो; ता इह ज्जेव्व देवेण ठादव्वं। (देवीकारितप्रमदोद्यानस्य मध्यस्थितवटतरुमूले चामुण्डायतने भैरवानन्दो देवी च आगमिष्यति; तदद्य दक्षिणाविहित: कौतूहलपरो विवाह:; तदिहैव देवेन स्थातव्यम्)

[इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता]

राजा—वअस्स! सव्वं एदं भैरवाणंदस्स विजिंभिदं त्ति तक्केमि। (वयस्य! सर्वमेतत् भैरवानन्दस्य विजृम्भितमिति तर्कयामि)

विदूषक:—एव्वं णेदं। ण क्खु मिअलंछणमंतरेण अण्णो मिअंकमणिपुत्तलिअं प्पस्सेदअदि। ण क्खु सरअसमीरमंतरेण सेफालिआकुसुमकरं विकासेदि। (एवमेतत्। न खलु मृगलाञ्छनमन्तरेण अन्यो मृगाङ्कमणिपुत्तलीं प्रस्वेदयति। न खलु शरत्समीरम-

सारंगिका—महारानी के द्वारा बनवाए हुए प्रमदोद्यान के मध्य में स्थित वट-वृक्ष के नीचे चामुण्डा देवी के मन्दिर में भैरवानन्द और महारानी आयेंगी। आज दक्षिणा में कुतूहल से विवाह किया जायगा, महाराज यहाँ ठहरें।

(इस तरह घूमकर चली जाती है)

राजा—मित्र! यह सब भैरवानन्द का काम है ऐसा सोचता हूँ।

विदूषक—ऐसा ही है। चन्द्रमा के अतिरिक्त और कौन चन्द्रकान्तमणि की

टिप्पणी—चामुण्डाया: आयतने = चामुण्डायतने = चामुण्डामन्दिरे। √स्था + तव्य = स्थातव्यम् = ठहरना चाहिए।

टिप्पणी—विजृम्भितम् = विलसितम्-करिश्मा। तर्कयामि = स्मरण करता हूँ।

टिप्पणी—मृगलाञ्छनमन्तरेण = चन्द्रमा के बिना-अन्तरेण के योग में द्वितीया

न्तरेण शेफालिकाकुसुमोत्करं विकासयति)

[ततः प्रविशति भैरवानन्दः]

भैरवानन्दः—इअं सा वडतरुमूले णिब्भिण्णस्स सुरंगादुआरस्स पिहाणं चामुंडा। (इयं सा वटतरुमूले निर्भिन्नस्य सुरङ्गाद्वारस्य पिधानं चामुण्डा) [हस्तेन प्रणम्य पठति]—

कप्पंतकेलिभवणे कालस्स पुराणरुहिरसुरम्।
जअदि पिअंती चंडी परमेट्ठिकवालचसएण ॥ १९ ॥
(कल्पान्तकेलिभवने कालस्य पुराणरुधिरसुराम्।
जयति पिबन्ती चण्डी परमेष्ठिकपालचषकेण ॥ १९ ॥)

अन्वयः—कालस्य कल्पान्तकेलिभवने चण्डी परमेष्ठिकपालचषकेण पुराणरुधिरसुराम् पिबन्ती जयति।

सरलार्थः—महाकालरूपिणो रुद्रस्य संहारकालरूपिणि केलिभवने ब्रह्मणः कपालरूपेण पात्रेण पूर्वतनप्राणिनां रुधिररूपं मद्यं पिबन्ती चण्डी सर्वोत्कर्षेण वर्तते।

पुतली को पिघला सकता है? शरद् ऋतु की शेफालिका के फूलों को पवन के अतिरिक्त और कौन खिला सकता है?

(तब भैरवानन्द रंगमञ्चपर आता है)

भैरवानन्द—वटवृक्ष के नीचे खुले हुए सुरंगाद्वार पर यह चामुण्डा देवी विराजमान है।

(हाथ से प्रणाम कर पढ़ता है)

महाकालरूपी रुद्र के प्रलयकालरूपी क्रीडामन्दिर में ब्रह्मा के कपालरूपी प्याले से प्राणियों के रुधिररूपी मद्य को पीती हुई चण्डी की जय हो ॥ १९ ॥

विभक्ति। प्रस्वेदयति=आर्द्रयति–पिघलाता है। प्र+√स्वेदि (ण्यन्त) से लट् लकार। शेफालिकाकुसुमानामुत्करम्=शेफालिकाकुसुमोत्करम्, काली नेवारी के फूलों के समूह को।

१. पिधानम्=आच्छादनम्–ढकना।

टिप्पणी—कल्पान्तः एव केलिभवनम्, तस्मिन्=कल्पान्तकेलिभवने=संहारकालक्रीडामन्दिरे। परमेष्ठिनः कपालः एव चषकस्तेन=परमेष्ठिकपालचषकेण=ब्रह्मकपालरूप-

[उपविश्य]—अज्जवि ण णिग्गच्छदि सुरंगादुआरेण कप्पूरमंजरी। (अद्यापि न निर्गच्छति सुरङ्गाद्वारेण कर्पूरमञ्जरी)

[ततः प्रविशति सुरङ्गोद्घाटितकेन कर्पूरमञ्जरी]

कर्पूरमञ्जरी—भअवं ! प्पणमिज्जसि। (भगवन् प्रणम्यसे)

भैरवानन्दः—उइदं वरं लहेसु। इह ज्जेव्व उवविससु। (उचितं वरं लभस्व। इहैव उपविश)

[कर्पूरमञ्जरी तथा करोति]

भैरवानन्दः—[स्वगतम्] अज्ज वि ण आअच्छदि देवी। (अद्यापि नागच्छति देवी)

[प्रविश्य]

राज्ञी—[परिक्रम्य अवलोक्य च] इअं भअवदी चामुंडा। [प्रणम्य अवलोक्य च] अए ! इअं कप्पूरमंजरी !! ता किं णेदं ?। [भैरवानन्दं प्रति] इदं विण्णवी अदि, णिअभवणे कदुअ विवाहसामग्गिं आअदम्हि, तदो तं गेण्हिअ आअमिस्सं।

(बैठकर) कर्पूरमंजरी सुरंग के द्वार से अभी तक नहीं निकली।

(तब सुरंग के द्वार से कर्पूरमंजरी निकलती है)

कर्पूरमंजरी—भगवन् ! प्रणाम करती हूँ।

भैरवानन्द—उचित वर पाओ। यहाँ ही बैठो।

(कर्पूरमञ्जरी ऐसा ही करती है)

भैरवानन्द—(अपने मन में) अब भी महारानी नहीं आ रही हैं।

(प्रवेश कर)

राज्ञी—(घूम कर और देख कर) यह भगवती चामुण्डा है (प्रणाम कर और

पानपात्रेण। पुराणरुधिरसुराम्=पूर्वतनप्राणिनां शोणितरूपमद्यम्। पिबन्ती=पीती हुई-√पा+पिब्+अ+अन्ती-शत्रन्त-स्त्रीलिंग।

(इयं भगवती चामुण्डा। (प्रणम्य अवलोक्य च) अये! इयं कर्पूरमञ्जरी !! तत् किमिदम् ? (भैरवानन्दं प्रति) इदं विज्ञाप्यते, निजभवने कृत्वा विवाहसामग्रीम् आगताऽस्मि, ततस्तां गृहीत्वा आगमिष्यामि)

भैरवानन्दः—बच्छे ! एव्वं करीअदु। (वत्से ! एवं क्रियताम्)

[राज्ञी व्यावृत्य परिक्रामति]

भैरवानन्दः—[विहस्य स्वगतम्] इअं कप्पूरमंजरीठाणं अण्णेसिदुं गदा। [प्रकाशम्] पुत्ति कप्पूरमंजरि ! सुरंगादुआरेण ज्जेव्व तुरिदपदं गदुअ सठ्ठाणे चिट्ठ, देवीआअमणे उणो आअंतव्वं। (इयं कर्पूरमञ्जरीस्थानमन्वेष्टुं गता। (प्रकाशम्) पुत्रि कर्पूरमञ्जरि ! सुरङ्गाद्वारेणैव त्वरितपदं गत्वा स्वस्थाने तिष्ठ, देव्यागमने पुनरागन्तव्यम्)

[कर्पूरमञ्जरी तथा करोति]

देवी—एदं रक्खागेहम्। [प्रविश्यावलोक्य च] अए !

देख कर) अरे यह कर्पूरमञ्जरी है। यह क्या बात है। (भैरवानन्द से) अपने यहाँ विवाह सामग्री तैयार कर आई हूँ, अब उसको लेकर आती हूँ।

भैरवानन्द—वत्से ऐसा करो।

(महारानी दूर जाकर घूमती है)

भैरवानन्द—(हँस कर, अपने आप) यह कर्पूरमंजरी को ढूंढने गई। (प्रकाश में) पुत्री कर्पूरमंजरी ! सुरंग के दरवाजे से शीघ्र ही जाकर अपने स्थान पर ठहरो, महारानी के आने पर फिर आ जाना।

(कर्पूरमंजरी ऐसा ही करती है)

देवी—यह रक्षाघर है। (घुसकर और देखकर) अरे यह कर्पूरमञ्जरी है।

इअं कप्पूरमंजरी !! सा का वि सरिच्छा मए दिट्ठा ! वच्छे कप्पूरमंजरि ! कोरिसं दे सरीरम् ? । [आकाशे] किं भणसि, मह सरीरे वेअणा ? [स्वगतम्] ता उणो तहिं गमिस्सं । [प्रविश्य पार्श्वतोऽवलोक्य च] हला सहीओ ! विवाहोवकरणाइ लहुगेण्हिअ आअच्छध । (इदं रत्नागृहम् । (प्रविश्यावलोक्य च अये ! इयं कर्पूरमञ्जरी !! सा काऽपि सदृशी मया दृष्टा । वत्से कर्पूरमञ्जरि ! कीदृशं ते शरीरम् ? (आकाशे) किं भणसि, मम शरीरे वेदना ? । (स्वगतम्) तत् पुनस्तत्र गमिष्यामि । (प्रविश्य पार्श्वतोऽवलोक्य च) हला सख्यः ! विवाहोपकरणानि लघु गृहीत्वा आगच्छत)

[इति परिक्रामति]

[प्रविश्य कर्पूरमञ्जरी तथैवास्ते]

राज्ञी—[पुरोऽवलोक्य] इअं कप्पूरमंजरी !! (इयं कर्पूरमञ्जरी !!)

उससे कुछ सदृश तो मैंने देखी अभी देखी थी । वत्से कर्पूरमञ्जरि ! तुम्हारा शरीर कैसा है । (आकाश में) क्या कहती है—मेरे शरीर में दर्द है । (अपने मन में) फिर वहां जाऊँगी । (घुसकर और एक तरफ देखकर) अरे सहेलियो ! विवाह का सामान लेकर शीघ्र आओ ?

(घूमती है)

(कर्पूरमञ्जरी आती है और वैसे ही बैठती है)

राज्ञी—(सामने देखकर) यह कर्पूरमञ्जरी है ।

टिप्पणी—आकाशे—विना किसी और पात्र के रंगमंच पर बात करना, न कही हुई बात को भी सुना हुआ समझ कर बोलना आकाशभाषित कहलाता है-किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् । श्रुत्वेवानुक्तमपि चेत्तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥ विवाहोपकरणानि = विवाह का सामान ।

भैरवानन्दः—वच्छे ! विब्भमलेहाए आणीदाइं विवाहोवअरणाइं ? (वत्से ! विभ्रमलेखया आनीतानि विवाहोपकरणानि ?)

देवी—आणीदाइं। किं उण घणसारमंजरीसमुचिदाइं आहरणाइं विसुमरिदाइं। ता उणो गमिस्सं। (आनीतानि। किं पुनर्घनसारमञ्जरीसमुचितानि आभरणानि विस्मृतानि। तत्पुनर्गमिष्यामि)

भैरवानन्दः—एव्वं करीअदु। (एवं क्रियताम्)

[देवी नाटितकेन निष्क्रामति]

भैरवानन्दः—पुत्ति कप्पूरमंजरि ! तह ज्जेव्व करीअदु। (पुत्रि कर्पूरमञ्जरि ! तथैव क्रियताम्)

[कपूरमजरी निष्क्रान्ता]

राज्ञी—[रत्नागृहं प्रविश्य कर्पूरमञ्जरीं दृष्ट्वा] अए ! सारिच्छएण विडंबिदम्हि !! [स्वगतम्] झाणविमाणेण णिब्विग्घपरिसप्पिणा तामाणेदि महाजोई। [प्रकाशम्] सहीओ ! जं जं णिवेदिदं, तं तं गेण्हिअ आअच्छध। (अये ! सादृश्येन विडम्बि-

भैरवानन्द—वत्से ! क्या विभ्रमलेखा विवाह का सामान ले आई ?

देवी—विवाह का सामान आ गया। लेकिन घनसारमञ्जरी के लायक गहने भूल आई। इसलिए फिर जाऊँगी।

भैरवानन्द—ऐसा ही करो।

भैरवानन्द—पुत्रि कर्पूरमञ्जरी ! वैसा ही करो। (कर्पूरमञ्जरी निकल जाती है)

राज्ञी—(रत्नागृह में जाकर और कर्पूरमञ्जरी को देखकर) अरे। सादृश्य से

टिप्पणी—घनसारमञ्जर्याः समुचितानि घनसारमंजरीसमुचितानि = घनसारमंजरी के लायक।

१. निष्क्रामति = निकलती है। २. विडम्बिता = विप्रलब्धा-धोखा खाई हुई। निर्विघ्नम् परिसर्पति-तेन निर्विघ्नपरिसर्पिणा = निर्बाधगतिना।

ताऽस्मि !! (स्वगतम्) ध्यानविमानेन निर्विघ्नपरिसर्पिणा तामानयति महायोगी। (प्रकाशम्) सख्यः ! यत् यन्निवेदितं, तत्तत् गृहीत्वा आगच्छत)

[चामुण्डायतनप्रवेशनाटितकेन तामवलोक्य]

अहो सारिच्छअं। (अहो ! सादृश्यम्)

भैरवानन्द—देवि ! उवबिस। महाराओ वि आअदो ज्जेव्व वट्टदि। (देवि ! उपविश। महाराजोऽपि आगत एव वर्त्तते)

[ततः प्रविशति राजा विदूषकः सारङ्गिका च]

भैरवानन्दः—आसणं महाराअस्स। (आसनं महाराजस्य)

[सर्वे यथोचितमुपविशन्ति]

राजा—[नायिकां प्रति] एसा सरीरिणी मअरद्धअपारिद्धिआ, देहांतरेण संट्ठिदा सिंगाररसलच्छीव ? दिअससंचारिणी पुण्णिमाचंदचंदिआ; अवि अ प्पगुणगुणमाणिक्कमंजूसा, रअणमई अंजणसलाआ, तधा अ एसा रअणकुसुमणिप्पण्णा महु-

---

तो मैं आश्चर्य में पड़ गई हूँ। (अपने मन में) बिना रोक टोक के चलने वाले ध्यानरूपी विमान से महायोगी उसको लाया है। (प्रकाश में) सखियो ! जो जो मंगाया गया है, वह वह सामान लेकर आओ।

(चामुण्डा देवी के मन्दिर में प्रवेश का अभिनय कर और कर्पूरमञ्जरी को देखकर) आश्चर्य है' कैसी समानता है ?

भैरवानन्द—देवी ! बैठो। महाराज भी आए हुए हैं।

(तब राजा, विदूषक और सारङ्गिका रंगमञ्च पर आते हैं)

भैरवानन्द—महाराज के लिए आसन दो।

(सब यथास्थान बैठते हैं)

राजा—(नायिका से) कामदेव की पताका को उठाने वाली यह साक्षात् शृङ्गार रस की शोभा की तरह देहान्तर से विराजमान है, दिन में चमकने वाली

लच्छी। किं च—(एषा शरीरिणी मकरध्वजपारिध्वजिका, देहान्तरेण संस्थिता शृङ्गाररसलक्ष्मीरिव, दिवससञ्चारिणी पूर्णिमाचन्द्रचन्द्रिका; अपि च प्रगुणगुणमाणिक्यमञ्जूषा, रत्नमयी अञ्जनशलाका, तथा चैषा रत्नकुसुमनिष्पन्ना मधुलक्ष्मीः। किञ्च—)

भुअणजअपदाआ रूअसोहा इमोए
जह जह णअणाणं गोअरे जस्स जादि।
वसइ मअरकेदू तस्स चित्ते विचित्तो
वलइदधणुदंडो पुंखिदेहिं सरेहिं ॥ २० ॥

(भुवनजयपताका रूपशोभाऽस्या
यथा यथा नयनयोर्गोचरं यस्य याति।
वसति मकरकेतुस्तस्य चित्ते विचित्रो
वलयितधनुर्दण्डः पुङ्खितैः शरैः ॥ २० ॥)

अन्वयः—अस्याः भुवनजयपताका रूपशोभा यस्य यथा यथा नयनयोः गोचरं याति, तस्य चित्ते विचित्रः मकरकेतुः पुंखितैः शरैः वलयितधनुर्दण्डः वसति।

सरलार्थः—कामस्य सन्दीपिनी अस्याः सौन्दर्यश्रीः येन विलोक्यते, तस्य चित्तम् सज्जीकृतधनुषा कामदेवेन व्यथितम् सञ्जायते ॥ २० ॥

पूर्णिमा के चन्द्र की चांदनी है, उच्चकोटि के रत्नों की मञ्जूषा जैसी है, रत्नों से बनी हुई अञ्जन लगाने की सलाई जैसी है तथा रत्नकुसुमों से युक्त वसन्तशोभा सी साक्षात् प्रतीत होती है। और क्या?—

कामदेव की पताका के समान इसकी सुन्दरता जिसकी आँखों में समा जाती है, उसके चित्त में अद्भुत कामदेव बाण चढ़े हुए टेढ़े धनुष के साथ वास करने लगता है ॥ २० ॥

टिप्पणी—मकरध्वजस्य पारिध्वजिका = मकरध्वजपारिध्वजिका = कामदेवपताकावाहिनी, कामदेव की पताका को उठाने वाली अर्थात् काम को उद्दीप्त करने वाली। दिवसे सञ्चारिणी = दिवससंचारिणी = दिन में चमकने वाली। पूर्णिमायाः चन्द्रस्य चन्द्रिका = पूर्णिमाचन्द्रचन्द्रिका = पूर्णिमाचन्द्रज्योत्स्ना। प्रगुणाः गुणाः यस्याः सा प्रगुणगुणा, सा चासौ

विदूषकः—[जनान्तिकम्] सच्चं किदं तुए आभाणकं। तडं गदाए वि णौकाए ण विससीदव्वं; ता तुण्हीं चिट्ठ। (सत्यं कृतं त्वया आभाणकम्। तटं गताया अपि नौकाया न विश्वसितव्यम्; तत्तूष्णीं तिष्ठ)

राज्ञी—[कुरङ्गिकां प्रति] तुमं महाराअस्स णेवच्छं कुरु। सारंगिआ घणसारमंजरीए करेदु। (त्वं महाराजस्य नेपथ्यं कुरु। सारङ्गिका घनसारमञ्जर्याः करोतु)

[इत्युभे उभयोर्विवाहनेपथ्यकरणं नाटयतः]

भैरवानन्दः—उवज्झाओ हक्कारीअदु। (उपाध्याय आकार्यताम्[1])

विदूषक—(जनान्तिक में) तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया। किनारे पर पहुँची हुई भी नाव का विश्वास नहीं करना चाहिए, इसलिए चुप ही रहो।

राज्ञी—(कुरंगिका से) तू महाराज के वस्त्र सजा। सारंगिका घनसारमञ्जरी के वस्त्र तैयार करती है।

(दोनों विवाह के वस्त्र तैयार करने का अभिनय करती हैं)

भैरवानन्द—पुरोहित को बुलाओ ?

माणिक्यमञ्जूषा = प्रगुणगुणमाणिक्यमञ्जूषा = मणिक्यपेटिका। अञ्जनशलाका = अञ्जन लगाने की सलाई। मधुनः लक्ष्मीः = मधुलक्ष्मीः = वसन्तशोभा।

टिप्पणी—(पृ. १८४ की) मकरः केतौ यस्य सः मकरकेतुः = कामदेवः। वलयितः धनुर्दण्डः येन सः = वलयितधनुर्दण्डः = मण्डलितकार्मुकयष्टिः। पुंखितैः = सहितैः, चढ़ाये हुये। भुवनजयस्यपताका = भुवनजयपताका = कामदेवपताका॥ २०॥

टिप्पणी—आभाणकम् = मनोरथः। विश्वसितव्यम् = विश्वास करना चाहिये। तूष्णीम् = चुपचाप।

१. आकार्यताम् = बुलाया जाना चाहिए। आ √कारि + य + ताम् (कर्मवाच्य—लोट् लकार प्रथमपु० एकव०)।

राज्ञी—अज्जउत्त ! एसो उवज्झाओ अज्जकविंजलओ चिट्ठदि; ता करेदु अग्गिआरिअं। (आर्यपुत्र ! एष उपाध्याय आर्यकपिञ्जलस्तिष्ठति; तत् करोतु अग्रथाचार्यकम्[1])

विदूषकः—एस सज्जेम्हि। भो वअस्स ! उत्तरीए गंठिं दाइस्सं, दाव हत्थेण हत्थं गेण्ह कप्पूरमंजरीए। (एष सज्जोऽस्मि[2]। भो वयस्य ! उत्तरीये[3] ग्रन्थिं दास्यामि, तावद्धस्तेन हस्तं गृहाण कर्पूरमञ्जर्याः)

राज्ञी—[सचमत्कारम्] कुदो कप्पूरमंजरी !। (कुतः कर्पूरमञ्जरी ?)

भैरवानन्दः—[तं तस्या भावमुपलभ्य विदूषकं प्रति] तुमं सुट्ठुतरं भुल्लोसि, जदो कप्पूरमंजरीए घणसारमंजरीत्ति णामांतरं जाणासि। (त्वं सुष्ठुतरं भ्रान्तोऽसि, यतः कर्पूरमञ्जर्या घनसामञ्जरीति नामान्तरं जानासि)

राज्ञी—आर्यपुत्र ! यह आर्य कपिंजल खड़े हुए हैं, आइए, पुरोहित का कार्य कीजिए।

विदूषक—मैं तैयार हूँ। प्रिय मित्र ! दुपट्टे में गांठ लगाता हूँ, तब तक अपने हाथ से कर्पूरमञ्जरी का हाथ पकड़ो।

राज्ञी—(चौंककर) कर्पूरमञ्जरी कहाँ है।

भैरवानन्द—(रानी के उस भाव को जानकर विदूषक से) तुम तो भूल में हो, जो घनसारमञ्जरी को कर्पूरमञ्जरी का दूसरा नाम समझते हो।

---

१. अग्रे कृतः आचार्यः=अग्रथाचार्यः, स एव अग्रथाचार्यकः, तम्=अग्रथाचार्यकम्=पुरोहितम। २. सज्जः=तैयार। ३. उत्तरीय=दुपट्टा।

राजा—[करमादाय]—

जे कंटआ तिउसमुद्धफलाणं संति
जे केदईकुसुमगब्भदलावलीसु ।
फंसेण णूणमिह मज्झ सरीरअस्स ।
ते सुंदरीअ बहला पुलअंकुराओ ॥ २१ ॥

(ये कण्टकास्त्रपुषमुग्धफलानां सन्ति
ये केतकीकुसुमगर्भदलावलीषु ।
स्पर्शेन नूनमिह मम शरीरस्य
ते सुन्दर्या बहलाः पुलकाङ्कुराः ॥ २१ ॥)

विदूषकः—भो वअस्स ! भामरीओ दिज्जदु । हुदवहे लाजंजलीओ खिवीअदु । (भो वयस्य ! भ्रामर्यो दीयन्ताम् । हुतवहे लाजाञ्जलयः क्षिप्यन्ताम्)

अन्वयः—त्रपुषमुग्धफलानाम् ये कण्टकाः सन्ति, केतकीकुसुमगर्भदलावलीषु ये कण्टकाः सन्ति, ते नूनम् इह सुन्दर्याः स्पर्शेन मम शरीरस्य बहलाः पुलकाङ्कुराः (सन्ति)।

सरलार्थः—त्रपुषाख्यलताविशेषस्य यानि सुन्दराणि कोमलानि च फलानि सन्ति तेषां ये सूक्ष्माग्राः, ये च केतकीकुसुमानां गर्भदलानां पङ्क्तिषु कण्टकाः सन्ति, ते निश्चयेन कर्पूरमञ्जरीस्पर्शेन जातानां मे शरीरे रोमाञ्चानां समूहाः सन्ति ॥

राजा—(हाथ पकड़कर):—

त्रपुषलता के सुन्दर और कोमल फूलों में जो कांटे होते हैं तथा केतकी के फूलों के अन्दर के पत्तों में जो कांटे होते हैं, वे निश्चय ही कर्पूरमञ्जरी के स्पर्श से उत्पन्न मेरे शरीर के रोमाञ्चों का समूह हैं ॥ २१ ॥

विदूषक—प्रिय मित्र ! भांवरे दो (अग्नि की परिक्रमा करो) और अग्नि में खीलें छोड़ो ।

टिप्पणी—कण्टकाः = कांटे, सूक्ष्म अग्रभाग । गर्भदलावलीषु = अन्दर के पत्तों की

[राजा भ्रमणं नाटयति । नायिका धूमेन व्यावृत्तमुखी तिष्ठति
राजा परिणयति । राज्ञी सपरिवारा निष्क्रान्ता]

भैरवानन्दः—बिबाहे दक्खिणा दिज्जदु आचारिअस्स । (विवाहे दक्षिणा दीयताम् आचार्यस्य)

राजा—दिज्जदु । वअस्स ! गामसअं ते दिण्णं । (दीयते । वयस्य ! ग्रामशतं ते दत्तम्)

विदूषकः—सोत्थि होदु । (स्वस्ति भवतु)

[इति नृत्यति]

भैरवानन्दः—महाराअ ! किं ते उणो बि प्पिअं कुणोमि ? (महाराज ! किन्ते पुनरपि प्रियं करोमि ?)

राजा—जोईस्सर ! किमवरं प्पिअं वट्टदि ? जदो— (योगीश्वर ! किमपरं प्रियं वर्त्तते ? यतः)—

(राजा घूमने का अभिनय करता है। कर्पूरमंजरी धुएँ से मुख घुमाये खड़ी रहती है। राजा विवाह करता है। रानी अपने परिवार के साथ बाहर चली जाती हैं)

भैरवानन्द—आचार्य के लिये विवाह में दक्षिणा दो।

राजा—दी जायगी, मित्र ! सौ गांव तुम्हारे लिये दिये।

विदूषक—कल्याण हो।

(प्रसन्नता से नाचता है)

भैरवानन्द—महाराज ! और आपकी क्या इच्छा पूर्ण करूँ ?

राजा—योगीश्वर ! इससे बढ़कर और प्रिय क्या हो सकता है, क्योंकि :—

पंक्तियों में। बहलाः = बहवः। पुलकाङ्कुराः = रोमाञ्चनिकराः ॥ २१ ॥

टिप्पणी—(पृ. १८७ की) भ्रामर्यः = अग्नि की परिक्रमा करना। हुतवहः = अग्नि। लाजांजलयः = लाजाओं (खीलों) की अञ्जलियाँ। क्षिप्यन्ताम् = फेंकी जाय- √क्षिप् + य + अन्ताम्-(कर्मवाच्य० प्रथमपु० बहुव०)।

१. व्यावृत्तं मुखं यस्याः सा व्यावृत्तमुखी = मुखमन्यतः कृत्वा, मुंह फेरे हुए।

कुंतलेस्सरसुआकरप्फस्सप्फारसोक्खसिढिलीकिदसग्गो ।
पालएमि वसुहातलरज्जं चक्कवट्टिपदवीरमणिज्जं ॥ २२ ॥

(कुन्तलेश्वरसुताकरस्पर्शस्फारसौख्यशिथिलीकृतस्वर्गः ।
पालयामि वसुधातलराज्यं चक्रवर्त्तिपदवीरमणीयम् ॥ २२ ॥)

तहाबीदं होदु दाव—(तथाऽपि इदं भवतु तावत्)—

सच्चे णंददु सज्जणाणं सअलो बग्गो खलाणं पुणो
णिच्चं खिज्जदु होंतु बम्हणजणा सच्चासिहो सव्वदा ।
मेहो मुंचदु संचिदं बि सलिलं सस्सोचिदं भूदले
लोओ लोहपरम्मुहोऽणुदिअहं धम्मे मई भोदु अ ॥ २३ ॥

सरलार्थः—कुन्तलेश्वरसुतां कर्पूरमञ्जरीं परिणीय, तस्याः करस्पर्शस्य निरतिशयम् सुखं चानुभूय स्वर्गसुखमपि मह्यं तुच्छं प्रतीयते । चक्रवर्तिपदवीविभूषितम् समग्रभूमण्डलस्य राज्यं च पालयामि । अतः परं किमन्यत् प्रियं भवितुमर्हति ?

कुन्तल देश के राजा की पुत्री कर्पूरमञ्जरी के करस्पर्श के निरतिशय आनन्द से मुझे स्वर्ग भी तुच्छ जान पड़ता है और चक्रवर्ति पद के साथ सारे महीतल पर मैं राज्य कर रहा हूँ ॥ २२ ॥

तब भी ऐसा हो जाय:—

सारे सज्जनवृन्द सत्यभाषण तथा सदाचार में आनन्द का अनुभव करें, दुष्ट गण हमेशा दुःख भोगते रहे, ब्राह्मणों के आशीर्वाद सर्वदा सच्चे निकले, मेघ इकट्ठे किए हुए जल को पृथिवी पर कृषि कार्य के अनुकूल बरसायें, जनता दिन प्रति दिन

टिप्पणी—कुन्तलेश्वरस्य सुता कुन्तलेश्वरसुता, तस्याः करस्य स्पर्शः = कुन्तलेश्वरसुताकरस्पर्शः, तेन यत् स्फारं सौख्यम् = कुन्तलेश्वरसुताकरस्पर्शस्फारसौख्यम्, तेन शिथिलीकृतः स्वर्गः येन सः = कुन्तलेश्वरसुताकरस्पर्शस्फारसौख्यशिथिलीकृतस्वर्गः = कर्पूरमंजरीकरस्पर्शनिरतिशयानन्दतुच्छीकृतस्वर्गः, कर्पूरमंजरी के हाथ के स्पर्श के निरतिशय आनन्द से स्वर्ग को भी तुच्छ समझने वाला । चक्रवर्तिनः पदव्या रमणीयम् = चक्रवर्तिपदवीरमणीयम् = सार्वभौमपदमनोज्ञम् । वसुधातलराज्यम् = भूमण्डल के राज्य को । पालयामि = पालन करता हूं ॥ २२ ॥

(सत्ये नन्दतु सज्जनानां सकलो वर्गः खलानां पुन-

र्नित्यं खिद्यतु भवन्तु ब्राह्मणजनाः सत्याशिषः सर्वदा ।

मेघो मुञ्चतु सञ्चितमपि सलिलं शस्योचितं भूतले

लोको लोभपराङ्मुखोऽनुदिवसं धर्मे मतिर्भवतु च ॥२३॥)

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति चतुर्थं जवनिकान्तरम् ।

इति श्रीराजशेखरविरचिता कर्पूरमञ्जरी समाप्ता ।

अन्वयः—सज्जनानाम् सकलः वर्गः सत्ये नन्दतु, पुनः खलानाम् (सकलः वर्गः) नित्यम् खिद्यतु, ब्राह्मणजनाः सर्वदा सत्याशिषः भवन्तु, मेघः सञ्चितम् अपि सलिलम् भूतले शस्योचितम् मुञ्चतु, लोकः अनुदिवसम् लोभपराङ्मुखः भवतु, धर्मे च (लोकानाम्) मतिर्भवतु ।

सरलार्थः—सत्पुरुषाणामखिलः गणः सत्यभाषणे सदाचारे च आनन्दमनुभवतु, दुर्जनानाम् समूहः दुःखमनुभवतु, विप्राः सर्वदा सफलाशीर्वादाः भवन्तु, मेघः सञ्चितमपि जलं पृथिव्यां कृष्यनुकूलं वर्षतु, प्रजाः अनुदिनम् लोभात्पराङ्मुखाः निर्लोभाः भवेयुः, धर्मे च तासाम् दृढविश्वास उत्पद्ये ॥ २३ ॥

इति कर्पूरमञ्जरीव्याख्या समाप्ता

लोभ से दूर हटा ली जाय और धर्म में उसका दृढ़ विश्वास बना रहे ॥ २३ ॥

(सबका प्रस्थान)

कर्पूरमञ्जरी की हिन्दी व्याख्या समाप्त ।

टिप्पणी—सत्याः आशिषः येषां ते सत्याशिषः = सफलाशीर्वादाः । शस्याय उचितम् = शस्योचितम् = धान्योचितम् । लोभात् लोभपराङ्मुखः = निर्लोभः ॥ २३ ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।

परिशिष्टम्

प्राकृत शब्दों का कोष

अ

अणंतरकरणिज्जं (अनन्तरकरणीयम्) बाद में करने का
अंगम्मि (अङ्गेऽपि) शरीर पर भी
अंगजुअलं (अङ्गयुगलम्) दोनों अंग
अंतेउरं (अन्तःपुरं) रनिवास
अण्णाणं (अन्येषाम्) औरों का
अम्हाणं (अस्माकम्) हमारा
अण्णा (अन्या) दूसरी
अत्थणिवेस (अर्थनिवेश) अभिधेय, लक्ष्य, व्यंग्य अर्थों का प्रयोग
अप्पा (आत्मा) स्वयं
अस्स (अस्य) इसका
अज्जो (आर्यः) आर्य
अज्जघरिणिआ (आर्यभार्या) आर्य की गृहिणी
अम्हे (आवाम्) हम दोनों
अच्छिणी (अक्षिणी) आंखों को
अण्णएण (अन्वयेन) कुल से
अहवा (अथवा) या
अज्ज उत्तस्स (आर्यपुत्रस्य) आर्यपुत्र के
अच्चुत्तमा (अत्युत्तमा) अत्यन्त श्रेष्ठ
अच्चधमो (अत्यधमः) अत्यन्त नीच
अत्थे (अर्थे) शब्द में
अवलंबेदि (अवलम्बते) प्राप्त होती है
असोअतरू (अशोकतरुः) अशोक का वृक्ष
अणुबंधेहि (अनुबधान) आग्रह मत करो
अणुणअकक्कसो (अनुनयकर्कशः) आदर करने पर कठोर
अच्चब्भुदसिद्धी (अत्यद्भुतसिद्धिः) अत्यन्त अनोखी सिद्धियों वाला
अध इं (अथ किम्) और क्या
अच्चरिअं (आश्चर्यम्) अनोखा काम
अपुव्वं (अपूर्वम्) अनोखा, नवीन
अत्थि (अस्ति) है
अद्धणारीसरस्स (अर्धनारीश्वरस्य) शिव जी की
अकहिदा (अकथिता) न बताई हुई
अवअवगदा (अवयवगता) अंगों की
अ (च) और
अणुभविदं (अनुभूतम्) अनुभव किया
अज्जवि (अद्यापि) आज भी
अक्खरपंतीओ (अक्षरपङ्क्तयः) अक्षरों की पङ्क्तियां
अग्गम्मि (अग्रे) आगे
अणंगो (अनंगः) कामदेव
अण्णो (अन्यो) दूसरा
अहिमदजणप्पेसिदा (अभिमतजनप्रेषिता) प्रियजन के द्वारा भेजी हुई
अच्चिदा (अर्चिता) पूजा की
अण्णं च (अन्यच्च) और भी
अवत्थाणिवेदओ (अवस्थानिवेदको) अवस्था बताने वाला

अण्णेसीअदु (अन्विष्यताम्) ढूंढ लो
अत्तणो (आत्मनः) अपने
अच्छीणं (अक्ष्णोः) आंखों का
अलंभो (अलभ्यः) अप्राप्य
अदिणिउणा (अतिनिपुणा) अत्यन्त चतुर
अप्पेतिअ (अर्प्यते) दिए जाते हैं
अदिसिसिरं (अतिशिशिराम्) अत्यन्त ठण्ड
अणुहवामि (अनुभवामि) अनुभव करता हूँ
असोअसाही (अशोकशाखी) अशोक का वृक्ष
अवअवाणं (अवयवानां) अंगों का
अहिदेवदेव्व (अधिदेवतेव) अधिष्ठात्री देवता की तरह
अद्धणिद्दं (अर्धनिद्रं) अधखिला
अत्था चलत्थी (अस्ताचलार्थी) अस्ताचल की ओर जाने की इच्छा वाला
असच्चं (असत्यम्) झूंठ
अहिप्पा ओ (अभिप्रायः) आशय
अवलोएसि (अवलोकयसि) देखता है
अमणोज्जम् (अमनोज्ञम्) असुन्दर
अब्भुट्ठाण (अभ्युत्थान) उठना
अम्हारिसो (अस्मादृशः) हमारे जैसा
अज्झक्खीकिदा (अध्यक्षीकृताः) अध्यक्ष बना दिया गया
अग्गादो (अग्रतः) आगे
अवस्सं (अवश्यम्)
अण्णेसिदुं (अन्वेष्टुम्) ढूंढने को

आ

आअच्छदि (आगच्छति) आता है
आअमिस्सदि (आगमिष्यति) आएगा
आअंतव्वं (आगन्तव्यम्) आना चाहिए
आकारिअ (आकार्य) बुला कर
आहरणानि (आ भरणानि) आभूषण
आणवेदु (आज्ञापयतु) आज्ञा दें
आणेमि (आनयामि) ला सकता हूँ
आत्थाणी (आस्थानी) सभा
आरोविदा (आरोपिताः) लगाए
आभाणकम् मनोरथ
आसणं (आसनम्) बैठने के लिये आसन

इ

इअरा (इतरा) दूसरी
इमिणा (अनेन) इससे
इदो (इतः) इधर
इदिसी (ईदृशी) ऐसी

ई

ईसा (ईर्ष्या) डाह
ईरिसो (ईदृशो) ऐसा
ईसीसि (ईषदीषत्) कुछ कुछ

उ

उण (पुनः) फिर
उत्तिविसेसो (उक्तिविशेषः) विशेष कथन
उआरवअणे (उदारवचने) हे सुन्दर वचनों वाली
उत्ताणा (उत्ताना) घमण्डी
उज्जलेदि (उज्ज्वलयति) चमकता है
उत्तिणं (उक्तीनाम्) वचनों का
उज्जुअं (ऋजु) स्पष्ट
उप्पाडिअ (उत्पाट्य) उखाड़ कर
उअविसिअ (उपविश्य) बैठ कर
उव्वेअणीए (उद्वेगिन्याः) घबड़ाने वाली का
उग्गारिआए (उद्गारिण्या) निवेदन करने वाली
उचिदेहिं (उचितैः) उपयुक्त
उप्पुंखिअ (उत्पुंखितौ) चढ़ाये
उवरि (उपरि) ऊपर
उहअदंसणे (उभयदर्शने) दोनों के दर्शन होने पर

उट्ठिअ (उत्थाय) उठकर
उम्मुद्दिआए (उन्मुद्रितया) खुली हुई
उत्तत्त (उत्तप्त) गर्म
उक्कारिऊण (उत्कीर्य) खिला कर
उपेक्खीअदि (उपेक्ष्यते) ध्यान न दिया जाता है
उट्ठिज्जदु (उत्थाप्यताम्) उठानी चाहिए
उल्लविदं (उल्लपितं) कहा
उवज्झाओ (उपाध्यायः) पुरोहित

ए

एक्का एक
एद (एतत्) यह
एत्थ (अत्र) यहाँ
एव्व (एवम्) इस तरह
एण्हि (इदानीं) इस समय
एदाणं (एतयोः) इन दोनों का

ओ

ओदारीअदु (अवतार्यताम्) उतारा जाए
ओलग्गाविअ सेवक

क

कंदोट्टेण (इन्दीवरेण) नीले कमल से
कइणो (कवयः) कविलोग
कव्व (काव्य) कविता
कहिज्जदु (कथ्यतां) कहो
कधिदं (कथितं) कहा
कन्दलित नया उगा हुआ
कणिट्ठ (कनिष्ठ) छोटा
कप्पूर (कर्पूर) कपूर
कत्थूरिआ (कस्तूरिका) कस्तूरी
कसवट्टिअं (कषपट्टिकां) कसौटी
कलम एक प्रकार का धान
क इत्तणेण (कवित्वेन) कवितामें

कडक्खविक्खेवो (कटाक्षविक्षेपः) आंख मारना
कट्टिद (कर्तित) कटा हुआ
कणअकडिसुत्तए (कनककटिसूत्रे) सोने की करधनी में
कण्णारअणं कन्यारत्न
कज्जसेसं (कार्यशेषम्) बचा हुआ काम
कज्जसज्ज (कार्यसज्ज) काम में चतुर
कड्ढणुक्कड्ढणेहि (कर्षणोत्कर्षणैः) खींचने और दौड़ने से
करीअदु (क्रियतां) करो
कड्ढिदाओ (कर्षिताः) निकाल लीं
करंडिआइ (करंडिकायां) एक बरतन का नाम
कहिं (कुत्र) कहाँ
कांसतालाणं (कांस्यतालानाम्) करतालों का
कादव्वा (कर्तव्या) करनी चाहिए
काऊण (कृत्वा) कर के
कालक्खरिओ (कालाक्षरिकः) बहुत समय में अक्षर जानने वाला
किदं (कृतं) किया
किज्जदु (क्रियतां) करो
किणिदो (क्रीतः) खरीदा
किलिमंती (क्लाम्यन्ती) मुरझाई हुई
कुल्लाहिं (कुल्याभिः) कृत्रिम नदी
कुणंति (कुर्वन्ति) करते हैं
कुप्पासअं (कूर्पासकम्) चोली
कोइल (कोकिल) कोयल
कोडेण (कौतूहलेन) उत्सुकता से

ख

खंडिज्जदि (खण्ड्यते) काटा जाता है
खंजिद (खञ्जित) लंगड़ाते हुए
खण (क्षण) क्षण

खग्ग (खड्ग) तलवार
खदक्खारो (क्षतक्षारः) जले पर नमक
खलिदा (स्खलिताः) गिरी हुई
खिड़क्किआ (खिटक्किका) खिड़की
खिवीअदु (क्षिप्यन्ताम्) फेंको
खिज्जदु (खिद्यतु) दुःख उठाए
खुरसिहाइं (क्षुरशिखाभिः) अस्तरे की धार से

ग

गंठि (ग्रन्थि) गांठ
गब्भगअ (गर्भगतं) अन्दर पडा हुआ
गब्भघर (गर्भगृह) अन्दर का मकान
गदुअ (गत्वा) जाकर
गालिअस्स (गालितस्य) बिलोए हुए
गाढअरो (गाढतरो) अधिक तेज
गुत्था (गुम्फिता) गूंथी
गेअणिट्टविहिणा (गेयनृत्यविधिना) गाने और नाचने से
गेहिणी (गेहिनी) घर वाली
गेण्हिअ (गृहीत्वा) लेकर
गेण्ह (गृहाण) पकड़ो
गोरंगीए (गौरांग्या) गोरे शरीर वाली से
गोरिआ (गौरिका) सोने की

घ

घरिणि (गृहिणी) स्त्री
घणघम्मामिलाणो (घनघर्मम्लानः) तेज धूप से मुरझाया हुआ
घडण (घटन) लगाना
घाखिस्सं (क्षेप्स्यामि) फेंक दूगा
घुसिण (घुसृण) कुंकुम
घेत्तूण (गृहीत्वा) ग्रहण कर

च

चंकमणदो (चङ्क्रमणतः) बार २ चलने से
चंडंसुणो (चंडांशोः) सूर्य का
चंदुज्जोओ (चन्द्रोद्योतः) चन्द्रमा का उदय
चंदणचच्चा (चन्दनचर्चा) चन्दन लगाना
चक्कवट्टि चक्रवर्ति
चदुरत्तणेण (चतुरत्वेन) चतुराई से
चलणसुस्सूअओ (चरणशुश्रूषुः) चरणों की सेवा करने वाला
चउत्थीए (चतुर्थ्यां) चौथ के दिन
चउस्सट्ठिसु (चतुःषष्टिषु) चौसठ
चक्कवाअ (चक्रवाक) चकवा पक्षी
चम्पअस्स (चम्पकस्य) चम्पा का
चम्म (चर्म) खाल
चाउहाण चौहान
चारुत्तणं (चारुत्वं) सौन्दर्य
चाव (चाप) धनुष
चित्ताणिला (चैत्रानिला) चैत महीने की हवायें
चिट्ठदु (तिष्ठतु) ठहर
चित्तअरो (चित्रकरः) चित्रकार
चिट्ठदि (तिष्ठति) रहती है
चुंवण (चुम्बन) चूमना
चूरइस्सं (चूर्णयिष्यामि) चकना चूर कर दूगा
चूलिआ (चूलिका) चोटी

छ

छइल्ल (विदग्ध) छैला
छप्पआणम् (षट्पदानाम्) भौरों का
छम्मासिअ (षाण्मासिक) छ महीने का
छट्टअ (षष्ठकः) छटा
छोल्लंति (स्फुरन्ति) चमक हैं

ज

जं जं (यत् यत्) जो जो

जअदि (जयति) विजय होती है
जच्चाणं (जात्यानां) उत्कृष्ट कोटिकी
जणणिरिक्खणिज्जं (जननिरीक्षणीयम्) दर्शनीय
जरठाअमाणे (जरठायमाने) बढ़ने होने पर
जणदो (जनात्) लोगों से
जस्स (यस्य) जिसका
जहिच्छं (यथेष्टं) इच्छा के अनुसार
जदो (यतः) क्योंकि
जांति (यान्ति) बीतते हैं
जाणिज्जदि (ज्ञायते) जाना जाता है
जादो (जोता) हुआ
जाणेसि (जानासि) जानते हो
जाणिअ (ज्ञात्वा) जान कर
जाणं (ज्ञानं) ज्ञान
जीहाए (जिह्वया) जबान
जुअलं (युगलं) जोड़ा
जुहिट्ठिर (युधिष्ठिर)
जोण्हा (ज्योत्स्ना) चांदनी
जोईसर (योगीश्वर)
ज्जलइ (ज्वलति) गरम मालूम पड़ता है

झ

झत्ति (झटिति) शीघ्र
झणझणंत (झणझणायमाना) झन झन करता हुआ
झडित्ति (झटिति) जल्दी
झाणं (ध्यान)

ट

टसर (त्रसर) कन्था
टप्पर सूप
टिक्किदा (तिलकिता) तिलक लगाया
टेंटा इधर उधर घूमने वाली

ठ

ठाविदो (स्थापितो) लगाया
ठिल्लं (शिथिलं) ढीला
ठेरा (टेरा) ढेणा

ड

डंबर उद्यम
डिम्भ बालक

ण

णंदन्तु (नन्दन्तु) समृद्ध हों
णच्चिदव्वं (नर्तितव्यम्) अभिनय करना चाहिए
णट्टावअं (नर्तकं) नचाने वाला
णअणं (नयनं) आंख
णअरं (नगरं) शहर
णलिणी (नलिनी)
णह (नभ) आकाश
णहद्धे (नभोऽध्वनि) आकाशमार्ग में
णाडिआइं (नाटिकां)
णामहेअं (नामधेयं) नाम
णाम (नाम)
णाह (नाथ) स्वामी
णिट्ट (नृत्य) अभिनय
णिक्कलंका (निष्कलंकाः) कलंकरहित
णिअ (निज)
णिंदणिज्जे (निन्दनीये) निन्दा के योग्य
णिसण्ण (निषण्ण) लगा हुआ
णिसग्ग (निसर्ग) स्वभाव
णिच्चभुच्चो (नित्यभृत्यो) नित्य का नौकर
णिदंब (नितम्ब)
णिज्झाअअंतीअ (निध्याययन्त्या) लगातार ध्यान करती हुई

णिहिदो (निहितः) रखा
णिमित्तं (निमित्तं) कारण
णिवणिदा (निपतिता) गिराई
णिद्दा (निद्रा) नींद
णिहुवण (निधुवन) सुरत
णिविट्ठ (निविष्ट) पहुंचा हुआ
णिव्वणो (निर्वातः) बुझ गया
णिक्कामम्ह (निष्क्रमामः) निकल चलें
णिज्जिदा (निर्जिताः) जीत लिया
णिउणं (निपुण) अच्छी तरह
णिब्भिण्णस्स (निर्भिन्नस्य) फोड़ा हुआ, खोदा हुआ
णिग्गच्छदि (निर्गच्छति) निकलता है
णिव्विग्घ (निर्विघ्न)
णीसासा (निःश्वासाः) सांसें
णूणं (नूनम्) निश्चय ही
णेत्त (नेत्र) आंख
णेवच्छ (नेपथ्य) वेशभूषा
णेउर नूपुर
ण्हाण (स्नान)

त

तंबूलकरंक (पानदान)
तक्कं (तक्रं) मट्ठा
तक्कालकइणं (तत्कालकवीनां) उस समय के कवियों का
तक्कीअदि (तर्क्यते) अनुमान किया जाता है
तग्गदं (तद्गतं) उसका
तणुलदा (तनुलता) कोमल शरीर
तणुलट्ठी (तनुयष्टि) शरीर
तब्भत्ता (तद्भर्ता) उसका पति
तक्कज्जसज्जा (तत्कार्यसक्ता) उसके काम में लगी हुई
ताडंक (ताटंक) कान का एक गहना
ताडिदुमना (ताडितुमनाः) मारने की इच्छा वाला
ताणं (तासाम्) उनका
तारआ (तारका)
तारामेत्ती एक दूसरे को देखने पर प्रेम
तालाणुगदपदाओ (तालानुगतपदाः) ताल के अनुसार पैर रखनेवालीं
तिहुअण (त्रिभुवन)
तिलोअणो (त्रिलोचनः) शंकर
तिक्खा (तीक्ष्णा) तेज
तिरच्छि (तिर्यक्) तिरछा
तिण्णि (त्रयः) तीन
तिस्सा (उसका)
तिउसस्स (त्रपुसस्य) एक प्रकार का फल
तिक्खच्छचावा (तीक्ष्णाक्षिचापाः) तीक्ष्ण आंखों का ही धनुष रखनेवाली
तीअ (तया) उसने
तीअ (तस्याः) उसका
तुहिणअर (तुहिनकर) चन्द्रमा
तुज्झ (तव) तुम्हारा
तुरगस्स (तुरङ्गस्य) घोड़े का
तुन्दिला लम्बे पेट वाली
तुम्हेहिं (युष्माभिः) तुम्हारे
तुह (तव) तेरा
तुट्टदि (त्रुट्यति) न टूटती है
तुम्हाहिंतो (युष्मत्तः) तुमसे
तुट्ठेण (तुष्टेन) प्रसन्न
तुरिदपदं (त्वरितपदं) शीघ्र
तोसिदा (तोषिता) प्रसन्न किया
तासिणिं (त्रासिनीं) डराने वाली

थ

थंभेमि (स्तम्नामि) रोक सकता हूं
थक्कंतु (स्तोकीक्रियन्तां) कम करो
थण (स्तन) थन
थूल (स्थूल) मोटा
थोअ (स्तोक) थोड़ा
थोरत्थणिल्लं (स्थूलस्तनं) बड़े २ स्तनों वाला

द

दंसण (दर्शन) देखना
दंसिदो (दर्शितः) दिखाया
दंसेमि (दर्शयामि) दिखाता हूं
दक्खिणावह (दक्षिणापथ)
दहिणो (दध्नः) दही का
दक्खारसो अंगूर का रस
दर थोड़ा
दज्झंत (दह्यमान) जलता हुआ
दण्डरासः एक प्रकार का खेल
दाण (दान) देना
दाइस्सं (दास्यामि) देती हूँ
दिअहाइं (दिवसानि) दिन
दिण्णा (दत्ता) दी
दिट्ठं (दृष्टं) देखा
दिणदीओ (दिनदीप)
दिणमणी (दिनमणिः) सूर्य
दिज्जए (दीयते) दिया जाता है
दिण्णा (दत्ता) दी हुई
दिज्जदु (दीयते) दिया जाता है
दीसदि (दृश्यते) दिखाई देता है
दीसध (दृश्यध्वे) दिखाई पड़ते हो
दीहं (दीर्घं) बड़ा
दीहदप्पो (दीर्घदर्पो) बड़े घमण्ड वाला
दीअंत (दीयमान) दिया जाता हुआ
दीहरतमा (दीर्घतमा) अत्यन्त बड़े
दुबे (द्वौ) दो
दुससिणी (द्विशशिनी) दो चन्द्रमाओं
दुक्किदं (दुष्कृतं) पाप
दुदीओ (द्वितीयः) दूसरा
दुआरदेसे (द्वारदेशे) दरवाजे पर
दुल्लक्खअं (दुर्लक्ष्यं) कठिन से प्रतीत होने वाला
दुहिदा (दुहिता) लड़की
दूरं (अत्यन्तम्)
देंतो (ददत्) देता हुआ
देउ (ददातु) दे
दोलन्ति (दोलानन्ते) हिलती हैं
दोसुं (द्वयोः) दो का
दोसोलह (द्विषोडश) बत्तीस
दोणी (लकड़ी के पानी का वर्तन)

ध

धम्म (धर्म)
धणू धनुष
धरइ (धारयति) धारण करता है
धवलेंति (धवलयन्ति) उज्ज्वल करते हैं
धरिदा (धृता) रखी
धाणुक्क (धानुष्क) धनुर्धारी
धुआगीतं (ध्रुवागीतम्) ध्रुवा के साथ गाना (संगीत में जिस अंश का प्रतिशाखा से सम्बन्ध होता है, उसे ध्रुवा कहते हैं)
धूव (धूप) सुगन्धित द्रव्य
धोविद (धौत) धुला हुआ

प

पंचगव्वं (पञ्चगव्यम्) गाय के दूध दही, घी, गोवर और गोमूत्र

पंडिअवेर (पंडितगृहे) पंडित के घर पर
पंडित्तणं (पाण्डित्यं)
पअट्टदु (प्रवर्तताम्) प्रवृत्त रहे
पत्तोच्चिअआइं (पात्रोचितानि) पात्रों के अनुसार
पडिसीसआइं (प्रतिशीर्षकाणि) पगड़ियाँ
पडिसारीअदि (प्रतिसार्यते) साफ की जाती है
पण्होत्तरं (प्रश्नोत्तरं) प्रश्न का उत्तर
पवेसअ (प्रवेशक) नाटक के बीच में आने वाला दृश्य
परिहरिअ (परिहृत्य) छोड़कर
पउंजध (प्रयुङ्ध्वम्) अभिनय करते हो
परिणेदि (परिणयति) विवाह करता है
पत्तो (प्राप्तः) आया
पडिवड्ढाविआ (प्रतिवर्धिका) बढ़ावा देने वाली
पठिस्सं (पठिष्यामि) पढ़ूंगा
पडिवट्टे (प्रतिपट्टे) रेशमी वस्त्र
पढमा (प्रथम) पहली
पउंजीअदि (प्रयुज्यते) प्रयोग किया जाता है
पडिप्पद्धा (प्रतिस्पर्धा) बराबरी
पसाहणलच्छी (प्रसाधनलक्ष्मी) शृङ्गार शोभा
पवेसअ (प्रवेशय) आने दो
पच्चक्खं (प्रत्यक्षम्)
पत्तिआमि (प्रत्येमि) विश्वास करती हूं
पद्दराअ (पद्मराग) पुखराज
पडइ (पतति) गिरता है
पणट्ठा (प्रणष्टा) छिप गई
पच्चग्गेहिं (प्रत्यग्रैः) नए
पविट्ठा (प्रविष्टा) पहुँच गई
पअडेइ (प्रकटयति) जाहिर करता है
पच्चंगं (प्रत्यंगं) हर अङ्ग में

पच्छा (पश्चात्) बाद में
पडन्ति (पतन्ति) गिरते हैं
पडिसीस्सएहिं (प्रतिशीर्षकैः) नकल करके
परमेट्ठि (ब्रह्मा)
पडाआ (पताका) ध्वजा
पाउद प्राकृतभाषा
पाहुदं (प्राभृतं) भेंट
पाइआ (पायिता) पिला दिया
पासम्मि (पार्श्वे) पास में
पालिद्धिआ (पापर्द्धिका) पाप बढ़ाने वाली
पाइक्क (पदाति) पैदल चलने वाला
पिज्जंतं (पीयमानम्) पिया जाता हुआ
पिअं (प्रियम्)
पिआमो (पिबामः) पीते है
पिहाणं (पिधानं) ढक्कन
पीडसिविणएण (प्रतिस्वप्नेन)
पुंजिज्जई (पुंजीभवति) इकट्ठा होता है
पुंखिद (पुंखित) चढ़ा हुआ
पुच्छिस्सं (पृच्छामि) पूछता हूं
पुत्थिआइं (पुस्तकानि) किताबों को
पुच्छीअंति (पृच्छ्यन्ते) पूछे जाते हैं
पुत्तो (पुत्रो)
पुण्णिमा (पूर्णिमा) पूनम
पुच्छिअ (पृष्ट्वा) पूछ कर
पुप्फणिअरं (पुष्पनिकरं) फूलों का समूह
पुलिंद (व्याध) बहेलिया
पुत्ति (पुत्रि)
पेच्छ (प्रेक्षस्व) देखो
पेक्खीअदि (दृश्येत) देखा जाता है
पेसिदं (प्रेषितं) भेजा
पोम्मराअ (पद्मराग)
प्पहुदि (प्रभृति) तक
प्पणामो (प्रणामः)

प्पभाद (प्रभात) प्रातःकाल, सवेरा
प्पसवो (प्रसवः) फूल
प्पसाहिदा (प्रसाधिता) सजाई
प्पसाद (प्रसाद) प्रसन्नता
प्पकिदि (प्रकृति) स्वभाव
प्पक्खालतो (प्रक्षालयन्) धोता हुआ
प्पसिदि (प्रसृति) अर्द्धाञ्जलि
प्पहाओ (प्रभावः) असर
प्पआसइ (प्रकाशते) प्रकट होना है
प्पविसम्ह (प्रविशामः) अन्दर चलें
प्पसर (प्रसर) फैलाव
प्पसीददु (प्रसीदतु) प्रसन्न हो
प्पदीवो (प्रदीपः) दीपक
प्पडिट्ठाविदा (प्रतिष्ठापिता) प्रतिष्ठा कराई
प्पणमिज्जसि (प्रणम्यसे) प्रणाम किए जाते हो
प्पाकारं (प्राकारं) चहारदीवारी को
प्पेच्छंतीणं (प्रेक्षमाणानां) देखने वालों का
प्पेक्खिदव्वाइ (प्रेक्षितव्यानि) देखना चाहिए
प्फार (स्फार) विशाल

फ

फंस (स्पर्श) छूना
फटिअ (स्फटिक) सफेद पत्थर
फलआ (फलकौ) हिस्से
फलिल्लं (फलाढ्य) फलों से लदा हुआ
फग्गुणसमये (फाल्गुनसमये) फागुन में
फुरदु (स्फुरतु) चमके, ध्यान में आए
फुडती (स्फुरन्ती) टूटती हुई
फुरंतओ (स्फुरन्) चमकता हुआ

ब

बंदिहिं (वन्दिभिः) वन्दी के द्वारा
बंदिदुं (वन्दितुं) वन्दना करने
बंचणा (वञ्चना) धोखा
बरा (वरा) सुन्दर
बहुसो (बहुशः) अनेक तरह से
बण्णिआओ (वर्णिकाः) रंग
बल्लह (वल्लभ) प्रिय
बण्णिदो (वर्णितः) वर्णन किया
बड्ढावीअसि (वर्धसे) प्रसन्न हो रही हो
बहलं अधिक
बट्टंति (वर्तन्ते) हैं
बला (बलात्) जबर्दस्ती
बड्ढावओ (वर्धापकः) बन्दी देने वाला
बण्णअ (वर्णय) वर्णन करो
बअणं (वचनं) कहना
बम्हणेण (ब्राह्मणेन) ब्राह्मण से
बइल्लो (बलीवर्दः) बैल
बसुहा (वसुधा) पृथ्वी
बअस्स (वयस्य) मित्र !
बलइद (वलयित) मोड़ा हुआ
बहिणिए (भगिनिके) बहिन !
बक्कउत्ति (वक्रोक्ति) बात बनाकर कहना
बरिट्ठा (वरिष्ठा) सुन्दर
बरिसिदुं (वर्षितुं) बरसने को
बड्ढंत (वर्धमान) बढता हुआ
बत्थल (वस्त्र) कपड़ा
बड्ढत्तणं (वृद्धत्वं) वृद्धि
बग्गो (वर्गो) समूह
बट्टेदि (वर्तयति) रखती है
बासाइणो (व्यासादयः) व्यास इत्यादि कवि
बाआ (वाताः) हवाएं
बाअंति (वान्ति) चलती हैं
बाहिरा (बाह्यौ) बाहरी
बासरा (वासराः) दिन

बारुणी सराब
बाहणिज्जा (बाधनीया) पीडनीय
बिअ (इव) तरह
बिणिज्जिअ (विनिर्जित्य) हरा कर
बिक्कम (विक्रम) शौर्य
बिसारिय (विस्तार्य) फैला कर
बिट्टालिणि बिगड़ने वाली
बिक्किणीअदि (विक्रीयते) बिकती है
बिडवा (विटपाः) वृक्ष
बिब्भमवदीसु (विभ्रमवतीषु) सुन्दर
बिसए (विषये) बात में
बिदुंणो (बिन्दवः) बूंदे
बिलेवणा (विलेपन) अंगराग
बिहूसणा (विभूषणा) गहने
बिहूसयंति (विभूषयन्ति) सजाते है
बिज्झन्ति (विध्यन्ति) सताते है
बिसप्पदि (विसर्पति) चलती है
बित्तिआरे (वृत्तिकारः) व्याख्या करनेवाला
बित्थरेण (विस्तरेण) विस्तार के साथ
बिज्जुल्लेहा (विद्युल्लेखा) बिजली की रेखा
बिआलो (विकालः) शाम
बिचित्तदा (विचित्रदा)
बिडंबेदि (विडम्बयति) धोखा देता है
बिसहर (विषधर) सांप
बिडंबणं (विडम्बनम्) नकल
बिप्पलंभो (विप्रलम्भः) वियोग
बिण्णबीअदि (विज्ञाप्यते) कहा जाता है
बिजिंभिदं (विजृम्भितं) करामात
बिसुमरिदाइं (विस्मृतानि) भुला दिए
बीजइस्सं (वीजयिष्यामि) हवा करूंगा
बुत्तंतं (वृत्तान्तं) हाल
बेदब्भं (वैदर्भ)
बेट्ठिदुं (वेष्टितुं) पकड़ने को
बेदुरि (वैदुर्य) मणि विशेष
बेला (वेला) समय
बेधआर (वेधकार) छेद करने वाला
बेधाबिआइं (वेधितानि) छेद किया
बोल्लम्मि (वचने) कहने में

भ

भंज (भञ्जय) तोड़ो
भद्द (भद्रं) कल्याण
भणइ (भण्यते) कहा जाता है
भंडए (भाण्डे) वर्तन में
भअवं (भगवान्)
भमल (भ्रमर) भौंरा
भज्जाजिदो (भार्याजितः) पत्नी से जीता हुआ
भट्टो (भ्रष्टो) उन्मत्त
भरिआ (भृतौ) भर गए
भविअ (भावि) होने वाला
भत्तुणो (भर्तुः) पति की
भासा (भाषा)
भादि (भाति) अच्छा लगता है
भामरीओ (भ्रामर्यो) भावरी (फेरे)
भिंग (भृङ्ग) भौंरा
भिक्खा (भिक्षा) भीख
भुल्लो (भ्रान्तो) भूला हुआ
भूमिअं (भूमिकां) वेशभूषा
भोज्जं (भोज्य) भोजन
भोदु (भवतु) होवे
भोदि (भवति) आप

म

मंतो (मन्त्रः) मन्त्र जपने का
मंथरिज्जंतु (मन्थरीक्रियन्तां) कम करने चाहिये

मज्झम्मि (मध्ये) बीच में
मअणं (मदनं) कामदेव
मलअ (मलय) इस नाम का पर्वत
मल्लिआ (मल्लिका) एक फूल का नाम
मज्झ (मम) मेरा
महुच्छवं (मधूत्सवं) वसन्तोत्सव
मह (मम) मेरा
मज्जं (मद्य) शराब
मए (मया) मैंने
मण्णेदि (मन्यते) मानी जाती है
मग्गणा (मार्गणाः) बाण
मइरा (मदिरा) शराब
मम्महरहो (मन्मथरथः) कामदेव का रथ
महुरिज्जइ (मधुरीयति) मीठा होता है
महंतो (महान्)
मत्तंडे (मार्तण्डे) सूर्य
मणोरह (मनोरथ)
मग्गिज्जदि (मृग्येत) ढूंढा जाता है
मअरद्धअ (मकरध्वज) कामदेव
महोसहं (महौषधं) प्रभावशाली ओषधि
मज्झअं (मध्यं) कमर
मज्जण (मज्जन) स्नान
महुलच्छी (मधुलक्ष्मीः) वसन्त शोभा
मई (मतिः) बुद्धि
मज्जारिआ (मार्जारिका) बिल्ली
माअही (मागधी) संस्कृत साहित्य में एक प्रकार की शैली
माहप्पम् (माहात्म्यम्)
माणिक्कं (माणिक्य) मानक
माउस्सिआ (मातृष्वसा) मौसी
माणुसस्स (मानुषस्य) मनुष्य का
माणिणि (मानिनी) मान वाली
मिअंगा (मृदङ्गाः) मृदंग
मिहुणाइ (मिथुनानि) जोड़े
मिलाणो (म्लान) मुर्झाया हुआ
मिट्ठत्तणे (मधुरत्वे) सुन्दरता में
मिअच्छी (मृगाक्षी) हिरन जैसे नयन वाली
मुक्खो (मूर्खो) मूर्ख
मुत्ताणं (मुक्तानां) मोतियों का
मुद्धमुहि (मुग्धमुखि) सुन्दर मुख वाली
मुच्छा (मूर्च्छा)
मुद्दिद (मुद्रित) बन्द
मुक्क (मुक्त) रहित
मोक्खं (मोक्ष)
मोत्तूण (मोचयित्वा)

र

रंजण (रंजन) प्रसन्न करना
रहुउल (रघुकुल)
रइरहस (रतिरभस) सुरत की इच्छा
रमणिज्ज (रमणीय) सुन्दर
रम्भो (रम्यः) सुन्दर
रविस्स (रवेः) सूर्य का
रत्थाए (रथ्यायां) सड़क पर
रअणि (रजनी) रात
रअ (रय) वेग
रणिद (रणित) बजता हुआ
रइरहस्सं (रतिरहस्य) सुरत का भेद
रज्जंति (रजयन्ति) प्रसन्न होते हैं
रत्तिमज्झे (रात्रिमध्ये) रात्रि में
रक्खाघरअं (रक्षागृहं) नजरबन्दी की जगह
रअणकुसुम (रत्नकुसुम)
राअउल (राजकुल)
राआ (राजा)
राओम्मत्ता (रागोन्मत्ता) संभोग की इच्छा का उन्माद रखने वाले

रित्ता (रिक्ता) खाली
रीदीओ (रीतिकाः) रीतियाँ, साहित्यिक शैलियाँ
रुदु (ऋतु)
रुट्ट (रुष्ट) नाराज
रुहिर (रुधिर) खून
रूअरेहा (रूपरेखा) सौन्दर्य
रूढीअ (रूढेः) रूढि का
रोसावसरो (रोषावसरः) क्रोध का मौका

ल

लंछिदं (लाञ्छितम्) चिह्नित कर दिया
लंगिमं (तारुण्यं) यौवन
लंभिदो (लम्भितः) प्राप्त कराया
लच्छी (लक्ष्मी) शोभा
लग्गा (लग्ना) लग गई
लहेदि (लभते) प्राप्त करना है
लक्खिज्जए (लक्ष्यते) मालूम पड़ना है
लावण्णं (लावण्यं) सौन्दर्य
लास्सावसाणे (लास्यावसाने) लास्य के अन्त में
लाजंजलीओ (लाजाञ्जलयः) खीलों की अंजलियाँ
लिहिदो (लिखितः) लिखा
लेहहत्था (लेखहस्ता) लेख हाथ में लिए हुए
लोट्टदि (लुठति) लोटती है
लोहपरम्मुहो (लोभपराङ्मुखः) लोभ से दूर

स

संघाडो (सङ्घटना) सङ्गम
संझा (सन्ध्या) शाम
संदावदाइणि (संतापदायिनी)
संकेअ (संकेत) इशारा
संभाविज्जदि (सम्भाव्यते) हो सकता है
संठिदा (संस्थिता) ठहरी
सअलो (सकलो) सब
सरस्सई (सरस्वती)
सट्टअं (सट्टकं) एक प्रकार का रूपक
ससुरो (श्वशुरः)
सहाए (सभायां) सभा में
समसीसिआ (समशीर्षिका) प्रतिस्पर्धा
समुव्वहदि (समुद्वहति) धारण करना है
सव्वाणं (सर्वेषाम्) सब का
सण (शण) सन
सपज्जा (सपर्या) सेवा
सच्चं (सत्यम्)
सहरिसं (सहर्ष) खुशी के साथ
सण्णिहिदा (सन्निहिता) निकट
समादिट्टं (समादिष्टं) कहा
समुग्गिरइ (समुद्गिरति) छोड़ना है उगलता है
समुग्घाडिअ (समुद्घाट्य) खोल कर
समुप्पन्ना (समुत्पन्ना) पैदा हुई
सरलत्तणम् (सरलत्वम्) सरलता को
सरअसमीर (शरत्समीर)
सरिच्छा (सदृशी) समान
सग्गो (स्वर्गो) स्वर्ग
सस्सोचिदं (शस्योचितं) फसल के अनुसार
सहित्तणं (सखीत्वं) मैत्री को
सामलम् (श्यामल) सांवला
साडिआ (शाटिका) साड़ी
सिंचिज्जंती (सिच्यमाना) सींची जाती हुई
सिंगार (शृङ्गार)
सिविणअं (स्वप्नं) सपना
सिढिलआमि (शिथिलयामि) कम करूँ
सिलोओ (श्लोको)

सिसिरोपआरसामग्गिं (शिशिरोपचार सामग्रीं)
सीअला (शीतलाः)
सुहं (सुखम्)
सुत्रोम्हि (सुप्तोऽस्मि) सो गया हू
सुत्था (स्वस्था) स्थिर
सुत्ती (शुक्ति) सीप
सुणादु (शृणोतु) सुनो
सुत्तआरो (सूत्रकारः) संक्षेप में बोलने वाला
सुब्बणं (सुवर्णम्) सोना
सुणीअदि (श्रूयते) सुना जाता है
सुरअ (सुरत) संभोग
सूलाअरण (शूलाकरण) फांसी देना
सेवणिज्जो (सेवनीयो) आनन्द उठाने योग्य
सेट्ठिणा (श्रेष्ठिना) सेठ ने
सोभाग्ग (सौभाग्य)
सोहदे (शोभते) अच्छा लगता है
सोहासमुदाएण (शोभासमुदायेन)
स्सवण (श्रवण) कान

ह

हल्लबोलो (हलहलः) हल हलकी ध्वनि
हरिणंक (हरिणांक) चन्द्रमा
हत्थे (हस्ते) हाथ में
हक्कारिअण (आकार्य) बुलाकर
हरिद्दाअ (हरिद्रायाः) हल्दी से
हलिद्दा (हरिद्रा) हल्दी
हक्कारीअदु (आकार्यताम्) बुलाया जाना चाहिए
हिअआइं (हृदयादि) मन को
हिमाणिं (हिमानीं) बरफ का समूह
हुअंति (भवन्ति) होते हैं
होंति (भवतः) होते हैं
होदब्बं (भवितव्यं) होना चाहिए

नाटकीय सुभाषित सङ्ग्रह

१. अहवा हत्थकंकणं किं दप्पणेण पेक्खीअदि ? (पृ. २२)

२. तुरगस्स–सिग्घत्तणे किं साक्खिणो पुच्छीअंति ? (पृ. २२)

३. ण कत्थूरिआ कुग्गामे वणे वा विक्किणीअदि, न सुवण्णं कसवट्टिअं विणा सिलापट्टए कसीअदि । (पृ. २३)

४. सा घरिणी जा पिअं रंजेदि, सो पुत्तो जो कुलं उज्जलेदि । (पृ. २४)

५. मइरा पंचगव्वं च एकस्सिं भंडए कीरदि, कच्चं माणिक्कं च समं आहरणे पउंजीअदि । (पृ. ३०)

६. कीदिसी णअणंजणेण विणा पसाहणलच्छी ? (पृ. ३२)

७. जुज्जदि चंपअलदाए कत्थूरिआकप्पूरेहिं आलवालपरिपूरणं । (पृ. ५२)

८. सीस्से सप्पो, देसंतरे वेज्जो । (पृ. १७६)

९. रज्जंति छेआ समसंगमम्मि । (पृ. १२२)

१०. पाइआ जीण्णमज्जारिआ दुद्धं त्ति तक्कं ।

कर्पूरमञ्जरीगत छन्दों की सूची

प्रश्नपत्र

१. कर्पूरमञ्जरी की कथा संक्षेप में लिखिए। (प्रस्तावना में कथासार देखिए)

२. राजशेखर के वंश और काल की विवेचना कीजिए।

३. राजशेखर की शैली पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

४. 'कर्पूरमञ्जरी' नाटक पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

५. 'सट्टक' किसे कहते हैं ? इसकी प्रमुख विशेषताएं बतलाइए।

६. प्रस्तुत नाटक में भैरवानन्द की क्या उपयोगिता है ? उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

७. विष्कम्भक, प्रवेशक, सूत्रधार और प्रस्तावना—इन की परिभाषा दीजिए।

८. कर्पूरमञ्जरी का राजा चन्द्रपाल से किस तरह विवाह हुआ ?

प्रश्नोत्तर

प्र० नं० २ राजशेखर के वंश और काल की विवेचना कीजिए

राजशेखर के समय और वंश के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार प्रकट किए हैं। राजशेखर यायावर वंश का था। तिलकमंजरी और उदयसुन्दरी में उसको 'यायावर' अथवा 'यायावर कवि' कहा गया है। उसका पिता दुर्दुक और माता शीलवती थी। वह अकालजलद का पौत्र और सुरानन्द, तरल और कविराज का वंशधर था। अवन्तिसुन्दरी नाम की एक राजपूत कन्या से विवाह होने के कारण यह बात कुछ सन्दिग्ध सी जान पड़ती है कि वह ब्राह्मण रहा हो। लेकिन जब हम यह देखते हैं कि प्राचीन काल में अन्तर्जातीय विवाह भी होता था और स्मृतियों में ऐसे विवाह का विधान भी है तो हमें इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिए कि राजशेखर ब्राह्मण था और उसने अवन्तिसुन्दरी से अनुलोम विवाह किया होगा। राजशेखर के जन्मस्थान के विषय में बड़ा मतभेद है। कोई उसे महाराष्ट्री बताते हैं। सूक्तिमुक्तावली में सुरानन्द नामक उसके एक पूर्वज को चेदिमण्डलमण्डनम् कहा गया है। लेकिन राजशेखर ने कहीं पर भी महाराष्ट्री प्राकृत को विशेष स्थान नहीं दिया है। हो सकता है कि राजशेखर के समय में महाराष्ट्र की कोई दूसरी सीमायें हों। यह भी संभावना हो सकती है कि राजशेखर महाराष्ट्र छोड़ कर पाञ्चाल देश में आ गया हो।

राजशेखर ने अपने बारे में बहुत कुछ लिखा है। कर्पूरमंजरी में उसने अपने लिए 'बालकवि' कविराज 'सर्वभाषाचतुर' कहा है। उसने अपने को निर्भयराज (महेन्द्रपाल) का गुरु बतलाया है। राजा महेन्द्रपाल के पुत्र और उत्तराधिकारी राजा महीपाल ने भी उसको अपना संरक्षक बनाया था। सीयोदनि के शिलालेख में महेन्द्रपाल का शासनकाल ९०३-९०७ ईसा के बाद का और महीपाल का ९१७ ईसा के बाद बताया गया है। राजशेखर ने भवभूति की प्रशंसा में उनको पुनरुत्पन्न वाल्मीकि कहा है तथा वाक्पतिराज, उद्भट और आनन्दवर्धन का उल्लेख किया है। सोमदेव ने अपने यशस्तिलकचम्पू में, धनञ्जय ने अपने दशरूपक में और सोड्ढल ने अपनी उदयसुन्दरी में राजशेखर का उल्लेख किया है। इन सब उल्लेखों से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि राजशेखर लगभग ९०० ईसा से बाद रहा होगा।

(विशेष विवरण के लिए प्रस्तावना देखिए)

प्र० नं० ३ राजशेखर की शैली पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखो

संस्कृत साहित्य का प्रत्येक विद्यार्थी राजशेखर के नाम से परिचित है। इस महाकवि

की भाषा सरस और सरल है। इसकी कर्पूरमञ्जरी ही एक ऐसी नाटिका है जिसमें संस्कृत नहीं पाई जाती। राजशेखर ने साहित्यक्षेत्र में यह एक नया प्रयोग किया। काव्य के संबन्ध में उसका यह कथन है—

अत्थणिवेसा ते ज्जेब्ब सद्दा ते ज्जेब्ब परिणमंताइं।
उत्तिविसेसो कव्वो भासा जा होइ सा होदु॥

भाषा के संबन्ध में उसका यह कहना है कि—

परुसा सक्किअ बंधा पाउदबंधो बि होइ सुउमारो।
पुरुसमहिलाणं जेत्तिअमिहंतरं तेत्तिअमिमाणं॥

कुछ लोग इस कथन की प्रामाणिकता में विश्वास नहीं करते है। इसमें कुछ संदेह नहीं हो सकता कि राजशेखर की रचना निर्दोष नहीं है। चरित्रचित्रण में व्यक्तिगतता और स्वारस्य लाना उसकी शक्ति के बाहर है। विद्धशालभंजिका में विद्याधरमल्ल अपने प्रत्यादर्श, विलासशील और दाक्षिण्ययुक्त वत्स के समक्ष बिल्कुल रूखा और अरुचिकर लगता है। रानी में न तो वासवदत्ता जैसा प्रेम है और न उसकी महानुभावता। भागुरायण यौगन्धरायण का विच्छिन्न और अस्पष्ट प्रतिबिम्ब है। उसकी नायिकाओं में कोई विशेषता नहीं। इसी प्रकार कलासंबन्धी और भी कितने ही दोष उसमें पाए जाते हैं।

यह सब होते हुए भी राजशेखर की शैली और भावों को प्रभावोत्पादक ढंग पर व्यक्त करने की शक्ति सराहनीय है। संस्कृत एवं प्राकृत छन्दों के प्रयोग में वह सिद्धहस्त है। अन्य उत्तरकालीन नाटककारों की भांति, ललित और मनोहर पदावली की रचना करने में वह सर्वथा समर्थ है। विद्धशालभञ्जिका का मङ्गलाचरण निःसन्देह लालित्य से भरा हुआ है—

कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने परमसुहृदनंगो रोहिणीवल्लभस्य।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता जयति सुरतलीलानाटिकासूत्रधारः॥

राजशेखर की रचना पर कालिदास, हर्ष, भवभूति आदि पूर्वकालीन कवियों का प्रभाव प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। कर्पूरमञ्जरी पर मालविकाग्निमित्र और रत्नावली का प्रभाव तो प्रत्यक्ष ही है।

प्र० नं० ४ कर्पूरमञ्जरी पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए

कर्पूरमञ्जरी एक प्रकार का सट्टक है। राजशेखर ने स्वयं सट्टक के संबन्ध में कहा है कि—

सो सट्टओ त्ति भणइ दूरं जो णाडिआइं अणुहरइ।
किं उण एत्थ पवेसअ विक्कंभाइं ण केवलं होंति॥

उस रचना को सट्टक कहते हैं जो नाटिका से बिल्कुल मिलती-जुलती है। इसमें केवल प्रवेशक और विष्कम्भक नहीं होते हैं। जिसप्रकार नाटिका में वस्तु काल्पनिक होती है, नायक कोई प्रख्यात धीरललित राजा होता है और शृङ्गार रस प्रधान होता है, उसी प्रकार कर्पूरमञ्जरी में भी सब बातें वैसी ही पाई जाती हैं। जिसप्रकार नाटिका में प्रगल्भ, राजकुलोत्पन्न, गम्भीर और मानिनी महारानी होती है और महारानी की वजह से ही नायक का नूतननायिका से समागम होता है। नूतननायिका मुग्धा, दिव्य और अत्यन्त सुन्दर होती है। नायक का उसमें अन्तःपुर इत्यादि के संबन्ध से देखने तथा सुनने से उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ता जाता है। महारानी के डर से हिचकता-हिचकता नायक उससे प्रेम करता है। यह सब बातें भी कर्पूरमञ्जरी में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। इस तरह कर्पूरमञ्जरी को एक नाटिका ही समझना चाहिए।

प्राकृत भाषा में लिख कर राजशेखर ने एक साहित्यिक परीक्षण किया है। अपनी रचना को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए ही उसने ऐसा किया। जिस तरह शृंगार रस नाटिका में प्रधान होता है कर्पूरमञ्जरी भी शृङ्गार रस से ओतप्रोत है और राजशेखर की वास्तविक कवित्व शक्ति का परिचय देती है। राजशेखर के स्त्रीसौन्दर्य की कल्पना जरा देखिए—

> **अङ्गं लावण्यपूर्णं श्रवणपरिसरे लोचने हारतारे**
> **वक्षः स्थूलस्तनं त्रिवलिवलयितं मुष्टिग्राह्यं च मध्यम्।**
> **चक्राकारा नितम्बस्तरुणिमसमये किंत्वन्येन कार्यम्?**
> **पञ्चभिरेव बाला मदनजयमहावैजयन्त्यो भवन्ति॥** (पृ. १३५)

वसन्तवर्णन, संध्यावर्णन और चन्द्रिकावर्णन भी यत्र तत्र सजीव बन पड़ा है। झूले के दृश्य में सुन्दर ललित पदावली में प्रभावोत्पादक शब्द चित्रण किया गया है:—

> **'विच्छाअन्तो णअररमणीमण्डलस्साणणाइं**
> **प्पिच्छालंतो गअणकुहरं कंतिजोण्हाजलेण।**
> **पेच्छंतीणं हिदअणिहिदं णिद्दलंतो च दप्पं**
> **दोलालीलासरलतरलो दीसए से मुहेंदू॥'** (पृ. ८९)

प्रत्येक रमणी के मुखारविन्द को फीका करता हुआ, अपने रूपलावण्य की द्रवीभूत चन्द्रिका से गगनमण्डल को तरङ्गित करता हुआ, अन्य युवतियों के अभिमान को दलित करता हुआ चन्द्रमा के समान उसका मुखमण्डल दिखाई देता है; जब कि वह झूलती हुई सीधे आगे-पीछे झोंके लेती है।

उक्त छन्द के प्रभावोत्पादक अनुप्रास और श्लेष को एक और पद्य में मात किया गया है जहाँ पदध्वनि से पदार्थ की प्रतीति हो जाती है :—

रणंतमणिणेउरं झणझणंतहारच्छडं
कणक्कणिअकिंकिणी मुहरमेहलाडंबरं।
विलोलवलआवलीजणिदमंजुसिंजा रवं
ण कस्स मणमोहणं ससिमुहीअ हिंदोलणं॥ (पृ. ९१)

नूपुरों को झनकारती हुई, मणिमय माला के प्रकाश को छिटकाती हुई किंकिणियों से निनादित होती हुई, कटिमेखला को प्रदर्शित करती हुई, परिभ्रमणशील कंगनों को कलकूजित करती हुई, हिंडोले में झूलती हुई यह चन्द्रवदनी किसके मन को नहीं मोह लेती।

जैसा कि मंगलाचरण में कवि ने वैदर्भी, मागधी और पाञ्चाली इन रीतियों का उल्लेख किया है इसी तरह कर्पूरमंजरी में स्थान-स्थान पर सभी रीतियाँ पाई जाती हैं। विशेष रूप से पाञ्चाली रीति का प्रयोग किया गया है।

प्र० नं० ५ सट्टक किसे कहते हैं ? इसकी प्रमुख विशेषताएँ बतलाइए

संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटिकायें निम्न प्रकार की होती है। जैसे:—

तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः।
प्रख्यातो धीरललितः शृङ्गारोऽङ्गी सलक्षणः॥
देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा।
गम्भीरा मानिनी कृच्छ्रात्तद्वशान्नेतृसंगमः॥
नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा।
अन्तःपुरादिसम्बन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनैः॥
अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम्।
नेता तत्र प्रवर्तेत देवीत्रासेन शंकितः।
कैशिक्यङ्गैश्चतुर्भिश्च युक्ताङ्कैरिव नाटिका॥

नाटिका में वस्तु काल्पनिक होती है। नायक प्रख्यात धीरललित राजा होता है। शृङ्गार रस प्रधान होता है। ज्येष्ठ, प्रगल्भ, राजकुलोत्पन्न, गंभीर और मानिनी महारानी होती है और उसी की वजह से नायक का नूतननायिका से समागम होता है। प्राप्य नायिका मुग्धा, दिव्य तथा राजकुलोत्पन्न इत्यादि गुणों से युक्त कोई सुन्दरी होती है। अन्तःपुर इत्यादि के संबन्ध से देखने तथा सुनने से नायक का उसमें उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ता

जाता है। नायक महारानी के डर से हिचकिचाता हुआ नूतन नायिका की ओर प्रवृत्त होता है तथा कैशिकी वृत्ति के चार अंगों से चार अंक इसमें होते हैं।

उपर्युक्त सारे लक्षण सट्टक में भी होते हैं। राजशेखर ने स्वयं कहा है—

सो सट्टओ त्ति भणइ दूरं जो णाडिआइं अणुहरइ।
किं उण एत्थ पवेसअविक्कंभाई ण केवलं होंति॥ (पृ. ८)

नाटिका से बिल्कुल मिलती-जुलती रचना को सट्टक कहते हैं। इसमें प्रवेशक और विष्कम्भक नहीं होते। प्राकृत भाषा का ही प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। अद्भुत रस भी यत्र तत्र पाया जाता है। अंकों को जवनिका कहते हैं। गीत, नृत्य और विलास की प्रधानता रहती है।

प्र० नं० ६ प्रस्तुत नाटक में भैरवानन्द की क्या उपयोगिता है? उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

भैरवानन्द अद्भुतसिद्धि वाला, कौलिक मत को मानने वाला, शिव जी का उपासक एक सिद्धपुरुष है। जैसा कि उसके कथन से स्पष्ट है। वह वेद आदि की शिक्षाओं को नहीं मानता। वह मद्य पीता है, मांस खाता है और स्त्रीसंभोग से भी उदासीन नहीं है। उसे कुछ सिद्धियाँ प्राप्त हैं। नाटक के प्रथम जवनिकामें ही उसका प्रवेश हो जाता है। राजा चन्द्रपाल के कहने से वह कर्पूरमञ्जरी को सबके सामने प्रत्यक्ष ला दिखाता है। उसके अपूर्व सौन्दर्य को देखकर राजा उस पर मोहित हो जाता है और उससे प्रेम करने लगता है। चूँकि कर्पूरमञ्जरी अन्त में रानी विभ्रमलेखा की बहिन निकलती है इसलिए रानी विभ्रमलेखा उसको अपने महल में कुछ दिनों के लिए रख लेती है। इस तरह नाटक की कथावस्तु भैरवानन्द के कारण से ही आगे बढ़ती है। या यों कहिए कि नाटक का सूत्रपात ही भैरवानन्द के द्वारा होता है। अन्त में भैरवानन्द के द्वारा ही कर्पूरमञ्जरी का राजा चन्द्रपाल से विवाह होता है। विदूषक ने राजा को उद्देश्य कर—

'भो वअस्स! अह्मे परं दुए वि बाहिरा एत्थ, जदो एदाणं मिलिदं कुटुंबअं वट्टदि, जदो इमीए दुओ वि बहिणिआओ। भैरवाणंदो उण एदाणं संजोअअरो अविदो मण्णिदो अ'। (पृ. ५१)

यह कथन प्रथम अंक में कहा था। लेकिन जिस तरह भैरवानन्द ने कर्पूरमञ्जरी और रानी विभ्रमलेखा का संयोग कराया था अन्त में राजा चन्द्रपाल और कर्पूरमञ्जरी का संयोग भी उसके द्वारा होता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि इस नाटक में भैरवानन्द ही सब कुछ है।

उसके व्यक्तित्व के संबन्ध में प्रथम तो कुछ शंका होती है। क्योंकि—उसका यह कथन:—

मंतो ण तंतो ण अ किं पि जाणं झाणं च णो किं पि गुरुप्पसादा।
मज्जं पिआमो महिलं रमामो मोक्खं च जामो कुलमग्गलग्गा॥ (पृ. ३५)
रंडा चंडा दिक्खिदा धम्मदारा मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्जं चम्मखंडं च सेज्जा कोलो धम्मो कस्स णो भादि रम्मो॥ (पृ ३६)
मुत्तिं भणंति हरिबम्हमुहादिदेआ झाणेण वेअपठणेण कदुक्किआए।
एक्केण केवलमुमादइएण दिट्ठो मोक्खो समं सुरअकेलिसुरारसेहिं॥ (पृ. ३६)

कुछ अटपटा सा जान पड़ता है। लेकिन यह उसके बात करने का केवल एक ढग है। राजा चन्द्रपाल ने उसको योगीश्वर बतलाया है। आगे चलकर रानी विभ्रमलेखा उसको अपना दीक्षागुरु बनाती है और गुरुदक्षिणा के लिए आग्रह करती है। इससे यह सिद्ध होता है कि भैरवानन्द एक पहुंचा हुआ योगी है और अद्भुत कार्य करने की क्षमता रखता है।

प्र० नं० ७ विष्कम्भक, प्रवेशक, सूत्रधार और प्रस्तावना—इनकी परिभाषा दीजिये

(विष्कम्भक, प्रवेशक और सूत्रधार की परिभाषायें पृ. ८ और ९ की टिप्पणी में देखिए।)

प्रस्तावना—**प्रस्ताव्यते प्रकर्षेण सूच्यते अनयेति प्रस्तावना = अभिनेतव्यविषय-सूचना।** जिसके द्वारा प्रकृष्ट रूप से नाटकीय वस्तु की सूचना दी जाए, उसे प्रस्तावना कहते हैं। साहित्यदर्पण में प्रस्तावना का स्वरूप इस तरह बताया गया है:—

नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनेति च॥

नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ प्रस्तुत बातों की सूचना देने वाले वाक्यों द्वारा जहाँ वार्तालाप करते हैं, उसे आमुख अथवा प्रस्तावना कहते हैं।

प्र० नं० ८. कर्पूरमञ्जरी का राजा चन्द्रपाल से किस तरह विवाह हुआ?

योगी भैरवानन्द अपनी यौगिकशक्ति के बल से कुन्तलदेश की राजकुमारी कर्पूर-मञ्जरी को राजा चन्द्रपाल के महल में उपस्थित कर देता है। रानी विभ्रमलेखा अपनी मौसी की पुत्री होने के नाते उसको अपने यहाँ कुछ और दिन ठहरा लेती हैं। राजा चन्द्रपाल उसके सौन्दर्य पर मोहित हो जाता है और उससे प्रेम करने लग जाता है।

इधर कर्पूरमंजरी भी राजा से प्रेम करने लगती है। लेकिन महारानी के कारण दोनों एक दूसरे से मिल नहीं पाते। राजा एक बार कर्पूरमंजरी को झूले में झूलता हुआ भी देखता है, तथा विदूषक की सहायता से उसका कर्पूरमंजरी से एक बार साक्षात्कार भी होता है। इस तरह इन दोनों का परस्पर प्रेम बढ़ता रहता है। अन्त में ऐसा होता है कि रानी विभ्रमलेखा गौरी पूजा करती है और गौरी की प्रतिमा में भैरवानन्द से प्राणप्रतिष्ठा कराती है तथा स्वयं दीक्षा भी भैरवानन्द से लेती है। रानी भैरवानन्द से दक्षिणा के लिए बड़ा आग्रह करती है। भैरवानन्द उस समय दक्षिणा लेना अस्वीकार कर देता है और कहता है कि लाटदेश में चण्डसेन नामक राजा की घनसारमंजरी नाम की कन्या है, ज्योतिषियों ने उसके संबन्ध में ऐसा कहा है कि यह किसी चक्रवर्ती राजा की रानी बनेगी। इसलिए उसका विवाह महाराज से कर दिया जाय। विवाह के पश्चात् मुझे भी गुरुदक्षिणा मिल जायगी और महाराज भी चक्रवर्ती हो जायंगे। रानी विभ्रमलेखा इस बात को स्वीकार कर लेती है। तत्पश्चात् भैरवानन्द जब घनसारमंजरी को विवाहमण्डप में लाता है तो वह घनसारमंजरी कर्पूरमंजरी के अतिरिक्त और कोई नहीं निकलती। रानी आश्चर्य से कर्पूरमंजरी की ओर देखती है। भैरवानन्द **'तुमं सुट्ठुतरं भुल्लोऽसि, जदो कप्पूरमंजरीए घणसारमंजरीत्ति णामांतरं जाणासि'** (पृ. १८६) इन शब्दों से सबका भ्रम दूर कर देता है। इस तरह घनसारमंजरी नाम से कर्पूरमंजरी का राजा चन्द्रपालसे विवाह हो जाता है।

प्राकृतश्लोकानुक्रमणिका